कहानीकार कमलेश्वर
संदर्भ और प्रकृति

प्रो० सूर्यनारायण मा० रणसुभे
प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
दयानंद कला महाविद्यालय,
लातूर (महाराष्ट्र)

पंचशील प्रकाशन
जयपुर

कहानीकार कमलेश्वर

संदर्भ और प्रकृति

सूर्यनारायण मा० रणसुभे

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्मकालोनी, जयपुर–302003

संस्करण : प्रथम

प्रकाशनवर्ष : 1977

मूल्य बीस रुपया

मुद्रक एम. बी. प्रिंटर्स
जयपुर–302003

पत्नी सौ. शीला

तथा

चि. कनुप्रिया

को

सस्नेह

भूमिका

प्रिय पाठको—

कमलेश्वर की बारह कहानियों का यह अध्ययन आपके सामने प्रस्तुत है। इन कहानियों का अध्ययन करते समय मेरे सामने कई पद्धतियाँ मौजूद थी। अधिकतर समीक्षकों ने इन कहानियों का अध्ययन परम्पराबद्ध पद्धति से ही किया है। डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान 'कहानी के माध्यम से कहानी के अध्ययन' पर बल देते हैं। 'कहानी से गुजरने' की बात वे करते हैं। नये साहित्य का अध्ययन करते समय मैं यह अनुभव करने लगा कि वर्तमान जिन्दगी के साथ यह साहित्य बहुत ही गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है। इसलिए इन कहानियों का अध्ययन 'जिन्दगी के माध्यम' से ही करना जरुरी है। अध्ययन करते समय वर्तमान जीवन को ही मानदण्ड के रूप में यहां स्वीकार किया गया है। 'वर्तमान जीवन' तथा इन कहानियों को एक दूसरे के सम्मुख खड़ा कर दिया गया है। जिन्दगी और इन कहानियों की भीतरी सगति और विसंगति को ढूंढने का प्रयत्न यहां हुआ है। इसीलिए यहां प्रमाण है मात्र-जिन्दगी! संभवतः इसी कारण प्रत्येक कहानी के आरम्भ में वर्तमान जीवन का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है और फिर उसके बलबूते पर कहानी को परखा गया है। मुझे नहीं मालूम यह तरीका कहां तक योग्य है? यह बात शतप्रतिशत सही है कि आधुनिक साहित्य की जड़ें वर्तमान जीवन में ही हैं। और इसी कारण पहले इन जड़ों तक पहुँचने की कोशिश हो और फिर उसके माध्यम से कहानी तक। इस पद्धति से जब मैं जाने लगा तब मुझे कमलेश्वर की ये बारह कहानियाँ सशक्त और जीवन्त लगीं। इन बारह कहानियों के अलावा उनकी बाद की अन्य कहानियाँ इतनी अधिक शक्तिशाली और जीवन्त नहीं हैं। उनकी दर्जनों कहानियों में से इन बारह कहानियों को ही लिया गया है। इस चुनाव के मूल में उनकी कथायात्रा को समझ लेने की मात्र जिज्ञासा ही काम कर रही है। अपनी कथायात्रा के तीन दौर उन्होंने बतलाये हैं। प्रत्येक दौर की चार कहानियाँ यहां ली गयी हैं।

कहानी के कथ्य का अध्ययन करते समय जिन्दगी का आधार लिया गया है और चरित्रों का अध्ययन करते समय एक दूसरी पद्धति का। कहानी के पात्रों को कहानी से अलग निकाल लिया गया तथा उनकी मानसिकता के भीतर प्रवेश करके उनकी स्थिति को गहराई से समझ लेने प्रयत्न हुआ। इस स्तर पर पात्र, कहानी के पात्र नहीं रह जाते, मेरी मानसिकता के अभिन्न अंग हो जाते हैं। कमलेश्वर ने अपनी तीसरी दौर की कहानियों के सम्बन्ध में लिखा है कि "यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य के साथ और समान्तर चलने का यह दौर है।" इन पात्रों का अध्ययन करते

समय उनकी यातनाओं के जंगल से गुजरने का प्रयत्न मैंने भी किया है। इसी कारण प्रत्येक घटना अथवा स्थिति का उनकी ओर से (पात्रों की ओर से) समर्थन किया गया है।

इन कहानियों को पुरानी कहानियों के साथ अथवा बाद की कहानियों के साथ अथवा उनकी ही कहानियों के साथ में अथवा विरोध में रखकर अध्ययन करने की पद्धति से बचने का यहां प्रयत्न हुआ है। कहानी को सीधे जिन्दगी के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की कोशिश यहां हुई है। कमलेश्वर सन् 1950 के बाद के श्रेष्ठ कहानीकार हैं। परन्तु दुर्भाग्य से इनकी कहानियों पर एक भी स्वतन्त्र पुस्तक उपलब्ध नहीं है। उनकी कहानियों के स्वतन्त्र अध्ययन की यह पहली कोशिश है और इस कारण इसमें त्रुटियाँ हो सकती हैं। इस अध्ययन द्वारा कमलेश्वर को "नयी कहानी का मसीहा" घोषित करने का इरादा नहीं है; न इन कहानियों के आधार पर पुरानी कहानी की सारी परम्परा को झुठलाना है। आधुनिक युग के एकमात्र सही कहानीकार' का सेहरा भी उन्हें पहनाने का इरादा नहीं है। यहाँ प्रयत्न केवल इतना ही है कि 'कहानी को जिन्दगी के सन्दर्भ में जान लें। समकालीन जीवन की संगति, विसगति, मूल्यों की टकराहट अथवा टूटने को आज का कहानीकार किस रूप में व्यक्त कर रहा है यह देखने का यहां प्रयत्न है।

एक बात और ! नये साहित्यकारों को समीक्षक का कार्य भी करना पड़ा है। संक्रमण काल में लिखनेवाले प्रत्येक साहित्यकार को समीक्षक बनना ही पड़ा है। प्रस्तुत अध्ययन में कमलेश्वर दो रूपों में आये हैं—कहानीकार कमलेश्वर तथा नयी कहानी के व्याख्याता कमलेश्वर। ये दोनों एक दूसरे के विरुद्ध बोलते हैं अथवा एक दूसरे का समर्थन करते हैं—इसकी खोज इस अध्ययन में की गयी है। इतना जरूर है कि कमलेश्वर ने कहानी के सम्बन्ध में जो भी कुछ लिखा है वह बहुत ही ठोस, चिन्तनपूर्ण और कहानी-समीक्षा को नयी दिशा देने का सामर्थ्य रखता है। राजेन्द्र यादव का भी कार्य बड़ा दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कुल मिलाकर इतना ही कहना है कि जिन्दगी के परिप्रेक्ष्य में, पात्रों की मानसिकता में प्रवेश करके कहानियों को समझ लेने का यह अल्प-सा प्रयत्न है। हो सकता है कि इस प्रयत्न में कई त्रुटियां हों। लेखकों, पाठकों, प्राध्यापकों, आलोचकों और विद्यार्थियों की प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाओं से ही मैं अपने इस लेखन से संतुष्ट हो सकूंगा। इसी कारण प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा में—

आपका

सूर्यनारायण मा० रणसुभे

ऋण निर्देश

प्रस्तुत पुस्तक मुझ जैसे घोर आलसी व्यक्ति से लिखा लेने का पूर्ण श्रेय पंचशील प्रकाशन, जयपुर के प्रतिनिधि श्री कुंभसिंह राठौड़ तथा संचालक श्री मूलचन्दजी गुप्ता को है। पता नहीं, क्यों इन दोनों का मुझ पर इतना स्नेह रहा है? श्री कुंभसिंह राठौड़ तो हर 15-20 दिन में एक स्मरण-पत्र भेजा करते थे। पुस्तक लिखने के सिवा मेरे सामने कोई दूसरा मार्ग ही नहीं था। इन दोनों का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ।

मेरे सहयोगी मित्र श्री ओमप्रकाशजी होलीकर का मैं आभारी हूँ क्योंकि उन्होंने ही इस पुस्तक का नामकरण किया है। डा० चन्द्रभानुजी सोनवणे के सतत् प्रोत्साहन से ही मैं लिखने की झंझट में पड़ गया हूँ।

सहयोगी प्राध्यापक मित्र प्रो० झदेवजी पाटील, प्रो० घनश्याम दासजी भुतड़ा का भी मैं आभारी हूँ। मेरे विद्यार्थी मित्र प्रो० सुरेशपुरी (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वसंतराव नाइक म० वि०, औरंगाबाद) तथा प्रो० काशीनाथ राजे (हिन्दी विभाग, कुमारस्वामी म० वि०, औसा) का सतत सहयोग मुझे मिलते रहा है।

माँ-पिता का चिर-स्नेह ही मेरे लेखन के मूल में है। आधुनिक कन्नड़ साहित्य के श्रेष्ठ हस्ताक्षर श्री चन्द्रकान्तजी कुसनूरकर का मैं हृदय से आभारी हूँ क्योंकि उनके सम्पर्क में आने के बाद ही आधुनिक साहित्य के प्रति मेरी रुचि बढ़ी। वास्तव में उन्होंने मेरी रुचि को और अधिक परिष्कृत और सम्पन्न बना दिया। श्री कुसनूकर पहले मूलतः हिन्दी में ही लिखते रहे। परन्तु हिन्दी पत्रिकाओं के सम्पादकों के तथा प्रकाशकों की गुटबाजी तथा अन्य इसी प्रकार की पक्षपातपूर्ण नीति से निराश होकर अन्त में वे कन्नड़ में लिखने लगे। उनका यूं लौट जाना हिन्दी के लिए चिन्ता की ही बात है। खैर, 1962–1967 तक के उनके निकट सम्पर्क के कारण ही मैं आधुनिक साहित्य को जिन्दगी के सन्दर्भ में देखने लगा। इलाहाबाद के मेरे गुरुजनों डा० रघुवंश, डा० हरदेव बाहरी तथा डा० जगदीश गुप्त का स्नेह तथा आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ रहा है। वही मेरी पूँजी है।

उड़ीसा के मेरे मित्र श्री अर्जुन सतपथी (हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, बालांगीर) औरंगाबाद के डा० भगतसिंह राजूरकर (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मराठवाड़ा वि. वि.) तथा डा० भगवानदास वर्मा (अध्यक्ष हिन्दी विभाग, सरस्वती भुवन कॉलेज) डा० चन्द्रकान्त गर्जे (प्राचार्य, किनवट कॉलेज) इन महानुभावों के सतत प्रोत्साहन,

प्रेरणा तथा स्नेह के कारण ही मुझ में लेखन के प्रति आत्मविश्वास जागृत हो रहा है। इनके प्रति आभार !

मेरे गुरुवर्य श्री केशवराव महागावकर (हिन्दी विभाग, शासकीय म० वि० गुलबर्गा, कर्नाटक) को आज इस कृति को देखकर अत्यधिक आनन्द होगा। उनका चिर-स्नेह मुझे निरन्तर मिलते रहा है।

मेरी पत्नी सौ. शीला तथा चि० कनुप्रिया के सहयोग से ही यह काम इतनी जल्दी में पूर्ण हो सका है।

इस वर्ष के हिन्दी एम. ए. (उत्तरार्द्ध) के मेरे विद्यार्थी मित्र श्री सूर्यकान्त विश्वनाथे का मैं अत्यधिक ऋणी हूँ क्योंकि उनके कारण ही यह पुस्तक इस रूप में आपके हाथों में है। अपने कार्यालय की जिम्मेदारी को संभालते हुए इस पुस्तक की पांडुलिपि उन्होने केवल दस दिन में तैयार कर दी है। उनके अध्ययन, लगन तथा मेहनत के कारण हम सबको उनकी काफी आशा है। उनके प्रति आभार। मेरे दूसरे विद्यार्थी-मित्र प्रो० मंचुरे (हिन्दी विभाग, राजर्षि म० वि०, लातूर) का सहयोग भी महत्वपूर्ण है।

पंचशील प्रकाशन के सभी कर्मचारियों तथा ज्ञात-अज्ञात मित्रों के प्रति पुनश्च आभार !

सूर्यनारायण माणिकराव रणसुभे

कृपा कुंज, सावेवाड़ी
लातूर 413512
(महाराष्ट्र)

अनुक्रमणिका

1.	कथा यात्रा का पहला दौर	1
	1. राजा निरबंसिया	2–20
	2. कस्बे का आदमी	20–25
	3. गर्मियों के दिन	25–30
	4. नीली झील	30–39
2.	कथा यात्रा का दूसरा दौर	40
	1. दिल्ली में एक मौत	42–47
	2. खोई हुई दिशाएँ	48–55
	3. तलाश	56–64
	4. मांस का दरिया	64–74
3.	कथा यात्रा का तीसरा दौर	75
	1. नागमणि	77–83
	2. बयान	84–90
	3. आसक्ति	91–97
	4. उस रात वह मुझे ब्रीच कैंडी पर मिली थी	98–102
4.	कमलेश्वर की कहानियाँ : एक कथा-यात्रा	103–114
5.	कमलेश्वर की कहानियाँ : वस्तुगत अध्ययन	115–125
6.	कमलेश्वर की कहानियाँ : चरित्रगत अध्ययन	127–138
7.	कमलेश्वर की कहानियाँ : शिल्पगत अध्ययन	139–146
8.	कमलेश्वर की कहानियाँ : भाषागत अध्ययन	147–151
	परिशिष्ट	
	आज की कहानी : अध्ययन-अध्यापन की समस्याएं	151–159
	सन्दर्भ ग्रंथ सूची	160

"अपने कथा स्त्रोतों की पहचान और अपने परिवेश में जीने का" प्रयत्न यह (मेरे) कहानी लेखन का पहला दौर था। अर्थात् यहाँ "अनुभव के क्षेत्र की प्रामाणिक पहचान" का प्रयत्न है।

—कमलेश्वर

कथा-यात्रा का पहला दौर

कालक्रम: 1952–58–59 तक
स्थान: मैनपुरी–इलाहाबाद

कहानियाँ

(1) राजा निरबंसिया
(2) कस्बे का आदमी
(3) गर्मियों के दिन
(4) नीली झील

मेरे लिए कहानी निरंतर परिवर्तित होते रहनेवाली एक निर्णय–केंद्रित प्रक्रिया है। और यह निर्णय ? ये निर्णय मात्र वैयक्तिक नहीं हैं। वैयक्तिक है असहमति की जलती आग। .....इसी आधारभूत निर्णय की ये कहानियाँ हैं।

—कमलेश्वर

(१) राजा निरबंसिया :

कमलेश्वर अपनी कहानियों में "जिंदगी से आये हुए पात्रों के निर्णयों को रेखांकित करते" रहे हैं। अपनी कहानी यात्रा के उन्होंने तीन दौर बतलाये हैं जिनमें से प्रथम दौर में वे कहानियां आती है, जिसमें उन्होंने पात्रों के निर्णयों को ही रेखांकित किया है। "अपने कथा स्रोतों की पहचान और अपने परिवेश में जीने का"[1] उनका प्रयत्न इस दौर में रहा है। राजा निरबंसिया इस प्रथम दौर की कहानी है। स्पष्ट है कि इस कहानी में कमलेश्वर अपने कथा स्रोतों को पहचानने की कोशिश में लगे हैं। सन् 1955–59 तक का यह प्रथम दौर रहा है। इस समय कमलेश्वर इलाहाबाद—मैनपुरी जैसे कस्बे से ही जुडे हुए है। कस्बे की जिन्दगी को वे इस समय न केवल जी रहे थे अपितु उसे समग्र रूप से आत्मसात करने की कोशिश में भी लगे हुए थे।

प्रस्तुत कहानी कमलेश्वर की सर्वाधिक लोकप्रिय तथा चर्चित कहानी में से एक रही है। विशेषत: शिल्प की दृष्टि से इसकी काफी चर्चा हुई है। शिल्प की तरह इसका कथ्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है। या यूं कहें कि विशिष्ट कथ्य के कारण ही विशिष्ट प्रकार का शिल्प अपने आप उभर आया है। कथ्य और शिल्प का यहां अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

आधुनिक युग के टूटते जीवन मूल्यों, आस्थाओं, विश्वासों तथा मजबूरियों को स्पष्ट करने के लिए कमलेश्वर ने दो भिन्न युगों की कहानियों को समानान्तर रूप से इस कहानी में रख दिया है। एक ही समय दो कहानियां चलने लगती हैं। पुराने तथा आधुनिक युग में घटनाएँ कुछ सीमा तक उसी प्रकार की हैं; परन्तु इन घटनाओं की प्रतिक्रियाएँ भिन्न स्वरूप की हैं। घटनाओं के एहसास से व्यक्ति जिन प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करता है अथवा उसके सम्पूर्ण व्यवहार में जो एक सूक्ष्म परिवर्तन होने लगता है उसी से उस युग की विशिष्टता का पता चल जाता है। युग विशेष की इस विशिष्टता को बतलाने के लिए ही शायद कमलेश्वर ने दो भिन्न युग की कहानियों को एक साथ रख दिया है। कहानी राजा निरबंसिया की चल रही है। यह परम्परागत दंत कथाओं की तरह है। इस कहानी के कुल सात भाग हैं।

1. "एक राजा निरबंसिया थे। उनके राज्य में बड़ी खुशहाली थी। सब लोग अपना-अपना काम-काज देखते थे। कोई दु:खी नहीं था। राजा की एक लक्ष्मी–सी रानी थीं चन्द्रमा सी सुन्दर और.....और राजा को बहुत प्यारी। राजा राज-काज देखते और सुख से रानी के साथ महल में रहते।"[2]

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, कमलेश्वर, पृ० 7
2. वही, पृ० 11

2. "एक रोज राजा आखेट गये। जब भी वे इस प्रकार किसी आखेट को जाते तो ठीक सातवें रोज महल लौट आते। परन्तु इस बार सातवां दिन निकल गया, पर राजा नहीं लौटे। रानी को बड़ी चिन्ता हुई। रानी एक मंत्री को साथ लेकर खोज में निकली।"[1]

3. "रानी मंत्री के साथ जब निराश हो के लौटी, तो देखा राजा महल में उपस्थित थे। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। पर राजा को रानी का इस तरह मंत्री के साथ जाना अच्छा नहीं लगा। रानी ने राजा को समझाया कि वह तो केवल राजा के प्रति अटूट प्रेम के कारण अपने को रोक नहीं सकी। राजा-रानी एक दूसरे को बहुत चाहते थे। ....परन्तु उनकी कोई संतान नहीं थी। राजवंश का दीपक बुझने जा रहा था।..... कुल की मर्यादा नष्ट होने की शंका बढ़ती जा रही थी।"[2]

4. "राजा रोज सवेरे टहलने जाते थे। एक दिन जैसे ही महल के बाहर निकलकर आए कि सड़क पर झाड़ू लगाने वाली मेहतरानी उन्हें देखते ही अपना झाड़ू-पंजा पटककर माथा पीटने लगी, और कहने लगी 'हाय राम! आज राजा निरबंसिया का मुंह देखा है, जाने रोटी भी नसीब होगी कि नहीं..... न जाने कौनसी विपत टूट पड़े।' ....राजा को इतना दुःख हुआ कि उल्टे पैरों महल को लौट गये। .. ..और सब राजसी वस्त्र उतार राजा उसी क्षण जंगल की ओर चले गये। उसी रात रानी को सपना हुआ कि कल की रात तेरी मनोकामना पूरी होने वाली है। रानी बहुत पछता रही थी। पर फौरन ही रानी राजा को खोजती-खोजती उस सराय में पहुँच गयी जहां वे टिके हुए थे। रानी भेष बदलकर सेवा करने वाली भटियारिन बनकर राजा के पास रात में पहुंची। रात भर उनके साथ रही और सुबह राजा के जगने से पहले सरायं छोड़ महल में लौट गयी। राजा सुबह उठकर दूसरे देश की ओर चले गये।"[3]

5. कई वर्ष बाद राजा परदेश से बहुत-सा धन कमाकर गाड़ी में लादकर अपने देश की ओर लौटे। परन्तु राजधानी के निकट ही राजा की गाड़ी का पहिया पतेल की झाड़ी में उलझ गया। .....एक पंडित ने बताया कि 'संकट' के दिन जन्मा बालक अगर अपने घर की सुपारी लाकर इसमें छुआ दे, तो पहिया निकल जाएगा। वहीं दो बालक खेल रहे थे। उन्होंने यह सुना तो कूदकर पहुँचे और कहने लगे कि हमारी पैदाइश 'संकट' की ही है, पर सुपारी तब लाएँगे, जब तुम आधा धन का वादा करो। राजा ने बात मान ली। ..... फिर अपने घर का

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 13
2. वही, पृ० 20
3. वही, पृ० 30

रास्ता बताते आगे-आगे चले। आखिर गाड़ी महल के सामने रोक ली। राजा को बड़ा अचरज हुआ कि हमारे ही महल में ये बालक कहां से आ गये? भीतर पहुँचे तो रानी खुशी से बेहाल हो गयी। पर राजा ने पहले उन बालकों के बारे में पूछा, तो रानी ने कहा कि ये दोनों बालक उन्हीं के राजकुमार हैं। राजा को विश्वास नहीं हुआ। रानी बहुत दुःखी हुई।"[1]

6. "रानी अपने-कुल देवता के मन्दिर में पहुंची। अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए उन्होंने घोर तपस्या की। राजा देखते रहे। कुल देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी दैवी शक्ति से दोनों बालकों को तत्काल जन्में शिशुओं में बदल दिया। रानी की छाती में दूध भर आया और उनमें से धार फूट पड़ी, जो शिशुओं के मुँह में गिरने लगी। राजा को रानी के सतीत्व का सबूत मिल गया। उन्होंने रानी के चरण पकड़ लिए और कहा कि तुम देवी हो! ये मेरे पुत्र हैं और उस दिन से राजा ने फिर से राज-काज संभाल लिया ·····।"

7. "राजा ने दो बातें की। एक तो रानी के नाम से उन्होंने बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया और दूसरे, राज के नये सिक्कों पर बड़े राजकुमार का नाम खुदवाकर चालू किया, जिससे राज-भर में अगले उत्तराधिकारी की खबर हो जाए·····।"

माँ जब कहानी समाप्त करती थी, तो आसपास बैठे बच्चे फूल चढ़ाते थे।

प्रस्तुत कहानी के साथ-साथ आधुनिक युग के जगपती नामक एक व्यक्ति की कहानी भी चलती है। उपर्युक्त कहानी पूर्णतः अतिशयोक्तिपूर्ण; परम्पराबद्ध तथा आदर्शवादी है। इसमें नैतिक मूल्यों की स्थापना की गयी है। प्राचीन युग की जीवन दृष्टि इसमें व्यक्त हुई है। इस कहानी का राजा निरबंसिया था, जगपती भी निरबंसिया है। दोनों एक सीमा तक एक ही स्थिति से गुजर रहे हैं, परन्तु दोनों की प्रतिक्रियायें एकदम भिन्न हैं। दो युगों के इस अंतर को स्पष्ट करने के लिए ही ये दोनों कहानियां साथ-साथ रखी गयी हैं। जगपति की यह कहानी संक्षेप में इस प्रकार है:—

1. जगपती लेखक का बचपन से दोस्त था। मैट्रिक की पढ़ाई के बाद जगपती कस्बे के वकील के यहां मुहर्रिर बन गया। उसके कुछ ही दिनों बाद जगपती की शादी हुई—चंदा नामक एक सुन्दर देहाती युवती के साथ। शादी के चार वर्ष बाद भी जगपती को संतान नहीं हुई। दोनों निराश थे।

2. इसी बीच जगपती को रिस्तेदार की एक शादी में जाना पड़ा। दसवें दिन वह जरूर वापस आने वाला था। परन्तु जहां शादी थी वहां डाका पड़ गया और बन्दूक की गोली लगने से जगपती घायल हो गया। एक गोली जगपती की जांघ को पार करती निकल गयी; दूसरी उसके जांघ के ऊपर कुल्हे में समाकर रह गयी।

चन्दा रोती-कलपती और मनौतिया मानती जब वहां पहुँची, तो जगपती अस्पताल में था। जगपती की हालत देखकर चंदा को वहीं रुकना पड़ा। कस्बे का यह एकमात्र सरकारी अस्पताल था। बचनसिंह कम्पाउण्डर ही यहां सब कुछ था। जगपती को ठीक करने के लिए आवश्यक दवाईयों का यहाँ अभाव था। चंदा के लिए जगपती ही एकमात्र आधार था। जगपती के जख्म की पट्टी खोलते-खोलते बचनसिंह ने कहा था कि अब अच्छी से अच्छी दवाईयो की जरूरत है। परन्तु उसके लिए मरीज को अपना पैसा खरचना पड़ता है और जगपती के पास तो पैसा था नहीं। तीसरे ही रोज जगपती के सिरहाने कई ताकत की दवाइया रखी गयी और चन्दा की ठहरने वाली कोठरी में उसे लेटने के लिए एक खाट भी पहुँच गयी। यह सब कैसे सभव हो सका ? जगपती किसी भी तरह का समझौता करने तैयार नही था। परन्तु दवाइयाँ आई थी—यह सही है। चदा ने कहा था—"ये दवाइयां किसी की मेहरवानी नहीं है। मैने हाथ का कड़ा बेचन को कहा था। उसी से आयी है।"[1] जगपति को चदा का यह कड़ा बेचना अच्छा नही लगा। इससे तो "बचनसिंह की दया ही ओढ़ ली जाती।"[2]

बचनसिंह कम्पाउण्डर दया करने वाले व्यक्तियों मे से नहीं है। वह हर बात की कीमत वसूलने वाला व्यवहारी व्यक्ति है। इसी कारण चंदा को उसके सम्मुख पूर्ण रूप से समर्पित होना पड़ा है। इस शारीरिक समर्पण मे चदा का मात्र अपने पति को बचाने की कोशिश है। बचनसिंह को खुश करने से पति बच जाएगा—यही भावना इसके मूल मे है। इसी कारण दूसरे दिन चदा जब पति के निकट जाती है तो जगपती लगता है कि—"चंदा बहुत उदास है। क्षण-क्षण मे चंदा के मुख पर अनगिनत भाव आ-जा रहे थे, जिनमे असमजस था, पीड़ा थी और निरीहता। कोई अदृश्य पाप कर चुकने के बाद हृदय की गहराई से किये गये पश्चाताप जैसी धूमिल चमक।"[3]

3. जगपती तंदरुस्त होकर अपने कस्बे की ओर चंदा के साथ लौट पड़ा। जगपती अब बहुत उदास है। एक तो बेकारी ! फिर निस्संतान होने का दुःख। इसीलिए अब वह चदा के व्यर्थ मातृत्व पर गहरी चोट भी कर रहा है। घर आने के बाद पहली ही रात जगपती को पता चला कि चदा ने कड़े बेचे नहीं हैं। उसने झूठ-मूठ ही कड़े बेचकर दवाइयां लाने की बात कही थी। फिर दवाइया आई कहां से ? चदा झूठ बोली ! पर क्यो ? जगपती मे इतनी हिम्मत भी नहीं कि चंदा को जगाकर पूछे कि उसने ऐसा क्यों किया ? शायद वह पूछ भी नहीं सकता।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 17
2. वही, पृ० 17
3. वही, पृ० 17

क्योंकि चंदा की बदौलत ही उसे नया जीवन प्राप्त हुआ है। बात केवल यहीं समाप्त हो जाती तो शायद इन दोनों की जिन्दगी बिगड़ने के बजाय सवर जाती। किन्तु अब जगपती को रुपयों की अधिक आवश्यकता थी। कई दिनों तक अस्पताल में रहने के कारण उसकी पुरानी नौकरी छूट चुकी थी। वह काम की तलाश में था। कोई दूसरा आर्थिक आधार तो उसके पास था नहीं। इसीलिए वह सोचता रहा कि "चंदा से कड़े मांगकर बेच लें और कोई छोटा-मोटा कारोबार शुरू कर दें।"[1] वह रोज यही सोचता पर जब चंदा सामने आती, तो न जाने कैसी असहाय–सी उसकी अवस्था हो जाती। उसे लगता जैसे कड़े मांगकर चंदा से पत्नीत्व का पद भी छीन लेगा।

कुछ दिन पहले ही बचनसिंह की भी इसी कस्बे में बदली हो गयी थी। उसका चंदा के घर आना जाना आरम्भ हो गया। जगपती जानता है कि बचनसिंह क्यों आता है फिर भी वह अनजान बने रहता है। चंदा जब बचनसिंह को लेकर पति के पास शिकायत करती है तो वह कहता है—"आड़े वक्त काम आने वाला आदमी है, लेकिन उससे फायदा उठा सकना जितना आसान है..... ... .जिस से कुछ लिया जाएगा, उसे दिया भी तो जाएगा।"[2] स्पष्ट है कि जागपती अपनी पत्नी का सौदा करना चाह रहा है। सम्भवत: इसी कारण अब बचनसिंह लगभग रोज ही आने जाने लगा। जागपती को काम चाहिए और बचनसिंह को चंदा का शरीर। शायद इसी कारण कुछ दिनों में दोनों की समस्याएं हल हो गयी। बचन-सिंह के आर्थिक सहयोग से जगपती ने लकड़ी की टाल खोल दी। अब वह पूर्णत: अपने कारोबार में व्यस्त रहता है। इस व्यस्तता के बावजूद जब भी वह अकेला होता है तब "उसे लगता, एक व्यर्थ पिशाच का शरीर टुकड़े-टुकड़े करके उसके सामने डाल दिया गया है।"[3] बचनसिंह से किए मौन समझौते के कारण ही वह भीतर से काफी उदास बनते जा रहा है।

4. चंदा अब मां बनने वाली है। जगपती ने यह बात सुनी तो वह खुश होने के बजाए वह दिनभर उदास पड़ा रहा। न लकड़ियां चिरवाई, न बिक्री की ओर ध्यान दिया, न दोपहर का खाना खाने ही घर गया। अस्पताल से आने के बाद से आज तक जगपती और चंदा में किसी भी प्रकार की स्पष्ट बातचीत इस इस विषय को लेकर हुई नहीं थी। इस विषय की स्पष्ट चर्चा जगपती या तो टालता रहा अथवा इस स्थिति का सामना करने की शायद उसमें हिम्मत ही नहीं थी। परन्तु आज यह खबर सामने आने के बाद वह अपने को रोक न सका। चंदा भी शायद इसके लिए तैयार ही थी। इसी कारण चंदा ने मै के जाने का निर्णय लिया

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 23
2. वही, पृ० 25

था। उसके अनुसार "जब तुमने मुझे बेच दिया·····।"[1] दूसरे ही दिन चंदा घर छोड़कर अपने मै के चली गयी।

5. कुछ दिन बाद जगपती को खबर मिली कि चंदा न केवल एक लड़के की मां बनी है अपितु अब वह दूसरे के घर बैठ रही है—"कोई मदसूदन है वहीं का। पर बच्चा दीवार बन गया है। चाहते वो यही है कि मर जाए तो रास्ता खुले पर रामजी की मर्जी।"[2] अब अलबत्ता जगपती यह बार-बार अनुभव कर रहा है कि उसी ने उसे नरक में डाल दिया। उसे तो उसने बेच दिया था, फिर सवाल यह भी है कि—"सिवा चंदा के कौनसी सम्पत्ति उसके पास थी, जिसके आधार पर उसे कोई कर्ज देता।"[3]

6. चंदा का इस तरह के घर जा बैठना और बच्चे को दीवार समझना—जगपती के लिए असह्य हो उठा। उसे लगता कि चंदा की इस दुर्गती के लिए वही जिम्मेदार है। इस पश्चाताप और आत्मग्लानी के कारण जगपती उसी रात अपना सारा कारोबार त्यागकर अफीम और तेल पीकर मर गया।

7. मरते समय उसने दो पर्चे छोड़े, एक चंदा के नाम, दूसरा कानून के नाम। चंदा को उसने लिखा था, "चंदा, मेरी अन्तिम चाह यही है कि तुम बच्चे को लेकर चली आना। ····· ·· ·····चंदा, आदमी को पाप नहीं पश्चाताप मारता है, मैं बहुत पहले मर चुका था। बच्चे को लेकर जरूर चली आना।" कानून को उसने लिखा—"किसी ने मुझे मारा नहीं है···· ····· ·किसी आदमी ने नही। ···· ·····मैंने अफीम नहीं रुपये खाए हैं। उन रुपयों मे कर्ज का जहर था, उसी ने मुझे मारा है। मेरी लाश तब तक न जलाई जाए, जब तक चंदा बच्चे को लेकर न आ जाए। आग बच्चे से दिलवाई जाए।"[4]

दो भिन्न युगों की ये दो कहानियां साथ-साथ विकसित हुई हैं। दोनों कहानियां सात भागों में विभाजित हैं। आरम्भिक कहानी के राजा तथा रानी में एवं बाद की कहानी के जगपती और चंदा में समानता होते हुए भी दोनों की प्रवृत्तियो में मौलिक अन्तर है। यह अन्तर ही दो युगों की जीवन दृष्टियो का अन्तर है। कमलेश्वर की खूबी यह है कि उसने इन परस्पर विरोधी दो जीवन मूल्यों की तलाश इस प्रकार के नये शिल्प के माध्यम से की है। दो युगों की मूल्यगत खाई को बतलाने के लिए इस प्रकार का शिल्प अनिवार्य-सा बन गया है। पहली कहानी को पढ़ने के बाद निम्नलिखित जीवन-मूल्य (नैतिक मूल्य) उभर आते हैं।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 33
2. वही, पृ० 35
3. वही, पृ० 37
4. वही, पृ० 38

(1) पति-पत्नी का प्यार निस्वार्थ हुआ करता था।

(2) शारीरिक पवित्रता के मूल्य को सर्वोपरि महत्व था।

(3) चरित्र के प्रति शंका आ भी जाती तो पति-पत्नी स्पष्ट रूप से इसकी चर्चा एक दूसरे के साथ करते थे तथा शंका निवारण कर लेते थे।

(4) जब किसी भी तर्क अथवा प्रमाण द्वारा शंका समाधान संभव नहीं होता था तब किसी न किसी प्रकार का दैवी चमत्कार हो जाता था। (प्रस्तुत कहानी में बच्चों का छोटा हो जाना और रानी की छतियों में दूध भर आना।)

(5) स्त्री के चरित्र पर जब शंका की जाती थी—तब वह अत्यन्त ही स्वाभिमान से और कुछ सीमा तक गर्व से किसी भी प्रकार की परीक्षा के लिए तैयार हो जाती थी। ऐसे समय वह अक्सर ईश्वर के चरणों में चली जाती थी। ("अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए उन्होंने घोर तपस्या की।"

(6) इन स्थितियों से गुजरते हुए उन लोगों को (राजा-रानी अथवा उस युग के लोग) किसी भी प्रकार का पश्चाताप नहीं होता था। भयावह मानसिक यंत्रणाओं से उन्हें गुजरना नहीं पड़ता था। क्योंकि उनके पास प्रत्येक प्रश्न के उत्तर तैयार थे। पति ने चरित्र पर शंका की है तो घोर तपस्या कर ली, इत्यादि। जीवनगत मूल्यों में किसी भी प्रकार की टकराहट नहीं होती थी। मूल्यों का महत्व सर्वाधिक था।

दूसरी ओर आज का सघर्षमय तथा टूटते जीवन मूल्यों का युग है। विश्वासों और दैवी शक्तियों का स्थान प्रमाण तथा बुद्धि ने ले लिया हैं। परिणामतः स्थितियाँ पुरानी होने के बावजूद भी प्रतिक्रियाएँ भिन्न होती गयी हैं। इन दोनों कथावस्तुओं की अगर तुलना की जाए तो यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। पहली कहानी राजा-रानी के दाम्पत्य जीवन पर आधारित है और दूसरी कहानी जगपती और चंदा के दाम्पत्य जीवन पर। राजा आखेट चले गये थे, ठीक सातवें दिन नहीं पहुचे इसलिए रानी उन्हें ढूंढने चली गयी। जगपती रिश्तेदारों के यहाँ विवाह में चला गया और दसवें रोज वापिस नही आया इसी लिए चदा ढूंढने अस्पताल चली गयी, राजा और जगपती दोनों भी निरबसिया हैं। रानी वश रक्षा के लिए भेष बदलकर राजा से उस रात एक सराय में मिली और गर्भवती हो गयी। चंदा अपने पति की सुरक्षा के लिए, उसे नयी जिंदगी देने के लिए अपना शरीर कम्पाडण्डर को समर्पित कर गयी। एक श्रेष्ठ मूल्य की रक्षा के लिए (पति को जिंदगी) दूसरे महत्वपूर्ण मूल्य की (शारीरिक पवित्रता) हत्या वह कर देती है। रानी राजा के लिए चिंतित थी, इसीलिए उन्हें ढूंढती जगल में गयी थी। संतति नहीं हो रही है इसलिए राजा चिंतित थे और राज्य छोड़कर चले जाते हैं तो रानी भेष बदलकर उन्हें मिलती है। मात्र उनकी चिन्ता कम करने के लिए। चंदा भी पति को बचाने के लिए और बाद में उसकी बेकारी को हटाने के लिए अपने शरीर को बेचती है।

यहाँ तक दोनों कहानियाँ समान्तर चलती हैं। परन्तु बाद में दोनों दो विरुद्ध दिशाओं की ओर बढ़ती हैं। यहीं पर लेखक दो भिन्न जीवन मूल्यों को रेखांकित करता है। परदेश से जब राजा वापिस आ जाते हैं तो राजमहल में उन बालकों को देखकर रानी से सारा स्पष्टीकरण पूछते हैं। ये बच्चे किसके है, कहाँ से आये हैं ? इत्यादि, रानी उस युगानुसार इसका जबाब भी देती है। परन्तु जगपती को जिस रात यह पता चल जाता है कि चदा ने कड़े बेचे ही नहीं थे—तब वह चदा से कुछ नहीं पूछता। उल्टे कड़े बच गये हैं—अब उन्हें बेचकर कोई काम आरभ करने के बारे में सोचता है। अस्पताल से घर जाने के बाद कम्पाउण्डर बचनसिंह का उसके घर आना-जाना देखकर भी वह खामोश रहता है। कारण वह बेकार है और उसे काम चाहिए। काम के लिए बचनसिंह पूँजी दे रहा है, बस यही उसके लिए समाधान की बात है। जगपती जानता है कि यह पूँजी चदा के शरार से वसूल होने वाली है—फिर भी वह चुप है। इस लाचारी म ही दो युगो का मूल्यगत अन्तर स्पष्ट हो जाता है। आधुनिक युग के इस जगपती को सम्पत्ति ही महत्वपूर्ण महसूस हो रही है—अन्य नैतिक मूल्य नहीं। "अपनी व्यक्तिगत जिंदगी और उसके लिए आवश्यक सम्पत्ति" यही दो मूल्य आज के इस युग मे शेष रह गये है। इन दो के लिए बड़े से बड़े मूल्य को त्यागने आज का मनुष्य तैयार हो गया है। अपने व्यक्तिगत सुख के लिए जगपती ने पत्नी का माध्यम के रूप मे प्रयोग किया है। परदेश से लौट आने के बाद दो बालकों को राजमहल में देखकर राजा शकित हो गया, उसे अपनी पत्नी पर संदेह भी हुआ। इसी कारण उसने स्पष्टीकरण मागा था। जगपती को पता चलने के बाद वह मौन और परेशान हो जाता है। यहां दोनों स्थानों पर घटनाएँ एक हैं परन्तु प्रतिक्रियाएँ भिन्न है। वास्तव मे विश्व में अनादि–अनत काल से वही घटनाएँ घटित हो रही है, उनमे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुआ है। उन घटनाओं को देखकर अथवा उन घटनाओ स गुजरते हुए, उस युग का व्यक्ति किस प्रकार प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है इस पर से ही उस युग के जीवन मूल्य निश्चित किए जाते हैं। रावण अथवा कंस के अन्याय-अत्याचार को देखकर राम तथा कृष्ण उनसे टकराने के लिए खड़े हो गये, किसी भी प्रकार की तैयारी अथवा शक्ति न होते हुए भी। इस पर से तत्कालीन जीवन मूल्यों का पता चल जाता है। आज भी अन्याय-अत्यचार होते हैं; परन्तु निहत्थे और अकेले लड़ने की ताकत कितने लोगों मे है ? ठीक इसी प्रकार यहाँ पर राजा ने भी संशय लिया, इस सशय को उसने व्यक्त किया तथा रानी तपस्या के लिए चली गयी। जगपती भी सशय लता है, परन्तु अपने संदेह को वह व्यक्त नहीं करता। क्योंकि चदा के शरीर के सौदे से उसका फायदा हो रहा है फिर इस घटना के लिए उसका अप्रत्यक्ष रूप से मौन समर्थन भी है। जगपती की यह प्रतिक्रिया आज के युगीन मूल्यों को ही स्पष्ट करती है। रानी अपनी परीक्षा मे सफल हो गयी तो यहाँ परीक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि न किसी की परीक्षा लेने की इच्छा है न देने की। कारण दोनों भी घटनाओं से परिचित है।

रानी की पवित्रता से राजा का समाधान हुआ परन्तु चंदा के बलिदान से जगपती क्षुब्ध, उदास और निराश हो गया। यह निराशा आत्मग्लानि मे परिवर्तित हो गयी और अन्त में जगपती को आत्महत्या ही करनी पड़ी।

उपर्युक्त दोनों कहानियों के माध्यम से लेखक दो युगों की भीतरी विसंगति को, आधुनिक युग के खोखलेपन को, जिंदगी और सम्पत्ति के अतिरिक्त मोह को, मूल्यगत सक्रमण को स्पष्ट करता गया हे। इस कथ्यगत विशेषता के कारण ही उसे इस प्रकार का शिल्प स्वीकार करना पड़ा है जो उपर से थोपा हुआ नहीं लगता। दोनों कहानियों का अभिन्न सम्बन्ध अपने-आप स्थापित हो जाता है। जगपती–चंदा की कहानी अधिक गहरी, सूक्ष्म तथा गंभीर बन जाती है—वह पहली कहानी के कारण ही। अगर पहली कहानी को हटा दें तो फिर जगपती–चंदा के कहानी की प्रभावात्मकता अपने आप कम हो जाती है।

इस संपूर्ण कहानी में 'मन' ही केंद्र में है। जगपती और चंदा को केंद्र में रखकर ही इसकी कथावस्तु विकसित होती गयी है। घटनाओं की अपेक्षा मनःस्थिति और प्रवृत्ति को ही महत्व दिया गया है जो कि कमलेश्वर की कहानियों की अपनी विशेषता है।

कथा-वस्तु का दूसरा भाग अधिक यथार्थ है। आये दिन इस प्रकार की घटनाऐं घटित हो रही हैं। भारत जैसे देश में हर कस्बे के अस्पतालों में रोगियों के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं। ऐसे अस्पतालों के डॉक्टर और कम्पाउण्डर जरुरतमंदों से किसी-न-किसी प्रकार का फायदा उठाते ही हैं। एक भारतीय स्त्री को अपनी शारीरिक पवित्रता से भी पति की जिंदगी अधिक प्यारी और महत्वपूर्ण लगती है। कमलेश्वर की कहानियों के अधिकतर पात्र आर्थिक दुरावस्था के शिकार हुए हैं। प्रतिकूल आर्थिक व्यवस्था के कारण उनका सम्पूर्ण व्यवहार बदल जाता है। इसी आर्थिक दुरावस्था के कारण उन्हें जीवन मूल्यों को त्यागकर परिस्थिति से गलत समझौता करना पड़ता है। प्रस्तुत कथा-वस्तु के मूल में यही 'आर्थिक-असमानता' के दर्शन हो जाते हैं। चंदा अगर अपने पति के लिए आवश्यक सभी दवाइयाँ खरीद सकती तो यह कहानी घटित ही नहीं होती। इस भयानक आर्थिक स्थिति को आज हम नकार भी नहीं सकते इसी कारण इस कहानी की यथार्थता पर हम प्रश्न चिह्न नहीं लगा सकते। आज के इस यथार्थ को कमलेश्वर अत्यन्त ही कलात्मक स्तर पर ले जाकर व्यक्त कर सके है—यही इनकी उपलब्धि।

अपने कहानी लेखन के तीन दौर कमलेश्वर ने बतलाये हैं। उनके मतानुसार—"मोटे तौर पर कहूँ तो पहला दौर था 'अपने कथास्त्रोतों की पहचान और अपने परिवेश में जीने का।"[1] इस दौर में लेखक अपने अनुभव के क्षेत्र को पहचानने

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, (भूमिका) पृ० 7

की कोशिश में लगा है। इस काल में जिंदगी से आये पात्रों के निर्णयों को रेखांकित किया गया है। "जीवन और उसके परम्परागत मूल्यों के प्रति उन पात्रों की असहमति ही मेरी असहमति है।"[1] वास्तव में कमलेश्वर के ये वक्तव्य इस कहानी के मूल्यांकन में सहायभूत हो जाते है। अपने परिवेश में जीते हुए उस परिवेश की समग्रता से आत्मसात करने का प्रयत्न इस समय रहा है। इस दृष्टि से इस कहानी में परिवेश की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण इस परिवेश को उसकी संपूर्ण जीवन्नता के साथ वे व्यक्त कर सके हैं। उनकी कहानियों में अक्सर पात्र और परिस्थिति का निरंतर संघर्ष चलते रहता है। इस संघर्ष में 'परिस्थिति' के सम्मुख 'व्यक्ति' हार जाता है। इसी कारण कहानी के अन्त में पात्र एकदम अकेले, निराश और हताश दिखाई देने लगते हैं। परिवेश रूपी राक्षस इस व्यक्ति को पूर्णतः तोड़ देता है, उसे अकेला कर देता है। प्रस्तुत कहानी में भी यही सघर्ष है। संघर्ष का यह स्वरूप आंतरिक है, मानसिक है। इस कथा-वस्तु के माध्यम से कमलेश्वर एक ओर टूटते हुए जीवन मूल्यों को स्पष्ट करने मे सफल हुए है तो दूसरी ओर इन मूल्यों को तोड़ने के बाद आदमी कितना अकेला पड़ जाता है, इसका भी चित्रण कर गये हैं।

सम्पत्ति और संतति का मोह मनुष्य को अनादिकाल से रहा है। इन दोनों से भी बढ़कर आज व्यक्ति अपनी 'जिंदगी' को अधिक महत्व दे रहा है। अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए वह मूल्यों को ताड़ भी रहा है। मूल्यों के इस तरह रौद देने के बाद वह और अधिक अकेला हो जाता है। यह अकेलापन आत्म-हत्या की ओर ही ले जाता है। इसी कारण इसकी कथा-वस्तु आधुनिक युग के विसंगति को, संक्रमणशील अवस्था को स्पष्ट करती है। "आधुनिक मनुष्य की खोज" इस कहानी के माध्यम से लेखक ने की है और इसमे उसे अत्याधिक सफलता मिली है।

इसकी कथावस्तु का शिल्प एकदम नया है। संभवतः कमलेश्वर पहले कहानीकार है जिन्होंने प्राचीन और नवीन कथाओ को जोड़कर एक नये शिल्प को जन्म दिया है। इस प्रकार के नये शिल्प की आवश्यकता उन्हें महसूस होती है, कथ्य की विशिष्टता के कारण। इस शिल्प में किसी भी प्रकार की उलझन नहीं है। कहानी का एक हिस्सा समाप्त हुआ कि दूसरा शुरू हो जाता है और दोनों में परस्पर संबंध दिखाई नही देता। परन्तु दोनों कहानियाँ पढ़ने के बाद पाठक उनकी भीतरी विसंगति को समझ लेता है। ये दोनों कहानियाँ एक दूसरे के साथ जबरदस्ती से जुड़ी हुई नहीं लगती। एक की समाप्ति में ही दूसरी कहानी के अगले हिस्से का संकेत मिलने लगता है। इस कारण राजा–रानी की कहानी में ही जगपती-चंदा की कहानी के बीज हैं। इसी कारण पहली कहानी का प्रत्येक हिस्सा दूसरी कहानी के हिस्से के साथ अपने-आप जुड़ने लगता है।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, (भूमिका) पृ० 6

एक ओर यह शिल्पगत नवीनता है तो दूसरी ओर कथ्य की विशिष्टता। आधुनिक युग मे ये सारे मूल्य या तो ढकोसला मात्र बन गये है अथवा व्यक्ति इतना अधिक आत्मकेंद्रित, सुखलोलुप और भौतिकवादी बन गया है कि वह इन्हें 'ढकोसला' कह रहा है। अपने स्वार्थ के लिए भले ही वह इन मूल्यों को तोड़ रहा हो तो भी वह कहीं न कही भीतर पछता रहा है और यह पश्चाताप ही उसकी मृत्यु के लिए कारणी भूत है। आधुनिक मनुष्य-मन की इस विचित्र और उलझी हुई स्थिति को कमलेश्वर जगपती के द्वारा सहजता से व्यक्त करते हैं।

इस कहानी में दो ही चरित्र प्रमुख हैं। जगपती और चंदा। जगपती मैट्रिक उत्तीर्ण होने के बाद गांव के ही एक वकील के यहाँ मुहर्रिर हो गया। उसी वर्ष उसकी शादी हो गयी। इस शादी मे लोगों ने तमाशा बना देना चाहा "परन्तु साल खतम होते-होते सब ठीक-ठाक हो गया।"[1] विवाह के चार वर्ष बाद भी जगपती को कोई संतान नही हुई। इसी बीच एक विवाह में जाकर वह घायल हो गया। और यहीं से उसकी जिंदगी मे जीवन दृष्टि मे मौलिक परिवर्तन होने लगा। घायल होकर अस्पताल मे कई दिनों तक असहाय पड़ने के बाद उसके सामने कई सवाल उठ खड़े हुए। सबसे बड़ा सवाल उसकी अपनी जिंदगी का था। अच्छी दवाइयाँ मिलने से ही वह बच सकता था। अच्छी दवाइयां अधिक रुपयों से ही आ सकती थीं। और रुपये उसके के पास नहीं थे। पत्नी चंदा जब दवाइयाँ लाकर रखने लगी तब इसका का यह ख्याल था कि चंदा ने अपने कड़े बेचकर यह सारी व्यवस्था कर दी है। तंदरुस्त होकर घर आने के बाद उसे पता चलता है कि कड़े तो बेचे नही गये हैं तब दवाइयाँ किसी ओर की कृपा से लाई गयी यह जानते हुए भी वह मौन रह जाता है। वह 'सम्पत्ति' और 'व्यवसाय' को ही सर्वोपरि मानता है। आगे चलकर इन दोनों के लिए वह किसी भी प्रकार की कीमत चुकाने तैयार हो जाता है। इसी हेतु वह बचनसिंह और चदा के सम्बन्धों को अनदेखा करता है। बचनसिंह के रुपयों से ही लकड़ी की टाल लगवाता है। उसे यह मालूम है कि इसकी कीमत कहीं और वसूल की जा रही है। चदा का माध्यम के रूप में उपयोग कर लेते समय उसे कुछ महसूस नहीं हुआ, परन्तु बाद में पश्चाताप की प्रक्रिया आरंभ होकर अंत में इसी पश्चाताप के कारण उसे आत्महत्या करनी पड़ी।

जगपती अपनी विशिष्टता के बावजूद प्रातिनिधिक चरित्र है। परिस्थिति से मजबूर किन्तु सुख की खोज में परेशान! आज परिस्थितियाँ इतनी कुछ क्रूर और भयानक हो चुकी है कि जिन्दगी के श्रेष्ठ मूल्यों को या तो मजबूरी से तोड़ना पड़ता है या उन्हें पूर्णतः नकार के आगे जाना पड़ता है। जगपती जब घायल होकर अस्पताल में पड़ा था तब भी कुछ ऐसी ही स्थिति थी। उसका दुरुस्त हो जाना न

1. मेरी प्रिया कहानियाँ, पृ० 92

केवल उसके लिए अपितु चन्दा के लिए भी जरूरी था। जिन्दगी का मोह तो प्रत्येक व्यक्ति में होता ही है। नयी जिन्दगी के लिए कीमती दवाओं की आवश्यकता थी। आर्थिक आधार तो है नहीं! कहां से व्यवस्था की जाए? चन्दा पति के साथ अस्पताल में कितने दिनों तक रुकेगी? इसी कारण चन्दा चाहती है कि पति जल्द अच्छा हो जाए। स्वयं जगपती भी यही चाहता था, परन्तु परिस्थिति के सामने वह लाचार है। वह यह नहीं चाहता कि उधार खाते से उसका इलाज हो जाए। "नहीं चन्दा, उधार खाते से मेरा इलाज नहीं होगा····चाहे एक के चार दिन लग जांय"[1] एक ओर चन्दा चाह रही है कि वह जल्दी दुरुस्त होकर चलने फिरने लायक बन जाए, तो दूसरी ओर जगपती किसी भी प्रकार का कर्ज न लेते हुए दुरुस्त होना चाहता है। कर्ज से उसे सख्त नफरत है—"तुम नहीं जानती कर्ज कोढ का रोग होता है, एक बार लगने से तन भी गलता ही है, मन भी रोगी हो जाता है"[2]। कर्ज के इस सैद्धान्तिक—विरोध के मूल में जगपती कोई आदर्श काम नही कर रहा है। "उसके जी में आया कि कह दे, क्या आज तक तुमने कभी किसी से उधार पैसे नहीं लिए"।[3] उसके इस विरोध के कारण चन्दा यह कह देती है कि कड़े बेचकर वह दवाइयी लायी हैं। यूँ कड़े बेचना भी जगपती को पसन्द नहीं। फिर जगपती चाहता क्या है? "····· और जैसे खुद मन की कमजोरी को दाब गया कड़ा बेचने से तो अच्छा था कि बचनसिंह की दया ही ओढ ली जाती"।[4] स्पष्ट है कि जगपती किसी और माध्यम से ठीक होना चाहता था। न उसने अच्छी दवाइयों का विरोध किया न बचनसिंह की दया का। दुरुस्त होकर घर आने के बाद पहली ही रात उसे पता चल जाता है कि चन्दा ने कडे बेचे नहीं थे। फिर अच्छी और मंहगी दवाइयाँ कहां से आ गयी? "और तब उसके सामने सब सृष्टि धीरे-धीरे टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरने लगी।·····उसका गला बुरी तरह सूख गया। जबान जैसे तालू से चिपक कर रह गयी। उसने चाहा कि चंदा को झकझोर कर उठाए, पर शरीर की शक्ति बह-सी गयी थी, रक्त पानी हो गया था"।[5] अर्थ के सम्मुख जगपती की यह पहली हार है। इसके बाद वह लगातार हारता रहा है। आधुनिक युग के मनुष्य की विचित्रता और उसके विसंगत व्यवहार को ही वह अपने इस व्यवहार से स्पष्ट कर रहा है। एक ओर श्रेष्ठ मूल्यों के प्रति आग्रह है; उसके प्रति श्रद्धा भी व्यक्त की जाती है। जिन्दगी के मूल्यांकन के लिए मानदण्ड के रूप में उसको स्वीकार

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 16
2. वही, पृ० 16
3. वही, पृ० 16
4. वही, पृ० 17
5. वही, पृ० 23

भी किया जाता है। परन्तु जहाँ-कहीं पर अपना 'व्यक्तिगत लाभ' दिखलाई देने लगता है आदमी इन मूल्यों को झट से तोड़ देता है। इन मूल्यों की रक्षा के लिए वह प्रयत्नशील नहीं रहता। उल्टे इन्हें तोड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर जितना अपना लाभ हो सकता है उतना वह कर लेता है। कडे देखने के बाद ही—जगपती को स्पष्ट हो जाता है कि दवाइयों के लिए, उसे बचाने के लिए चदा ने इन कड़ों से भी बड़ी चीज का समर्पण किया है। उसका यह समर्पण गलत था, मजबूरी से प्रेरित था। अब फिर इस शरीर का यूँ उपयोग न किया जाए-ऐसा आग्रह तो जगपती कर सकता था। परन्तु नहीं! क्योंकि अब तो जगपती को पता चल गया है कि चदा के पास ऐसा कुछ विशिष्ट है जिससे उसकी आर्थिक परेशानियाँ कम हो सकती हैं। यह जगपती का अधःपतन हैं अथवा इस युग की विशिष्टता! जो हो, यह सच है कि कड़े देखकर जगपती पर कोई असर नहीं हुआ। उल्टे वह "उस रात के बाद रोज जगपती सोचता रहा कि चन्दा से कड़े मांगकर बेचलें और कोई छोटा-मोटा कारोबार ही शुरू कर दें··· "।[1] उसे बार-बार लगता कि "कड़े मांगकर वह चन्दा से पत्नीत्व का पद भी छीन लेगा।"[2] इस कड़े के साथ एक इतिहास जुड़ा हुआ है और जगपती इस इतिहास को भूला देना चाह रहा है। "कड़े देकर चन्दा क्या रह जाएगी?" मातृत्व तो उसने उसे दिया ही नहीं है और अब वह उसके पत्नीत्व को भी छीन रहा है।" एक स्त्री से यदि पत्नीत्व और मातृत्व छीन लिया गया तो उसके जीवन की सार्थकता ही क्या?"[3] चन्दा के जीवन को निरर्थक और कुछ सीमा तक वेश्या की तरह बनाने के लिए जगपती ही जिम्मेदार है। वह अभी भी चन्दा को उसका पत्नीत्व लौटा सकता था परन्तु जगपती 'सम्पत्ति और काम' के कारण अन्धा हो चुका था। यह केवल जगपती की विवशता और मजबूरी नहीं है, यह इस देश के प्रत्येक पुरुष की मजबूरी है। विवाहित व्यक्ति बेकार अवस्था में कितने दिनों तक जी सकेगा? और जिसके पास किसी भी प्रकार की पूँजी नहीं है उसकी तो और भी बुरी स्थिति होती है। आखिर वह करें तो क्या करें? इसी कारण बेकारी के मारे परेशान जगपती जब बचनसिंह कम्पाउण्डर की सायकल अपने घर के आगे देखता है तब वह घुस्से से पागल हो जाने के बजाए खुश हो जाता है। एक आखरी मौका चन्दा यहां जगपती को देती है। उसकी इच्छा है कि जगपती उसे डांटे, बचनसिंह को डांटे इसी कारण वह कहती है—"जाने कैसे-कैसे आदमी होते हैं···इतनी छोटी, जान-पहचान में तुम मर्दों के घर में न रहते घुसकर बैठ सकते हो? तुम तो उल्टे पैरों लौट आओगे।" चन्दा यह कहकर जगपती के मुख पर कुछ

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 23
2. वही, पृ० 23
3. वही, पृ० 23

इच्छित प्रतिक्रिया देख सकने के लिए गहरी निगाहों से ताकने लगी।"[1] चन्दा चाह रही थी कि अब तो जगपती उसे डांटे। किन्तु जगपती के दिमाग में व्यवसाय और व्यवसाय की ही बात थी। इसी कारण डांटने के बजाय उसने कहा -"बचनसिंह अपनी तरह का आदमी है, अपनी तरह का अकेला" केवल इतना ही कहकर वह चुप नहीं हो जाता आगे यह भी कहता है—"आड़े वक्त काम आने वाला आदमी है; लेकिन उससे फायदा उठा सकना जितना आसान है·····उतना····· मेरा मतलब है कि·····जिससे कुछ लिया जायगा, उसे दिया भी तो जाएगा।"[2] प्रस्तुत वाक्य से स्पष्ट है कि जगपती ने चन्दा को उसका रास्ता बतला दिया है। तनहाई में जगपती यह अनुभव भी करता है कि उसने जो कुछ कहा है वह गलत है, बुरा है। परन्तु जब भी उसे अपनी आज की दशा याद आती वह चुप हो जाता। 'बचनसिंह के साथ वह जब तक रहता, अजीब सी घुटन उसके दिल को बांध लेती और तभी जीवन की तमाम विषमताएँ भी उसकी निगाहों के सामने उभरने लगती। आखिर वह स्वयं एक आदमी है ····· बेकार ····· उसके दो हाथ पैर हैं ··· शरीर का पिंजरा है, जो कुछ माँगता है ····कुछ।"[3] कई बार उसे लगता कि इतने बड़े सौदे की क्या सचमुच आवश्यकता है? फिर यह सौदा किस लिए? "तो फिर क्या? वह कुछ क्या है, जो उसकी आत्मा में नासूर-सा रिसता रहता है, अपना उपचार मांगता है? शायद काम! हाँ,— बिल्कुल यही, जो उसके जीवन की घड़ियों को निपट सूना न छोड़े, जिसमें वह अपनी शक्ति लगा सके, अपना मन डुबो सके, अपने को सार्थक अनुभव कर सके।····· यही तो उसकी प्रकृत आवश्यकता है, पहली और आखिरी मांग है ····।"[4] जगतपती की इस मानसिक स्थिति से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। (अ) चन्दा को सभी प्रकार की छूट देने के बाद उसका परम्परागत मन उसको सता रहा है और इस कारण अपने मन को समझाने के लिए वह उपर्युक्त विविध तर्क दे रहा है। (आ) आसपास की सम्पूर्ण परिस्थितियाँ इतनी भयानक हो चुकी हैं कि जगपती को यूँ बेकार जीना असम्भव सा हो गया है और आज उसके पास सिवा चन्दा के और कोई दूसरी पूँजी नहीं है। उसे सचमुच काम की जरूरत है। यह काम उसे कहीं नहीं मिल रहा है। बचनसिंह के सहारे ही यह 'काम' मिलना सम्भव था। अतः बचनसिंह की कीमत चुकाने के सिवा उसके सामने दूसरा रास्ता नहीं था। यह तो सच है कि चन्दा के संकेत देने के बाद भी वह चन्दा को ही समझाता है कि वह तो अपना ही आदमी है और आड़े वक्त काम आने वाला आदमी है। स्पष्ट है कि उसने चन्दा को बेच दिया है।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 25
2. वही, पृ० 25
3. वही, पृ० 26
4. वही, पृ० 26

एक दिन बचनसिंह की सहायता से जगपती लकड़ी का टाल डाल देता है। काम के लिए उसने सारे मूल्य तोड़ दिये। काम भी उसे मिला परन्तु इसके बावजूद वह उदास और निराश है। वास्तव में यहीं से आधुनिक मनुष्य की त्रासदी शुरू हो जाती है। क्योंकि इन सारे समझौते के बाद जो लक्ष्य था उसकी प्राप्ति तो (काम) हो जाती है परन्तु "दिनभर में वह एक घंटे के लिए किसी का मित्र हो सकता है, कुछ देर के लिए पति हो सकता है, पर बाकी समय ? दिन और रात के बाकी घटे....." ।[1] "बचनसिंह के सामने वह अपने अस्तित्व को डूबता हुआ महसूस करता है" ।[2] "पता नहीं कौन-कौन-से दर्द एक-दूसरे से मिलकर तरह-तरह की टीस—चटख और ऐंठन पैदा करने लगते।"[3] जिस दिन यह पता चला कि चंदा अब माँ बनने वाली है तब से तो उसकी उदासी और बढ़ने लगी। सभी ओर बदनामी तो हो ही रही थी। सभी लोग जानते थे कि बच्चा बचनसिंह का है, जगपती का नहीं। और जगपती समझ नहीं रहा था कि आखिर यह गुस्सा किस पर उतारा जाए ? उसकी इधर की उपेक्षा से, उसके व्यवहार से, उसकी खुली छूट से चंदा प्रसन्न नहीं थी। इसी कारण वह मैके जाने का निर्णय लेती है परन्तु जाने के पहले इतना जरूर कहती है—"लेकिन तुमने मुझे बेच ही दिया..... "।[4] और चंदा अपने गांव चली जाती है।

चंदा के चले जाने के बाद जगपती अपना आत्मनिरीक्षण करने लगता है। इस आत्मनिरीक्षण के लिए चंदा और आसपास की परिस्थितियाँ कारणीभूत हैं। यह आत्मनिरीक्षण उसके भीतरी खोखलेपन को और अधिक गहरा बना देता है। अब वह काम पर भी नहीं जाता। "पर एक ऐसी कमजोरी उसके तन और मन को खोखला कर गयी थी कि चाहने पर भी वह न जा पाता।"..... "उसे लग रहा था कि अब वह पंगु हो गया है, बिलकुल लंगड़ा, एक रेंगता कीड़ा जिसके न आँख हैं, न कान, न मन, न इच्छा"। अपनी वैवाहिक जिंदगी की इस बर्बादी पर वह बहुत पछता रहा है। "क्या सिर्फ वही रुपये आग बन गये, जिसकी आंच में उसकी सहनशीलता, विश्वास और आदर्श मोम-से पिघल गए"।[6]

अब एक नयी खबर और आ गई कि चंदा माँ बन गयी है और वह किसी दूसरे के घर बैठने वाली है। इस खबर से जगपती और टूट जाता है। बच्चा तो उसका है नहीं। वह किस मुँह से बच्चा मांगे ? इस प्रकार कर्ज का विरोध करने

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 27
2. वही,पृ० 27
3. वही, पृ० 29
4. वही, पृ० 33
5. वही, पृ० 33

वाला जगपती हर स्थान पर कर्ज से दब गया है। तन से, मन से, इज्जत से। अब किसके बल पर दुनिया संजोने की वह कोशिश करें ? यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जगपती चंदा के शरीर के बल पर अपनी दुनिया संजोने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु इस बलबूते पर थोड़ी ही दूर जाने पर मार्ग की भयानकता का पता चल गया है। किन्तु परिस्थितियाँ उसके बस में नहीं है। वह बार-बार यही सोचता है—"कितने बड़े पाप में ढकेल दिया चंदा को, ...वह जरूर औरत थी, पर स्वयं मैंने उसे नरक में डाल दिया"।[1] फिर वह सोचता—"सिवा चंदा के कौन-सी संपत्ति उसके पास थी, जिसके आधार पर कोई कर्ज देता ? कर्ज न मिलता तो यह सब कैसे चलता ?"[2] आज चंदा के बारे में इस प्रकार का समाचार सुनकर वह पूर्णतः क्षुब्ध हो चुका है। उसे बार-बार महसूस हो रहा है कि चंदा की बर्बादी के लिए वह खुद जिम्मेदार है। जिस 'काम' और 'अर्थ' के लिए उसने चंदा का यूँ उपयोग किया था वह सब आज उसे निरर्थक महसूस हो रहा है। पश्चाताप की प्रक्रिया उसमें शुरू हुई है। यह पश्चाताप अंततः खोखलेपन को ही उभारता है। अब सिवा मृत्यु के दूसरा कोई पर्याय उसके सम्मुख नहीं है। इसी कारण वह आत्महत्या का निर्णय लेता है। चंदा और कानून के नाम उसने दो पत्र लिखे हैं—वे उसकी मानसिक यातना को, उसकी जिंदगी की मूल्यहीनता को ही स्पष्ट करते हैं। चंदा को उसने लिखा—"आदमी को पाप नहीं पश्चाताप मारता है, मैं बहुत पहले मर चुका था"।[3] इस एक वाक्य में ही जगपती का सारा पश्चाताप उभर कर आ गया है। जगपती के भीतर का 'आदमी' उसी दिन मर गया था जिस दिन उसने चंदा का माध्यम के रूप में उपयोग शुरू किया था। 'आदमी' की 'आदमीयत' मूल्यों पर की उसकी निष्ठा से ही साबित हो जाती है। अपने स्वार्थ के लिए जिस दिन वह इन मूल्यों को पैरों तले रौंद देता है, उसी दिन उसका 'भीतरी आदमी' मर जाता है और बच जाती है मात्र हड्डियाँ तथा मांस। भीतर का आदमी या तो सिसकते रहता है अथवा मर जाता है। इसीलिए जगपती ने ठीक ही लिखा है कि—'मैं बहुत पहले मर चुका था'। कानून की चिट्ठी में उसने लिखा है—"मैंने अफीम नहीं; रुपये खाये हैं। उन रुपयों में कर्ज का जहर था, उसी ने मुझे मारा है।"[4] स्पष्ट है कि जगपती 'अर्थ' के संपूर्ण अधीन चला गया है। इसी 'अर्थ' के अतिरिक्त मोह से आज सभी नैतिक तथा अन्य मूल्य रौंदे जा रहे हैं। इन मूल्यों को रौंदकर आदमी किस मानसिक स्थिति में पहुँच जाता है; इसकी खोज कमलेश्वर ने यहाँ की है। भौतिकता के मोह

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 37
2. वही, पृ० 37
3. वही, पृ० 38
4. वही, पृ० 38

में पड़कर हम जिस रास्ते पर जा रहे हैं वह रास्ता हमें अततः आत्महत्या की ओर ही ले जा रहा है। इसी कारण जगपती यथार्थ, सच्चा और जीवन्त लगने लगता है। सम्भवतः इस पश्चाताप से मुक्त होने के लिए ही वह चंदा के उस बच्चे को स्वीकार करता है जो उसका अपना है परन्तु उससे नहीं।

मूल्यगत संक्रमणशील वातावरण में जीने वाले व्यक्तियों की मानसिक अवस्था का, उनकी विडम्बना का प्रतिनिधिक चरित्र है जगपती। परिस्थिति से लाचार परन्तु सुख के लिए परेशान। व्यक्तिगत सुख के लिए किसी भी मूल्य को त्यागने के लिए तैयार। मूल्यहीनता को ही स्वतन्त्रता के अर्थ में स्वीकार कर के जाने वाली जो संकुचित, स्वार्थी और घोर व्यक्तिवादी पीढ़ी इधर बढ़ रही है उसका प्रतीक है जगपती। अपनी कमजोरी को कमजोरी न मानने वाला, अपने सुख के लिए व्यक्ति का उपयोग करके फिर उसे ही डांटने वाला। जगपती के जीवन में दो वस्तुओं का जबरदस्त अभाव था—संतति और सम्पत्ति। इन दोनों की प्राप्ति के लिए वह उस मूल्य को त्याग देता है जो वैवाहिक जिन्दगी की नींव है। एक के स्वीकारने में किसी दूसरे का त्यागना जरूरी हो जाता है। इन दोनों को पाने के लिए ही वह चन्दा के समर्पण को खुली आंखों से देखता रहा। सभी मूल्यों की हत्या करके प्राप्त सुख या तो क्षणिक होता है अथवा वह व्यक्ति में पश्चाताप की प्रक्रिया शुरू कर देता है। लोक भय से यह पश्चाताप और भी बढ़ जाता है। जगपती सम्पत्ति में ही जिन्दगी के असली सार्थकता को देख रहा था परन्तु 'सम्पत्ति' सार्थक होने के बावजूद भी व्यक्ति को कितना अकेला और खोखला बना देती है यह उसे बहुत बाद में मालूम हो जाता है। 'पश्चाताप' और 'आत्महत्या' इस बात को साबित कर देते हैं कि मूल्यों को यूँ तोड़ने का उसे सर्वाधिक दुःख है। मूल्यों पर उसकी श्रद्धा है परन्तु वह उन्हें निभा नहीं सका। श्रद्धा थी इसलिए उसमें पश्चाताप और आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया शुरू हो गयी। इसी कारण इसे "संक्रमण शील युग की मनःस्थिति" कहा गया है।

अंत में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जगपती की इस स्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है? जगपती अथवा परिस्थिति अथवा चन्दा। सर्व सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से देखें तो उसकी आत्महत्या के लिए चन्दा ही जिम्मेदार है। कारण चन्दा किसी दूसरे के घर में बैठ गयी है। परन्तु जगपती की दृष्टि से देखें तो वह खुद इसके लिए जिम्मेदार है। उसने कानून के नाम चिट्ठी में भी यही लिखा है। वास्तव में जगपती की इस स्थिति के लिए परिस्थिति अधिक जिम्मेदार हैं, जगपती कम। आज की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ ही इतनी भयानक बन चुकी हैं कि व्यक्ति या तो इस परिवेश को चुपचाप स्वीकार कर लें। कोई तीसरा पर्याय आज हमारे सामने नहीं है।

जगपती परिस्थिति के सम्मुख पूर्णतः हार गया है। परिस्थिति से उपर उठने की ताकत उसमें नहीं है। दूसरी ओर जगपती में सम्पत्ति के प्रति अतिरिक्त मोह रहा है—जो आधुनिक युग का शाप है। इसी कारण जगपति आधुनिक मानस के आधुनिक युग की समस्याओं से अधिक निकट है।

मौन होकर पति की इच्छाओं पर चलने वाली स्त्री के रूप में चन्दा के दर्शन इस कहानी में होते हैं। अस्पताल के उसके व्यवहार पर बहुत बडा आरोप किया जा सकता है। क्योंकि एक ओर जगपती से वह कहती है कि कडे बेचकर उसने दवा की व्यवस्था की है और बाद में पता चलता है कि कड़े उसने बेचे ही नहीं है। फिर वह कौनसी परिस्थितियाँ थी ; जिस कारण चन्दा को झूंठ कहना पड़ा। अस्पताल में जगपती दाखिल हो जाने के बाद चन्दा जब पहली बार मिलने गयी थीं ; तब उसके सामने जगपती को बचाने का प्रश्न ही सबसे बडा था। क्योंकि जगपती के अस्तित्व में ही उसका अस्तित्व था। कस्बे के अस्पताल में किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। चन्दा कोई पढ़ी लिखी स्त्री तो नहीं है। इसी कारण पति को बचाने के लिए उसने अच्छी दवाइयों की व्यवस्था की। इन दवाओं के पैसे देने के लिए ही वह कड़े लेकर ही कम्पाउण्डर के पास गयी थी। कम्पाउण्डर ही उस अस्पताल का सब कुछ था। अगर चन्दा समर्पित नहीं होती तो शायद ही जगपती बचता। पति के जीवन-मरण का प्रश्न था। पति को बचाने के लिए जो कि वैवाहिक जीवन की सबसे पहली और आखिरी शर्त है—अगर वह समर्पित हो गयी है तो इससे वह दुश्चरित्र साबित नहीं होती। इस समर्पण से वह खुश नहीं है। वास्तव में यह समर्पण भी नहीं है। यह तो एक समझौता है अथवा कहें–व्यवहार। "चन्दा ने भीतर कदम तो रख दिया पर सहसा सहम गयी, जैसे वह किसी अन्धेरे कुए में अपने-आप कूद पड़ी हो, ऐसा कुआ जो निरन्तर पतला होता गया है....और जिसमें पानी की गहराई पाताल की पर्तों तक चली गई हो, जिसमें पडकर वह—नीचे धंसती चली जा रही हो, नीचे·····अंधेरा·····एकान्त घुटन·····पाप।"[1] और फिर इस घटना के बाद "चन्दा बहुत उदास थी। क्षण-क्षण में चन्दा के मुख पर अनगिनत भाव आ-जा रहे थे, जिसमें असंमजस था, पीड़ा थी और निहिरता। कोई अदृश्य पाप कर चुकने के बाद हृदय की गहराई से किए गए पश्चाताप जैसी धूमिल चमक।"[2] वास्तव में चन्दा परिस्थितियों की शिकार है। आये दिन इस प्रकार की निरीह, निस्सहाय और मजबूर स्त्रियों का गलत फायदा उठाने वालों की कमी इस देश में नहीं है। चन्दा को ऐसा विश्वास था कि एक बार जगपती ठीक हो जाएँ तो फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। परन्तु ठीक हो जाने के बाद भी जब

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 18
2. वही, पृ० 18

वह बचनसिंह को खुली छूट देने लगता है तब चन्दा के भीतर की 'स्त्री' पूर्णतः बिखर जाती है। इस स्त्री के पत्नीत्व को सुरक्षित रखने का कोई प्रयत्न जगपती नहीं करता। इसलिए बचनसिंह को अचानक घर आया हुआ देखकर चन्दा जब अपने पति से उसकी शिकायत करती है तो वह बचनसिंह को डांटने के बजाय चन्दा को ही समझाता है कि—"बचनसिंह आड़े वक्त काम आने वाला व्यक्ति है और जिससे कुछ लिया जाएगा, उसे दिया भी जाएगा।" देने के लिए तो सिवा चन्दा के जगपती के पास और था भी क्या ? स्पष्ट है कि चंदा की इच्छा के विरुद्ध जगपती बचनसिंह को छूट देते लगता है। परिणामतः चंदा के इस व्यवहार के लिए मात्र जगपती जिम्मेदार है, चदा नही। लोकभय और बदनामी से चंदा परेशान है ही परन्तु इन लोगों को कैसे कहा जाए कि पति जिम्मेदार, वह नहीं। एक स्त्री कितना भी चिल्लाकर कहे कि पति के कारण उसे ऐसा करना पड़ा है तो भी समाज उसे ही कलंकिनी कहेगा, पुरुष को नही। जगपती के इस विचित्र व्यवहार से उबकर ही वह मैके चली जाती है और जगपती की पत्नी बनकर किसी दूसरे की सेज सजाने के बजाए वह किसी मदसुदन की रखैल बनना पसन्द करती है। पत्नी चंदा से रखैल चंदा तक की उसकी यह जो यात्रा है उसके लिए जगपती जिम्मेदार है। यह जगपति के पतित्व की हार है। सम्पत्ति के प्रति अतिरिक्त मोह के कारण चंदा की जिन्दगी बर्बाद हो गयी है।

सम्पूर्ण कहानी में 'चंदा' एक निरीह और पतिव्रता स्त्री के रूप में ही हमारे सम्मुख आयी है। परिस्थिति ने उसे मजबूर कर दिया, पति ने उसे पाप करने के लिए प्रोत्साहन दिया। अब यहाँ पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि चन्दा ने विरोध क्यों नहीं किया ? चदा जिस विशेष वर्ग में जी रही है वहां ऐसा विरोध पुरुषों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता और फिर चंदा ने तो हर बार अपना विरोध व्यक्त किया ही है। मैके जाकर किसी की रखैल बनकर जीने का निर्णय लेना ही उसके भीतरी असन्तोष और बिखराव को व्यक्त करता है। जो बेचता है वह तो दोषी है ही, जो अपने को बेचते हुए चुपचाप देखते रहता है वह भी तो कुछ सीमा तक दोषी होता ही है। इस स्तर पर चंदा दोषी है ही। परन्तु सवाल यहाँ फिर यह है कि इस प्रकार चंदा को दोषी साबित करने के समय हम चंदा के परिवेश को, उस समाज व्यवस्था को, पारिवारिक व्यवस्था को नजर अन्दाज कर रहे हैं। जहां पर पत्नी को किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं होते।

कस्बे का आदमी

पहले दौर में लिखी गयी यह कहानी न केवल चर्चित ही रहा है अपितु लेखक की विशेष प्रवृत्ति की सूचक भी रही है। कमलेश्वर कस्बे के लेखक माने गये हैं। आज बम्बई में बैठकर लिखते समय भी उनके भीतर के कस्बाई संस्कार उभर उठते हैं। ये कस्बाई संस्कार ही उनकी शक्ति रही है। विज्ञान की प्रगति और

औद्योगीकरण के बाद धीरे-धीरे इस देश में 'कस्बे' उभरने लगे हैं। कस्बे जो न शहर हैं न देहात। कस्बे, जिनमें शहर के आधुनिकीकरण के मूल्य पर उभर रहे हैं तथा देहात की विशिष्टता के दर्शन भी होते हैं। देहात में स्थित अंधश्रद्धा, सनातनी प्रवृत्ति तथा अवैज्ञानिक दृष्टि का यहाँ अभाव है। ठीक इसी तरह शहर की संवेदन-शून्यता, यांत्रिकता और अकेलेपन की प्रवृत्ति का यहाँ अभाव होता है। इस प्रकार कस्बे की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में कस्बे बड़े तेजी के साथ बढ़ते गये हैं। संभवतः कस्बे का निर्माण इधर की बहुत बड़ी उपलब्धि है। साहित्य के क्षेत्र में भी कस्बों ने बहुत बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसके पूर्व साहित्य मंदिरों, मठों, दरबारों तथा नगरों से सम्बन्धित था। परन्तु कस्बों के निर्माण के बाद 'साहित्यिक केंद्र' बदलने लगे तथा कस्बाई संस्कारों के युवक साहित्य के क्षेत्र में आए। आज के हिन्दी साहित्य के अधिकतर लेखक कस्बों से ही सम्बन्धित हैं। यह स्थिति मात्र 'हिन्दी' के सम्बन्ध मे ही सही है। क्योंकि मराठी का अधिकतर साहित्य आज भी 'पूना'; 'बम्बई' तथा 'नागपुर' जैसे बड़े शहरो से ही सम्बन्धित है।

जैसा कि कहा गया है इन कस्बों की अपनी विशिष्ट पहचान है, कस्बे की इस पहचान को, उसकी विशिष्टता को शब्द बद्ध करने का प्रयत्न इधर के साहित्य-कार कर रहे है। महानगर अब अपन व्यक्तित्व को खो चुके है। इस महानगरीय—सभ्यता में अपनत्व की सभी दिशाएँ खत्म हो रही हैं। महानगरीय सभ्यता के निर्माण से कई समाज-शास्त्रीय प्रश्न निर्माण हुए है। यह नयी संस्कृति व्यक्ति के लिए भयानक साबित हो रही है। 'देहात' पिछड़े हुए है। उनकी प्रगति के लिए सभी दिशाओं से प्रयत्न हो रहे है। परन्तु नयी सभ्यता यहाँ जन्म नही ले रही है। वास्तव में इस देश की नयी सभ्यता, नयी सस्कृति इन कस्बों में ही निर्माण हो रही है। एक ऐसी नयी संस्कृति जिसमें देहात और महानगर की अच्छाइयाँ हैं। ये कस्बे ही इस देश की 'सांस्कृतिक क्रांति' का नेतृत्व करने वाले हैं; महानगर नहीं। 'सांस्कृतिक क्रांति' अर्थात् साहित्यिक, सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक। इसी कारण इन कस्बों का महत्व अत्याधिक है।

प्रत्येक कस्बे में अथवा कस्बे की किसी भी गली में एकाध ऐसे व्यक्ति मिलेंगे ही जो जिंदगी में कहीं स्थिर नहीं रहते। कस्बे की बात छोड़िए देहात अथवा शहर में भी ऐसे व्यक्ति मिलते हैं। अलग-अलग व्यवसाय, नौकरियाँ अथवा अन्य किसी भी प्रकार का काम करने के बावजूद भी इन्हें स्थिरता प्राप्त नहीं होती। स्थिरता प्राप्त न होने से ये विवाह नहीं करते। परिणामतः जिन्दगी मे अकेलेपन का अनुभव करते हैं। इस अस्थिरता के कारण उन्हे किसी का प्यार भी नही मिलता। शहर में इस प्रकार के लोग बहुत जल्द ही अपनी पहचान खो बैठते हैं; तथा अन्य सभी लोगों के लिए सरदर्द बन बैठते हैं। परन्तु कस्बे का आदमी इस अस्थिरता और अकेलेपन के बावजूद भी अपने व्यक्तित्व को, स्वाभिमान और आस्था को खो नहीं बैठता। मनुष्य की उसकी आस्था

बनी रहती है। मनुष्य तो क्या पशु-पक्षियों पर भी उसकी अपनी उतनी ही आस्था होती है। और यहीं पर 'कस्बे का आदमी' विशिष्ट बन जाता है।

शिवराज रेल से सफर कर रहा था। बहुत दिनों बाद वह अपने कस्बे को लौट रहा था, और वहीं पर उसकी भेंट छोटे महाराज से हो गयी। वे अपने 'तोते' के साथ सफर कर रहे थे। शिवराज तो उनको पहचान न सका। परन्तु 'छोटे-महाराज' तुरन्त शिवराज को पहचान गये। फिर बातचीत का सिलसिला जारी रहा। छोटे महाराज किसी के ब्याह से लौट रहे थे। शिवराज की सारी स्मृतियाँ उभर आयीं। छोटे महाराज जाति के वैश्य थे पर कर्म के कारण 'महाराज' पुकारे जाने लगे थे। 'म्युनिस्पलिटी की दुकानों के पास वाली इमली के नीचे बैठकर वे पानी पिलाया करते थे।' पहचान की औपचारिकता समाप्त हो जाने के बाद इधर-उधर की बातचीत शुरू हुई। शिवराज इतना जान गया कि महाराज अपने तोते पर—संतु पर—सर्वाधिक प्यार करते है। किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकने के बाद महाराज ने मिठाई खाने की इच्छा प्रकट की और बिना किसी संकोच के आधा सेर मिठाई खा गये; पैसे अर्थात् शिवराज को ही देने पड़े। यूँ इतने पैसे देना शिवराज को अच्छा नहीं लगा। उसके बदलते हुए चेहरे-से छोटे महाराज इसे भाँप गये हैं। इसी कारण कस्बे के स्टेशन पर उतरने के बाद सिल्क का महँगा कपड़ा अपने झोले में से निकालकर वे शिवराज की ओर फेंकते है और कहते है—"यह कपड़ा है सिल्क का, वही शादी में मिला था। मेरे तो भला क्या काम आएगा, तुम अपने काम में ले आना"।[1] और फिर आगे यह भी कहते है—"सब वक्त की बाते हैं, रहम दिखाते हैं मुझ पर।"[2]

दूसरे दिन सबेरे छोटे महाराज अपनी कोठरी मे दिखाई पड़े। उन्हें सांस का दौरा पड़ गया था। शिवराज के पड़ोस मे ही उनकी कोठरी है। कल की घटना के कारण शिवराज इतना शर्मिन्दा हो चुका था कि फिर से मिलने की इच्छा नहीं हो रही थी; परन्तु छोटे महाराज ने उन्हें पुकार ही लिया और बड़ी दर्द भरी आवाज में कहने लगे—"कल रात से तकलीफ शुरू हो गयी है। सन्तु तोते की अब कौन देख भाल करेगा? बिल्ली भी अक्सर आती है। इसलिए इसे "अपने घर रख लो, बेफ़िकर हो जाऊँ"।[3] मजबूरी से क्यों न ही शिवराज को सन्तु तोते का पिंजडा अपने साथ लेना पड़ा। तोते को सौपते समय "उनकी गदली-गदली आँखों में एक अजीब विरह-मिश्रित तृप्ति थी। जैसे किसी बूढ़े बाप ने अपनी लड़की विदा कर दी हो।"[4]

तीन-चार दिन हो गये थे छोटे महाराज की हालत खराब होती जा रही थी । अकेले कोठरी में पड़े रहते । कोई भी पास बैठने वाला नहीं था । सम्भवतः उनको ऊपर का बुलावा आया था । उनकी हालत काफी बिगड़ चुकी थी । सन्तु तोते की चिन्ता भी उन्हें सता रही थी । आज दोपहर को ही उन्होंने सन्तु तोते की कातर आवाज सुनी थी; और तब से वे बहुत परेशान हो उठे थे । "उनके चेहरे पर अथाह शोक की छाया व्याप्त रही थी, जैसे किसी भारी गम में डूबे हों । उनकी आँखों में कुछ ऐसा भाव था, जैसे किसी ने उन्हें गहरा धोखा दिया हो, उनके कानों में बार-बार सन्तु की वह आवाज गूँज रही थी, जो उन्होंने दोपहर में सुनी थी" ।[1] शिवराज के घर तक चलकर तो वे जा नहीं सकते थे, क्योंकि उतनी ताकत ही नहीं थी । सन्तु तोते की वास्तविक स्थिति जानने के लिए वे बेचैन थे । और इसी कारण असहाय हो के "शिवराज के घर की ओर बहुत देर आस लगाये रहे कि कोई निकले, तो पता चले । काफी देर बाद मनुआ (शिवराज का लड़का) तोते के दो-तीन हरे-पंखों का मुकुट बनाए माथे से बांधे, दो-तीन बच्चों के साथ खेलता दिखाई पड़ा, देखते ही सन्नाटा हो गया ।"[2] आज उनके सारे विश्वास ही उठ गये थे । सन्तु तोते को वे तुरन्त माँग लाये । उसकी पूँछ काटी गयी थी । वे बेहद दुःखी हुए । सन्तु के पिंजड़े पर कपड़ा ढाककर (बिल्ली सन्तु को परेशान न करे) वे सो गये । और सवेरे शिवराज ने देखा छोटे महाराज अब इस दुनिया में नहीं रहे । अन्तिम काल में रामनाम सुनने की बड़ी इच्छा थी; शायद इसीलिए वे इतने दिनों से सन्तु को राम नाम सिखा रहे थे । पन्तु सन्तु तोते की आवाज फूट नहीं रही थी । "पता नहीं, उनके अन्तिम क्षणों में भी सन्तु तोते की वाणी फूटी थी या नहीं ।"[3]

कस्बे के इस आदमी के उपर्युक्त विविध रूप यहाँ दिये गये हैं । पांच-छः दिनों की यह कहानी है परन्तु इसमें उनकी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा को ही रखा गया है । आरम्भ से मृत्यु तक । "वे जाति के वैश्य थे लोगों को पानी पिलाया करते थे, इसी कारण महाराज कहलाते थे।" गाँव वाले पानी पीकर एक-आध पैसा उनके पैरों के बीच कुर्सी पर रख कर चल देते थे । उसी पर महाराज जीते थे । "इनके बाप-दादा सोने-चाँदी का काम करते थे । काफी पुराना घर था, दुकान थी ।" जब बाप मरे तो इनकी उमर बहुत कम थी । माँ बचपन में ही गुजर गयी थी । रिस्ते की एक छोटी चाची सब देख भाल करती थी । फिर एक दिन बहुत-सी चोरी हुई । घर तबाह हो गया । यह चाची भी एक दिन तीर्थ के लिए निकली—महाराज को लेकर । खर्चे की जरुरत पड़ने पर रुपये मुख्तार से मँगवाती रहती । मुख्तार तो ऐसे

1. राजा निरबसिया, पृ० 243
2. वही, पृ० 244
3. वही, पृ० 244

ही अवसर की खोज में था। रुपये भेजता रहा तथा 10–15 साल के छोटे महाराज से दस्तखत भी लेता रहा। परिणामतः तीर्थ से लौटने के बाद दस्तखत बतलाकर मकान कुर्क कर लिया गया। महाराज इस प्रकार लूट लिये गये। तब से चाची जनाने अस्पताल में नौकरी करने लगी और छोटे (महाराज) ठेला लगाने लगे। उस समय इनकी उम्र 15–20 की रही होगी तब से आज तक ये अलग-अलग व्यवसाय करते रहे; परन्तु कहीं भी जम नहीं पाये। बिस्किटों का ठेला लेकर कई दिनों गली गली में घूमते रहे। फिर एक—होम्योपैथिक डाक्टर की दूकान मे नौकरी करने लगे। इस नौकरी के कारण मरीजों से सम्पर्क आने लगा। परिचय के सूत्र बढ़ने लगे। इसी कारण खुद वैद्य बनने की असफल कोशिश भी इन्होंने की। "इस तरह के न जाने कितने घरेलू धन्धे उन्होने चलाये"[1] और अन्त मे प्याऊ पर बैठने लगे। "इसीलिए जब गली-टोले के लड़कों ने उन्हें प्याऊ पर बैठते देखा और चमकदार काली पीठ पर जनेऊ दिखाई पड़ा तो वंशगत भावनाओं से अनजान कर्मगत सस्कारों के आधार पर उन्हें महाजन पुकारने लगे। तभी से छोटेलाल छोटे महाराज हो गये।"[2]

स्पष्ट है कि छोटे महाराज सामान्य समाज के सामान्य व्यक्ति ही हैं। इस प्रकार के लोग स्थान-स्थान पर मिलते हैं। अस्थिरता के कारण ही वे आज तक अकेले हैं। ऐसे इस सामान्य व्यक्ति के भीतर की असामान्यता को लेखक ने रेखांकित करने का प्रयत्न यहाँ किया है। जिंदगी में कभी किसी का प्यार महाराज को नहीं मिला, हर बार धोखा ही मिलते रहा है। बचपन में मुख्तार से, बाद में लोगों से तथा अन्त में शिवराज से धोखा हुआ। इस मानवी प्यार के अभाव के कारण ही वे संतु तोते पर सर्वाधिक प्यार करते हैं। प्यार का यह उदात्तीकरण तो है! संतु तोता ही उनका प्रिय साथी रहा है। अब उसी का मानसिक आधार उन्हें है। दुर्भाग्य से इस मानसिक आधार की दुर्गति शिवराज के परिवार वाले कर देते हैं। उसकी पूँछ उखाड़ दी जाती है। मृत्यु के पूर्व उन्हें यह जबरदस्त धक्का बैठ जाता है। इस धक्के को वे सहन नहीं कर सके हैं। बड़े ही विश्वास से उन्होंने तोता सौंपा था परन्तु उनके साथ फिर विश्वासघात हुआ।

शिवराज इसे समझ नहीं सका था। बाद में कस्बा आने के बाद छोटे महाराज जब सिल्क का महंगा कपड़ा शिवराज की ओर फेंक देते हैं और कहते हैं कि "इसका उपयोग तुम करो हमारे काम नहीं आएगा।" इतना ही नहीं "मुझ पर रहम दिखाते हैं सब वक्त की बातें है"—इससे उनके स्वाभिमान तथा उदारता का पता चल जाता है। अपनत्व तथा अधिकार जतलाना, परन्तु स्वाभिमान और उदारता के साथ–यह कस्बे के आदमी की विशेषताएँ हैं। सामान्य व्यक्ति के भीतर की यह असामान्यता ही है। कस्बे और शहर के व्यक्ति में यहीं अन्तर हो जाता है।

शिवराज को तोता सौंपकर पहले वे निश्चित हो जाते हैं। सारी दुनिया से वह भी बचपन से ही ठगे जाने के बावजूद वे शिवराज पर विश्वास रखते हैं। 'विश्वास रखना' यह कस्बे के आदमी की विशेषता ही है। परन्तु बाद में तोते की आर्त पुकार सुनकर उनका यह विश्वास समाप्त हो जाता है। इस समय वे बहुत बीमार हैं। उन्हें मानसिक और शारीरिक आधार की अत्याधिक आवश्यकता है। दुर्भाग्य से इस समय भी वे 'अकेले' रह जाते हैं।

कस्बे के आदमी की श्रद्धाएँ और आस्थाएँ इनमें भी भरी पड़ी हैं। बचपन से वे सुनते आ रहे हैं कि मृत्यु के समय (आखिरी सांस छोड़ते समय) रामनाम का श्रवण करने से आदमी को 'मुक्ति, मिलती है। इस 'मुक्ति' की इच्छा इनमें भी है। परन्तु महाराज यह जानते हैं कि उनकी यह इच्छा पूरी होनी मुश्किल है। क्योंकि न उनके बच्चे है; न पत्नी न कोई और। इसी कारण संतु तोते को अपने पास रखा है और उसे कई दिनों से रामनाम सिखा रहे हैं। इसी आशा से की मृत्यु के समय वे रामनाम सुन सकेंगे। परन्तु संतु तोते की वाणी फूटी नहीं है। उनकी यह इच्छा पूर्ण हुई थी या नहीं इसे कोई नहीं जानता।

महाराज द्वारा कस्बे की सारी विशेषताएँ—भावुकता, स्वाभिमान, अपनत्व, सहज-स्नेह, विश्वास रखने की वृत्ति, उदारता, आर्थिक परेशानियां-अस्थिरता व्यक्त हुई हैं। महाराज आर्थिक रूप से विपन्न थे। परिस्थितियों से जकड़े हुए थे। रूढ़ियों के बंधनों में फंसे हुए थे। फिर भी एक जीवंत मनुष्य थे। मस्तमौला और सदैव प्रसन्न होकर जीने की उनकी वृत्ति थी। उन्हें कोई समझ नहीं सका–यह उनका दुर्दैव!

(३) गर्मियों के दिन :

आधुनिक युग के विविध मूल्यों की तलाश कमलेश्वर अपनी कहानियों के जरिये करते रहे हैं। राजा निरबंसिया में बदलते नैतिक तथा आर्थिक मूल्यों को और 'खोई हुयी दिशाओं में व्यक्ति के बेहद अकेलेपन को उन्होंने व्यक्त किया है। ठीक इसी तरह प्रस्तुत कहानी द्वारा आधुनिक जीवन में व्याप्त निरर्थकता, खोखलेपन तथा झूठी प्रदर्शन की वृत्ति को स्पष्ट किया गया है।

बड़े शहरों के मूल्य कस्बाई जीवन पर किस प्रकार छा रहे हैं और इन शहरी मूल्यों से कस्बाई जीवन किस प्रकार आक्रांत हो रहा है इसको इस कहानी में स्पष्ट किया गया है।

किसी एक कस्बे के एक छोटे से वैद्य की यह कहानी है। यह कस्बा भारत के किसी भी प्रदेश का हो सकता है। बड़े शहरों में दुकानों पर साइन बोर्ड लगाने की पद्धति का प्रचलन इसी समय शुरू हुआ था। शहरों से यह प्रवृत्ति कस्बों मे भी आ रही थी। अब कस्बों में साइन बोर्ड लगाने का मतलब ही हो रहा था "औकात बढ़ाना।" धीरे-धीरे सभी दुकानों पर साईन बोर्ड दिखाई देने लगे। वैद्यजी भी अपनी दुकाननुमा अस्पताल पर साइन बोर्ड लगवाना चाह रहे हैं। साइनबोर्ड के महत्व को वे खूब समझ चुके है। इसके महत्व को औरों को भी समझाते हुए वे कहते है—"बगैर पोस्टर चिपकाए सिनेमा वालों का भी काम नही चलता। बड़े-बड़े शहरों में जाइए, मिट्टी का तेल बेचने वाले की दुकान पर साइन बोट मिल जाएगा। बड़ी जरूरी चीज है। बाल-बच्चों के नाम तक साइन बोट हैं, नहीं तो नाम रखने की जरूरत क्या है?"[1] विज्ञान की प्रगति, शिक्षा की नयी सुविधाएँ और शहरीकरण के कारण देहात के प्राचीन और परम्पराबद्ध व्यवसायों से सम्बन्धित व्यक्तियों की दशा बड़ी विचित्र और दयनीय हो गयी। इस कहानी का वैद्य एक ऐसी ही स्थिति का शिकार हो गया है। वंश परम्परा से उनके यहां वैद्य व्यवसाय चला आया है। सारे कस्बे में खूब इज्जत थी। पैसा भी काफी मिलता था। परन्तु इधर नये एम० बी० बी० एस० डॉक्टरों के कारण उनका सारा व्यवसाय चौपट हो गया है। अब उनकी ओर लोग मुश्किल से आते हैं। आर्थिक स्थिति पूरी तरह से बिगड़ चुकी है। प्रतिष्ठा नहीं के बराबर है। पुराने खानदानी अमीर और प्रतिष्ठित लोग फिर भी अपनी शान बनाए रखने की पूरी कोशिश करते रहते है। यह कोशिश कितनी निरर्थक हास्यास्पद और झूठी होती है और अन्ततः वह उनके भीतरी खोखलेपन को ही स्पष्ट करती है। वैद्यजी आज भी अपनी पुरानी शान में जीना चाहते हैं। नये डॉक्टरों की टीका टिप्पणी करते बैठते है। शहर से आयी हुई नयी बातो को वे स्वीकार भी करते हैं और निंदा भी। अब इसी साइन बोट वाली बात देखिए। एक ओर वे उसकी अहमियत स्पष्ट कर रहे हैं तो तुरन्त यह भी कहते हैं—"साइन बोट लगा के सुखदेव बाबू कम्पौण्डर से डॉक्टर हो गये, लेके चलने लगे।"[2] इस सुखदेव बाबू से उन्हें चिढ़ है। संभवतः उसके आने से ही इनका व्यवसाय चौपट हो गया हो। इसी कारण जब उन्हें यह खबर दी जाती है कि सुखदेव ने तो अब बुघईवाला इक्का-घोड़ा खरीद लिया है तब वे कह देते हैं—"ये सब जेब कतरने का तरीका है। मरीज से किराया

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 58
2. वही, पृ० 58

वसूल करेंगे। सइस को बख्शीश दिलाएंगे। बड़े शहरों के डॉक्टरों की तरह। इसी से पेशे की बदनामी होती है।.....अंग्रेजी आले लगाकर मरीज की आधी जान पहले सूखा डालते है।"[1] वैद्यजी इन अंग्रेजी दवावालों से परेशान हैं। बात-बात पर उनकी टीका करने लगते है। उनको लगता है कि अंग्रेजी तरीके से दवा देने की पद्धति को कोई भी सीख सकता है। उसमे मेहनत और बुद्धि की आवश्यकता ही नहीं है। वंशगत व्यवसायिक परम्परा पर उनका विश्वास है। किसी और जाति और खानदान के लोग दवा देने में सफल हो सकते है—इसे वे मानते नहीं। एक सीमा तक वे पूर्णतः सनातनी विचारो के है। आयुर्वेद की हर बार तारीफ करते हैं।" आयुर्वेदी, नब्ज देखना तो दूर, चेहरा देख के रोग बताता है।"[2] एक स्थान पर कहते हैं—"डॉक्टरी तो तमाशा बन गयी है। वकील—मुख्तार के लड़के डॉक्टर होने लगे। खून और सस्कार से बात बनती है.....हाथ में जस आता है। वैद्य का बेटा वैद्य होता है।"[3]

प्रगति से इस नये प्रवाह में सनातनी विचारों वालों और अपने ही स्वार्थ में डूबे हुए लोग बड़ी तेजी के साथ प्रत्येक क्षेत्र मे पिछड़ रहे है। नये विचार उन्हें पूरी तरह से उखाड़ने की कोशिश में लगे है। फिर भी ऐसे लोग अपनी प्रतिष्ठा को, अपने बड़प्पन को जब-तब सिद्ध करने की कोशिश मे लगे रहते है। वैद्यजी के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि वे अन्य डॉक्टरों के कारण किस प्रकार परेशान हैं। अपनी इस परेशानी को अथवा पराजय को वे निन्दा द्वारा व्यक्त करते हैं। वैद्यजी के यहाँ अब मरीज आते नहीं है। फिर भी वे अक्सर ऐसा बतलाते है कि बे बहुत व्यस्त हैं। आज वे मरीज की तलाश में ही है। इसीलिए हर आने वाले आदमी की ओर बड़ी आशा से देखते हैं और फिर निराश हो जाते है। किसी और काम से आये हुए उस व्यक्ति की आरम्भ में उपेक्षा करते हैं और फिर बाद मे यह सोचकर कि "हो सकता है, कल यही आदमी बीमार पड़ जाय या इसके घर में किसी को रोग घेर ले,"[4] कारण न होते हुए भी वे अपने व्यवसाय की तुलना अन्य व्यवसाय से करते हुए अपने व्यवसाय के महत्व को सिद्ध करने की कोशिश करते है—"हकीम वैद्यों की दुकान दिन भर नहीं खुली रहती। व्यापारी थोड़े ही हैं भाई!"[5] दुकान पर दिनभर मरीज तो आते नहीं; इस कारण वैद्यजी दिनभर निरर्थक और फालतू गप-शप लड़ाते रहते हैं। इस बेकाम की गप-शप से उनकी झूंठी आत्म प्रदर्शन की वृत्ति और खोखला

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 58
2. वही, पृ० 58
3. वही, पृ० 58
4. वही, पृ० 58
5. वही, पृ० 59

पन ही प्रकट होता है। अंग्रेजी डॉक्टरों पर निरर्थक और बेकार के आरोप लगाते बैठते हैं। उन्हें इस बात का दुःख है कि सरकार वैद्यों के साथ अन्याय कर रही है। अंग्रेजी दवा वाले डॉक्टरों को बिना किसी दिक्कत के लैसन्स मिलता है और ये डॉक्टर लैसन्स लेकर जिजर बेचते है और भंग-अफीम के लिए सरकार वैद्यों को लैसन्स देते समय काफी परेशान करती रहती है। एक ओर ये एम० बी० बी० एस० डॉक्टर हैं गैर जिम्मेदार और पानी का पैसा बनाने वाले और दूसरी ओर चूरन वाले भी वैद्य बन बैठें हैं। वैद्यजी की इस सारी चर्चा का एक ही अर्थ है कि वे ही असली वैद्य हैं और परम्परा से ज्ञान प्राप्त हो जाने के कारण आज भी वे सबसे बड़े हैं। लोग उनकी कीमत नहीं जानते।

स्पर्द्धा के इस युग में मजबूर होकर वैद्यजी भी अपने नाम का साइन बोट बनवा रहे है। इसके लिए उन्हें रुपये खर्चने की भी जरूरत नहीं पड़ी है। खर्च करना उन्हें संभव भी नहीं है क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति वैसी है नहीं। परन्तु बिना बोर्ड के प्रतिष्ठा कहां ? इसी कारण उन्होने चदर नामक एक नौजवान को पकड़ लिया है। लिखावट अच्छी होने का उसको यह शायद उन्होने पुरस्कार दिया है। इस साइन बोट को रगाने के लिए पेंटर पाँच रुपये मांग रहा था। वैद्यजी इतने रुपये कहां से लाते ? इसी कारण उन्होंने चदर को पकड़ा है। रंग एक मरीज दे गया। साइन बोट की ऊपर की पक्ति खुद वैद्यजी लिख चुके हैं। बाकी काम इस चदर से करा ले रहे हैं।

व्यवसाय बैठ जाने के कारण वैद्यजी तहसील आफिस के रजिस्टर भरने का काम करते हैं। अर्थात् केवल नकल का काम। परन्तु इस बात को सीधे नहीं स्वीकारते, "खाली बैठने से अच्छा है कुछ काम किया जाए, नये लेखापालों को काम-धाम आता नहीं ... . झक मारकर उन लोगों को यह काम उजरत पर कराना पड़ता है।"[1] गर्मियों के इन दिनों मे वैद्यजी इस प्रकार का फालतू काम मजबूरी से कर रहे हैं। फिर भी झूठी प्रतिष्ठा का ऐंठन कम नहीं हुआ है। यह काम करते हुए वे मरीज की प्रतीक्षा मे भी लगे हुए हैं। ऐसे ही किसी मरीजनुमा आदमी को देख कर फिर वे झूठी बड़प्पन की बातें शुरू कर देते हैं। उदा—"एक बोर्ड आगरा से बनवाया है, जब तक नहीं आता इसी से काम चलेगा। फुर्सत कहाँ मिलती है जो इस सब मे सर खपाएँ ....।"[2] बड़ी मुश्किल से जब एक आदमी उनके पास झूठा "डाकदरी सरटीफिकेट" मांगने आता है तब वैद्यजी खुश हो जाते हैं और इस प्रकार के झूठे सर्टिफिकेट के चार रुपये मागते है। वैसे वे दो मे तैयार है। इस आदमी के सामने अपनी व्यस्तता का झूठा नाटक करते हैं। और इस प्रकार के झूठे

सर्टिफिकेट देने में कितना खतरा है इस पर एक लम्बा लेक्चर भी झाडते हैं। "पांच से कम में दुनिया छोर का डॉक्टर नहीं दे सकता...... ......अरे, दम मारने की फुर्सत नहीं है। ये देखो, देखते हो नाम.... ....अब बताओ कि मरीजों को देखना जादा जरुरी है कि दो-चार रुपये के लिए सर्टिफिकेट देकर इस सरकारी पचड़े में फमना।"[1] चार रुपये सुनकर जब वह आदमी चुपचाप खिसक जाता है, तब वैद्यजी मन ही मन पछताते हैं। आज सुबह से किसी भी प्रकार की आमदनी नहीं हुई है। अगर यह शिकार भी चला जाए तो आज भी भूखा रहना पड़ेगा। इसी कारण वे बार-बार अपने मन को समझाते हैं कि "लौट-फिरके आयेगा।" एक पांडु रोगी का मरीज आकर कोई एक तावीज उनसे ले जाता है कुछ आने पैसे देकर। आज दिन भर की शायद इतनी ही कमाई। मरीज को तावीज बांधकर फिर वे झूठी प्रतिष्ठा, ज्ञान और इसी प्रकार की मन गढंत बातें चन्दर के सम्मुख शुरू कर देते हैं.......... "यह विद्या भी हमारे पिताजी के पास थी। उनकी लिखी पुस्तकें पडी है........ ... बहुत सोचता हूं, उन्हें फिर से नकल कर लूं......... ...बड़ी अनुभव की बातें हैं। विश्वास की बात है, बाबू ! एक चुटकी धूल से आदमी चगा हो सकता है।"[2]

गर्मियों के दिन की दोपहर बढने लगी। आसपास के सभी दुकानदार दुकानें बन्द करके अपने-अपने घर खाना खाने और आराम करने चले जा रहे हैं। परन्तु वैद्यजी अब भी दुकान पर हैं। रोज की तरह आज घर नहीं गये हैं। जाएंगे भी तो कैसे जाएंगे ? किसी भी प्रकार की कमाई आज हुई नहीं हैं। आसपास के दुकानदार वैद्यजी से पूछ रहे हैं कि क्या बात है आज वे अभी दुकान पर हैं ! तो वैद्यजी यह कह कर कि "हाँ ऐसे ही एक जरूरी काम है। अभी थोड़ी देर में चले जाएंगे।"[3] टाल रहें हैं। सभी ओर से निराश और पराजित वैद्यजी बार-बार पंखा झलते हैं, नकल करने लगते हैं। कुछ देर मन मारकर काम करने रहे, पर हिम्मत छूट गयी। क्योंकि उन्हें अब खूब भूख लगी है। और पास में पैसा नहीं है। "कुछ समय और बीता। आखिर उन्होंने हिम्मत की। एक लोटा पानी पिया और जांघों तक धोती सरका कर मुस्तैदी से काम में जुट गये।"[4] सचमुच, बड़ा करुण चित्र है यह ! परंतु इतनी असह्यय स्थिति होने के बाद भी वे इसे स्वीकार नहीं करते। फिर वही झूठा आत्मप्रदर्शन, व्यस्तता का बहाना। रस्सी जल गयी है पर उसकी ऐंठ अब तक बाकी है। जान पहचान के दुकानदार जब यह पूछते हैं "आज आराम करने नहीं गये

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 62
2. वही, पृ० 63
3. वही, पृ० 64
4. वही, पृ० 64

वैद्यजी ?" तब वैद्यजी तुरन्त कहते हैं "बस, जाने की सोच रहा हूं.....कुछ काम पसर गया था, सोचा, करता चलूँ।"[1]

वैद्यजी के उपर्युक्त चरित्र के माध्यम से कमलेश्वर ने आधुनिक जीवन में व्याप्त निरर्थकता की झूठी आत्मप्रदर्शन की वृत्ति के खोखलेपन को व्यक्त किया है। शहर और कस्बे में अब इस प्रकार के लोग सैंकड़ों की संख्या में मिलेंगे। प्रगति के प्रवाह में जो पिछड़ गये हैं, उनमें तो इस प्रकार की वृत्ति सर्वाधिक होती है। औरों की निंदा करते हुए वे अपनी प्रतिष्ठा को साबित करना चाहते हैं। स्पर्धा के इस युग में अपनी प्रतिभा के बल पर संघर्ष करने की ताकत ऐसे लोगों में नहीं होती। इस कारण वे अलग-अलग पद्धतियों से अपने भीतरी दुःख को व्यक्त करते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर आकर मनगढ़न्त बातें करते रहते हैं। (उदा: वैद्यजी का एम. बी. बी. एस. डॉक्टरों की निंदा करना) इस प्रकार की निंदा करके उन्हें शायद मानसिक आनन्द मिलता होगा अथवा मानसिक समाधान ! यथार्थ को सीधे झेलने की हिम्मत इन लोगों में होती नहीं। वे यथार्थ को भूलकर एक कल्पना की दुनियां में, झूठे आत्म प्रदर्शन के पर्दे में जीने लगते हैं। परिणामत: वे व्यवहार में और पीटे जाते हैं। वैद्यजी ऐसे ही लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इस दृष्टि से वे अत्याधिक यथार्थ और जीवंत हैं। वैद्यजी के स्थान पर इस प्रकार की स्थिति में जीने वाले किसी को भी रख देंगे तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

(४) नीली-झील :

पहले दौर में लिखी गयी अन्तिम कहानी है—नीली झील। अन्य किसी भी कहानी की अपेक्षा प्रस्तुत कहानी विवादास्पद रही है। क्योंकि कमलेश्वर की जीवन दृष्टि में यह कहानी फीट् नहीं बैठती। कमलेश्वर जीवन की ओर यथार्थ की दृष्टि से देखते हैं। रुमानियत, कल्पना और तरलता का उन्होंने जहाँ-कहीं विरोध किया है। नयी कहानियों का जो दौर चला उसमें उपर्युक्त मूल्यों पर कठोर प्रहार किए गए.तथा उसके स्थान पर जिंदगी और आम आदमी से जुड़ी हुई कहानियाँ लिखी जानी लगीं। इसी कारण इन नयी कहानीकारों की अपनी कुछ विशेषताएँ बन गयीं। इनके अपने कुछ दायरें बन गए। या यूँ कहिए कि आलोचकों ने इनकी कहानियों को पढ़कर इनकी कुछ विशेषताओं और सीमाओं को रेखांकित कर दिया। इसीलिए 'जब इनमें से कोई कहानीकार अपने ही दायरे को तोड़कर जब नयी बात कहने लगता है तो आलोचक टूट पडते हैं और कहने लगते हैं कि देखिए, ये जिस बात का विरोध कर रहे थे ; उसी को फिर अपनी कहानियों में दुहरा रहे हैं। और केवल इस आधार पर यह तर्क उपस्थित कर देते हैं कि इनके पास कहने के लिए बहुत कम है। जब

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 64

इसको वे कह देते हैं तो फिर पुरानी बातों की ओर मुड जाते हैं। 'नीली झील' के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के आरोप किए गये हैं। इस कहानी में तरलता, स्वप्निलता, रोमान्टिकता और सूक्ष्म सौंदर्य बोध ही उभर आया है। अन्य कहानियों की तुलना में इसमें यथार्थ बहुत ही कम है। प्रगतिशील दृष्टिकोण का भी अभाव-सा है। एक ओर इन्द्रनाथ मदान जैसे आलोचक इसे कहानी ही मानने को तैयार नहीं हैं तो दूसरी ओर डॉ० धनंजय वर्मा इसे स्वातन्त्र्योत्तर काल में लिखी गयी दस सर्वश्रेष्ठ कहानियों में रखते हैं। मतमतान्तरों के इस जगल मे गुजरने के पहले इस कहानी को कहानी के माध्यम से ही समझने की कोशिश करेंगे। कहानी मूल संवेदना से परिचित हो जाने के बाद इसके सम्बन्ध में निश्चित निष्कर्ष दे देना सरल हो जाएगा और संभवत ऐसा निष्कर्ष अधिक प्रामाणिक भी साबित हो सकेगा।

प्रस्तुत कहानी से संवेदना के विभिन्न स्तर अभिव्यक्त हुए हैं। पुरानी और नयी कहानी जिस तरह राजा निरबंसिया में एक ही समय विकसित होती गयी है; ठीक उसी प्रकार यह कहानी यथार्थ और सूक्ष्म-सौन्दर्य, वास्तविकता और कल्पना, व्यवहार और रूमानियत, गद्य और कविता इन दो विभिन्न स्तरों पर विकसित होती गयी है। इस दृष्टि से भी इसके शिल्प और शैली का विशेष महत्व है। सम्पूर्ण कहानी में अभिभूत कर देने वाले वातावरण का चित्रण किया गया है। लेखक की सूक्ष्म-सौन्दर्य दृष्टि और उसके कवि व्यक्तित्व की यहां अभिव्यक्ति हुई है। प्रकृति के बीच हम सबका जन्म हुआ है। प्रकृति हमारे साथ अभिन्न रूप मे जुड़ी है। संभवत: इसी कारण इस प्रकृति के प्रति एक अव्याख्येय प्यास हमारे मन में है। कभी-कभी हम इसे अचानक अनुभव करते हैं और काफी उदास हो जाते हैं। इस संघर्षमय जिन्दगी से ऊबकर प्रकृति के अधीन रहने की कल्पना केवल कवि कल्पना नहीं, हम सबके भीतर का वह कटु सत्य है। प्रकृति और सौन्दर्य की यह भूख अनादि-अनन्त काल से हमारे भीतर है। इस भीतरी सौन्दर्य की रक्षा के लिए हम निरन्तर प्रयत्न-शील रहते हैं। इस भीतरी सूक्ष्म वृत्ति को रूमानियत, तरलता, कल्पना अथवा पलायनवाद कहकर हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। इसके अस्तित्व को हमें स्वीकारना ही पड़ेगा। नये कहानीकारों ने यथार्थ के सभी रूपों का अगर ईमानदारी से चित्रण किया है तो इस सूक्ष्म मानसिक यथार्थ को भी व्यक्त करना उनका दायित्व है। इस दृष्टि से इस कहानी का अध्ययन जरूरी है।

महेश पांडे नामक एक अशिक्षित, सामान्य आदमी की यह कहानी है। यह महेश पांडे कानपुर के मिल की नौकरी छोड़कर किसी शहर से थोड़ी दूर पर स्थित नीली झील की ओर जाने वाले रास्ते पर मजदूरी कर रहा है। सन् 1928–29 के समय की बात है। (पहले दौर की अन्तिम कहानी : पहला दौर 1958–59 में समाप्त; लेखक ने लिखा है कि 30 वर्ष पहले की बात है।) इस महेश पांडे में सौन्दर्य के प्रति एक अनाम-सी भूख है। शायद शरीर की, शायद प्रकृति के सौन्दर्य

की। और इसी भूख के कारण वह इस झील की ओर आने वाली स्त्रियों को ताकते रहता है। नीला रग उसका सबसे प्रिय रंग रहा है। इसी कारण वह नीली झील से प्यार करता है। इसी नीली झील की तरह उसे जो भी वस्तु दिखाई देती है, उसकी ओर वह आकृष्ट हो जाता है। मजदूर होने के बावजूद भी गोरी मेमो को वह निडर होकर ताकते रहता है। इसी कारण साथ वाले मजदूर उससे जलते है और उसे ऐसा न करने का उपदेश भी देते हैं। परन्तु महेश पाडे अपने ही नशे में पागल है। नीली झील और नीला रग देखने के बाद उस पर एक नशा, एक मस्ती सी छा जाती है। सौन्दर्य (फिर वह शारीरिक हो अथवा प्राकृतिक) की ओर आकृष्ट हो जाना, उसे एक टक निहारते रहना उसकी आदत ही नही, मजबूरी भी है यहा मजदूरी शुरू करने के बाद ही यह आकर्षण पैदा हुआ हो—ऐसी बात नही। "कानपुर मे मिल से छुट्टी पाते ही वह चौराहे वाले कोने पर रुककर इसी तरह औरतो को देख-देख कर खुश होता था,"[1]

एक दिन इस नीली झील की ओर हिस्दुतानी स्त्री-पुरुषो का एक दल आया था। अच्छी-अच्छी औरतें भी थी। नीली साडी वाली एक औरत भी उसमे थी। महेश पाडे उसकी ओर आकृष्ट हो गया। उसे लगातार देखते रहा। वह कुछ काम कहे उसकी प्रतीक्षा करता रहा। इन दोनो मे क्या बराबरी! अपनी सारी सीमा और मर्यादाओं के बावजूद भी महेश उनकी ओर ताकते रहा। उनसे बात करने का अवसर खोजते रहता है। इस आकर्षण के मूल मे शारीरिक आकर्षण की बात हो सकती है, पर इसके अलावा महेश की वह भीतरी अनाम-सी सूक्ष्म सौन्दर्य की भूख है, इसे नकारा नही जा सकता। इस नीली झील पर देश-विदेश से पक्षी आते हैं, महेश पाडे को इन विविध पक्षियो से अत्यधिक प्यार है। इस झील के किनारे पक्षियों के हल-चल को वह घण्टो निहारते बैठता है। सैलानी इन पक्षियों का शिकार करने के लिए आते है, और महेश को पक्षियो की यह हत्या कभी पसन्द नही आयी। नीली झील के पास का शान्त सरोवर! सभी ओर की हरियाली, विविध पेड़-पौधे और इनमें मुक्त होकर जीने वाले विविध पक्षी! सचमुच बड़ा सुन्दर काव्यात्मक दृश्य है यह! महेश प्रकृति के इसी दृश्य पर मुग्ध है। इसी कारण इन सैलानियो में से एक साहब को "बन्दूक सम्भालते देख उसका मन उचाट हो गया।"[2] महेश इन लोगों का सामान ढोते हुए इनके साथ आया था। मजबूरी अथवा पैसो के लिए उसने सामान ढोया नहीं था। सहज उस नीली साडी वाली के कारण उसने यह काम किया था। इसी कारण जब एक साहब ने उसके इस काम के पैसे देने की कोशिश की तो—"एक क्षण पहले का महेश अपना सारा आकर्षण भूल कर चल पड़ा।

उसका मन भारी हो आया था।"[1] स्पष्ट है कि महेसा स्वाभिमानी है। किसी की दया पर वह जीना नहीं चाहता। अपनी भीतरी अनाम, अव्याख्येय आकर्षण की पूर्ति के लिए उसने यह मजदूरी स्वेच्छा से की थी। उसका मूल्यांकन पैसों में सम्भव ही नहीं था। महेसा अत्यधिक सरल और काव्यात्म हृदय का सवेदनशील युवक है। उसे पक्षियों से, नीली झील से अत्यधिक प्यार है। पक्षियों के शिकार की योजना देखकर वह बहुत-बहुत उदास हो जाता है। "रह-रहकर उसकी आंखों के सामने वह बन्दूक घूम रही थी और कानों में चिड़ियों का शोर समाया हुआ था। हर आवाज वह पहचानता था उन पक्षियों को भी, जो साल भर इसी झील के किनारे रहते थे और उनकी भी, जो इस ऋतु में दूर पहाड़ों से उतरकर, कुछ दिनों के लिए मेहमानों की तरह आते थे।"[2] जैसे ही बन्दूक चलने लगी वह और भी उदास हो गया।

कहानी का एक हिस्सा यहां समाप्त हो जाता है। इस समय के महेश को एक साधारण मजदूर के रूप में बतलाया गया है। इस झील, पक्षी और स्त्री सौन्दर्य के प्रति उसके मन में बेहद आकर्षण है और पक्षियों की हत्या उसे अच्छी नहीं लगती। इस मामले में वह बड़ा ही भावुक है। उसकी संवेदना का एक स्तर यहां बतलाया गया है। यहां तक यह कहानी यथार्थ लगती है।

कहानी के दूसरे हिस्से में महेसा की वैवाहिक जिन्दगी को स्पष्ट किया गया है। नीली झील के पास के कस्बे में महेसा बस गया है। अब उसने मजदूरी का काम छोड़ दिया है। अब उसे मजदूरी कभी करनी नहीं पड़ेगी। कारण इसी कस्बे की एक अमीर परन्तु विधवा पण्डिताइन से उसने शादी करली है। यह पण्डिताइन भी महेसा पर आशिक थी। इस अमीर विधवा से विवाह करने का प्रयत्न अब तक अनेकों ने किया था। उसने कभी किसी से आंख नहीं लड़ाई। "गांव के ठाकुर ने जान दे दी, पर नजर नहीं मिलाई उसने।"[3] महेसा पण्डिताइन से विवाह करके खुश है। हालांकि दोनों के आयु में काफी अन्तर है। उसने किसी भी स्वार्थ के कारण इस विधवा से ब्याह नहीं किया है। बस; 'आशनाई हो गयी!' शहरी स्त्रियों का, उनके रहन-सहन का आकर्षण महेसा में कई वर्षों से था। इसी कारण वह पारबती को (पण्डिताइन) उसी तरह से रहने, कपड़े पहनने सिखाता है। उसकी इच्छा है कि पारबती किसी मेम की तरह दिखाई दे। यह इच्छा भी बड़ी यथार्थ है देहाती युवकों के मनमें भी इसी प्रकार की इच्छाएँ होती हैं। शहरी स्त्रियों की तरह वे भी दिखाई दें, इसकी वे पूरी कोशिश करते रहते हैं। इसी कारण उसने पारबती को कई नयी चीजें लाकर दी थी। और पारबती—जो कि एक प्रौढ़ा है— महज महेसा के कारण

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 101
2. वही, पृ० 101–102
3. वही, पृ० 103

इन चीजों का उपयोग करती है। पारबती का रुपयों का लेन-देन का व्यवसाय है। इसी कारण महेसा को आर्थिक चिन्ता नहीं है अब वह निश्चित हो गया है। काम-धाम करने की उसे जरूरत नहीं थी। परन्तु अब भी वह झील के किनारे घण्टों जाकर बैठता। झील और वहाँ के पक्षी उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। बन्दूक लेकर जाने वाले सैलानियों को देखकर वह भीतर से परेशान हो जाता। मनुष्य की क्रूरता से उसे चिढ़ है। पर वह कर भी क्या सकता है? उसका यह भीतरी दर्द भौतिक दर्दों से एकदम अलग है। आध्यात्मिक वेदना जिस प्रकार सूक्ष्म, घोर, व्यक्तिगत और विशिष्ट होती है; कुछ इसी प्रकार की स्थिति इस दर्द की भी है। पारबती भी इस स्थिति को समझ नहीं पाती। इसीलिए महेसा का यूँ घण्टों बाहर रहना उसे अच्छा नहीं लगता, और जब महेसा कहता कि वह झील के किनारे बैठकर पक्षियों की क्रीड़ा को, उनके सौन्दर्य को देखने बैठता है—तो उसका विश्वास नहीं होता। किसी का भी विश्वास बैठना मुश्किल ही है। 25-30 वर्ष का युवक घण्टों किसी झील के किनारे केवल पक्षियों का निरीक्षण करने बैठता है और उसमें उसे बेहद तृप्ति होती हैं, इस बात को; घोर सांसारिक प्रश्नों में खोये हुए लोग समझ नहीं पाएँगे। पारबती जब यह कहती है कि तीतर ही देखना हो तो फिर इतनी दूर झील तक क्यों जाते हो, "बलदू के घर जाकर देख सकते हो,"[1] तब महेसा का सीधा सा उत्तर है—"पिंजरे में बन्द तीतर को क्या देखना? मुझे कोई पालना तो है नहीं, पता नहीं लोग चिड़ियों को पालते हैं।"[2] उसके इस उत्तर में ही उसका दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है। वह पक्षियों को उनके सही वातावरण में मुक्त, स्वच्छन्द और स्वतन्त्र रूप में ही देखना पसन्द करता है। इन पक्षियों को लोग बन्द करके किस प्रकार का आनन्द पाते हैं—यह उसकी समझ के परे की बात है।

इधर पारबती मां बनने वाली है। महेसा को उसने इस सम्बन्ध में कई सूचनाएँ दी हैं। प्रकृति का प्रेमी महेसा पहले तो इसे गम्भीरता से नहीं लेता। परन्तु बाद में वह गम्भीर हो जाता है। इधर पारबती बहुत डरने लगी है। इस डर का कारण वह नहीं जानती। परन्तु पता नहीं क्यों उसे बार-बार लग रहा है कि आगे खतरा है। इधर महेसा का मन भी बहुत भरा-भरा रहता है। झील के किनारे वह अब अधिक देर तक बैठ रहा है। सिवा झील के उसका कहीं मन भी नहीं लगता। पक्षियों के विविध प्रकारों को, उनकी आदतों को, उनकी नट-खट प्रवृत्ति को वह समझाते बैठता है। झील और वहां के पक्षियों के सम्बन्ध में बोलने में उसे विशेष आनन्द होता है। एक ग्रामीण और अशिक्षित व्यक्ति का यह पक्षी ज्ञान आश्चर्य-जनक है। पक्षियों के विविध सुन्दर अण्डों का उसने संग्रह किया है। एक दिन

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 105
2. वही, पृ० 106

बातों-बातों में वह ये अण्डे पारबती को दिखाता है। सनातनी ब्राह्मण समाज की यह स्त्री उन अण्डों को स्पर्श करने में पहले तो सकुचाती है पर उन अण्डों के सौन्दर्य से प्रभावित होकर वह एक को उठाती है और दुर्दैव से वह अण्डा उसके हाथों फूट जाता है। इस अण्डे का फूट जाना पारबती के लिए सबसे बड़ा अपशकून है। मानो उसके गर्भ का बच्चा ही मृत हो गया हो ! इस दुर्घटना का उसके मानस पर इतना गहरा परिणाम हो जाता है कि उसका यह डर सही साबित हो जाता है और वह अस्पताल में मृत बच्चे को जन्म देकर मर जाती है। अण्डे के फूटने के दिन से ही पारबती भविष्य के आशंकामय परिणामों को सोचकर रोयी थी।

कहानी का दूसरा हिस्सा यहाँ समाप्त हो जाता है। महेश पांडे फिर से अकेला हो जाता है। परन्तु इस 'अकेलेपन' में और पहले के अकेलेपन में काफी अन्तर है। अब वह विधुर है और पारबती का काफी पैसा उसके पास जमा है। मरने से पहले पारबती ने बार-बार कहा था कि उसकी मृत्यु के बाद उसके नाम पर उस कस्बे में एक मन्दिर और धर्मशाला बनवायी जाए। महेश पाँडे अब उसी फिक्र में है। वह पारबती की अन्तिम इच्छा पूरी करना चाह रहा है। इसी कारण बड़ी क्रूरता से वह रुपये वसूल कर रहा है। नीली झील के किनारे घण्टों बैठना और पारबती के रुपये वसूल करना ये दो ही काम उसके लिए बच गए हैं। उसके कठोर व्यवहार–से लोग तंग आ चुके है। परन्तु वह अपने ही धुन में खोया हुआ है।

झील की ओर सैलानी अब भी आ रहे हैं। बदूके लेकर आ रहे है। पक्षियों का शिकार कर रहे है। महेसा पक्षियो के घायल चीख से परेशान हो उठता है। पक्षियों की उस चीख में और पारबती की अस्पताल में निकली हुई चीख में उसे अद्‌भुत समानता महसूस होती है। वह न पारबती को बचा पाया न इन पक्षियों को बचा सकता है। अपनी असहायता पर वह झल्लाता, दुःखी होता, पर वह कर भी क्या सकता है ? रुपयों की वसुली का काम तो चल ही रहा था। इसी बीच उसे पता चला कि चुंगी की जमीन नीलाम होने वाली है। मन्दिर के लिए उसे जगह की आवश्यकता थी। जगह और मन्दिर बांधने के लिए रुपयों की कमी थी। चंदे के रूप में उसने कई लोगों से रुपये इकठ्ठे किए। मन्दिर का नाम सुनकर लोगों ने रुपये दिए भी। अब महेसा के दिमाग में द्वन्द्व शुरू हुआ। पारबती की अंतिम इच्छा पूरी की जाए अथवा नीली झील की जमीन खरीदकर पक्षियों को संरक्षण दिया जाए। एक ओर मृत पत्नी की अंतिम इच्छा है तो दूसरी ओर पक्षियों की चीख, उनकी छटपटाहट ! क्या करे वह ? झील के कीनारे वह घंटों सोच में डूबा हुआ बैठता। सवनहंस, सुरखाब, मुडार, करकटी, सरप पक्षी आदि पक्षियों को वह एक टक निहारते बैठता। झील के किनारे शिकारियों को देखकर उसका मन उचट जाता। झील और मन्दिर का यह द्वन्द्व अत्याधिक प्रखर हो चला। और आखिर में "नीलाम वाले दिन

उसने तीन हजार की बोली लगाकर चबूतरे के पास वाली जमीन नहीं, दल-दली नीली-झील खरीद ली"[1]। लोगों की आंखें फट गयी। इसका दिमाग तो खराब नहीं हुआ ? न इसने पारबती की अंतिम इच्छा पूरी की और न बड़ी पूँजी डालकर अपनी रोजी रोटी की व्यवस्था। दल-दल वाली झील खरीद कर क्या मिलने वाला है इसे ? "लेकिन उसने किसी को कुछ जवाब नहीं दिया, और मन में लगता कि अब तो वह पारबती को भी जवाब नहीं दे सकता। उसके पास जवाब है ही क्या ?"[2] झील को खरीदकर पहला काम उसने यह किया कि "झील वाले रास्ते के पहले मोड़ पर उसने एक तख्ती टांग दी, जिस पर लिखा था, "यहां शिकार करना मना है" और नीचे एक पक्ति थी दस्तखत' झील का मालिक, महेश पांडे"[3]।

इस सम्पूर्ण कहानी में महेश पांडे की मानसिकता के तीन स्तर व्यक्त हुए हैं।

(1) एक मजदूर के रूप में काम करते समय शहरी स्त्रियों और अंग्रेजी मेमों के प्रति उसके मन में आकर्षण पैदा हो जाता है। आकर्षण के इस स्तर में शारीरिकता है, सौंदर्य के प्रति आसक्ति है; बनाव-सिंगार है और आधुनिक रहन-सहन के प्रति खिचाव है। किसी भी आम आदमी की यह मानसिकता हो सकती है। साधारण स्थिति में जीने वालों के मन में सम्पन्न वर्ग के प्रति हमेशा इस प्रकार का आकर्षण रहा है। अन्य मजदूर मन-ही-मन ऐसा सोचते होंगे। महेश पांडे में यह आकर्षण इतना जबरदस्त है कि वह काम छोड़कर इन स्त्रियों की ओर देखते बैठता है। न केवल इतना ही अपितु वह आगे बढ़कर उनसे बातचीत करने की हिम्मत भी करता है। मन की यह स्थिति सामान्य है। परन्तु धीरे-धीरे यह शारीरिक सौंदर्य बोध प्रकृति के सौंदर्य बोध में परिवर्तित होने लगता है। नीली झील इस सौंदर्य का प्रतीक बन जाती है। स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर की यह मानसिक यात्रा है। और यहीं से उसकी मानसिकता का दूसरा स्तर आरंभ हो जाता है।

(2) यह दूसरा स्तर पारबती से विवाह के बाद आरंभ होता है। अब स्त्रियों की ओर देखने की आवश्यकता नहीं हैं। क्योंकि एक भरे-पूरे शरीर का वह मालिक है। अलबत्ता उसके अचेतन मन मे शहर की स्त्रियां छाई हुई है इसलिए वह पारबती को उसी ढग से रहने,पहनने तथा खुलकर व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है। पारबती से विवाह करने के कारण वह आर्थिक दृष्टि से निश्चित है। इसीलिए घंटों नीली झील के किनारे जा बैठता है। इस दूसरे स्तर पर आकर

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. 119.
2. वही, पृ० 119
3. वही, पृ० 119

उसका सौंदर्य बोध अधिक सूक्ष्म और व्यक्तिगत बनने लगता है। झील के किनारे जाकर पक्षियों के सूक्ष्म सौंदर्य को निहारना उसकी मजबूरी बन जाती है। ठीक इसी तरह इस सौंदर्य की हत्या से. पक्षियों के शिकार से उसे चिढ़ पैदा हो जाती है। इसी बीच एक और दुर्घटना हो जाती है। पारबती के हाथों से अंडा फूट जाता है। और इस अपशकून के आघात से वह मृत बच्चे को जन्म देकर मर जाती है। मरते समय की उसकी चीख और बंदूकों की गोली से घायल पक्षियों की चीख में महेश पाँडे को अभिन्नता महसूस होती है। अनुभूतिका यह उदात्तीकरण अपने में विशिष्ट है। पारबती के वेदना और पक्षियों की वेदना में वह अन्तर नहीं कर पाता। अब तक उसके लिए पारबती ही सब कुछ थी। पारबती के प्रति जो प्रेम था वह अब 'झील -प्रेम' में परिवर्तित हो गया है। यही वह स्थिति है जहाँ से पांडे सामान्य से असामान्यख की ओर मुड़ जाता है।

शारीरिक भूख की पूर्ति के बाद अब भीतर की वह अनाम भूख अधिक प्रखर होने लगती है। इस स्तर पर आकर वह व्यवहार और वस्तु सत्य को भी भूलने लगता है और यहीं से तीसरी ओर अंतिम मानसिक स्थिति शुरू हो जाती है।

(3) पारबती की मृत्यु के बाद महेश अपने को अत्याधिक अकेला अनुभव करने लगता है। अब तक पारबती थी; उसकी सर्वाधिक फिक्र किया करती थी। इसी पारबती के कारण वह व्यवहारिक जगत से जुड़ा हुआ था। उसके चले जाने के बाद तो उसका सूक्ष्म सौंदर्य बोध अधिक तीव्र हो उठता है। शिकारियों के कारण पक्षियों की आर्त चीख उसे परेशान करने लगती है। इसी चीख के कारण वह व्यवहार को और यहां तक की पारबती की अंतिम इच्छा तक को भूलने लगता है। पक्षियों की यह आर्त चीख मानों उसके लिए उसकी आत्मा की चीख ही थी। इस चीख को हमेशा के लिए बंद करना उसकी पहली जिम्मेदारी थी। यह चीख उसे पारबती की याद दिलाती, इसी कारण वह अस्वस्थ हो उठा। उसके सामने दो ही मार्ग थे। पारबती की अंतिम इच्छा की पूर्ति करना अर्थात् मन्दिर और धरमशाला बनवाना अथवा नीली झील की जमीन खरीरकर पक्षियों के इस शिकार को हमेशा के लिए बंद करना। इन दो स्थितियों को लेकर उसके मन में द्वन्द्व चलता रहा। अखिर वह करे तो क्या करे ? मन्दिर बनवाने के लिए उसने लोगों से चंदा भी वसूल किया। मूरत के लिए जयपुर भी हो आया। परन्तु मन इस स्थिति के लिए तैयार नहीं था। वह पागल मन बार-बार झील के किनारे मडरा रहा था। वहां के पक्षियों छट-पटाहट से उसकी आत्मा भी छटपटा रही थी। कठोर व्यहार और तरल स्वप्निलता का यह संघर्ष था। जीवन और सौंदर्य का, वास्तविकता और कल्पना का, यथार्थ और रुमानियत का यह द्वन्द्व था। कई दिनों के इस द्वन्द्व के बाद महेश पांडे के भीतर की वह सूक्ष्म सौंदर्यवृत्ति प्रबल हो उठी और उसीकी जीत हो गयी। इसी कारण वह नीली झील

खरीदने का निर्णय ले लेता है। इस निर्णय के कारण लोगों ने उसे पागल कहा, मूर्ख कहा ! व्यवहार की दृष्टि से झील का कोई फायदा नहीं है परन्तु व्यवहार के परे भी कहीं न कहीं एक भूख होती है उसकी पूर्ति के लिए व्यवहार को छोड़ना ही पड़ता है। संसार के सारे सुखों के मोह से मुँह मोड़कर उस अनादि-अनंत की खोज में निकलने वाले भक्त में और पक्षियों को बचाने के लिए नीली झील खरीदने वाले महेश पांडे में इसी कारण अद्‌भुत समानता है। नीली झील की सौंदर्य की रक्षा के लिए वह लोगों को धोखा दे देता है, उनके रुपये हजम कर डालता है। उसका यह सौन्दर्यबोध मानवीय ही नहीं मानवेत्तर व्यापक करुणा का सौंदर्य है। झील को खरीदकर वह एक ओर अपने सौंदर्य बोध को सुरक्षित रखता है तो दूसरी ओर पक्षियों को संरक्षण दे देता है।

महेश पांडे के चरित्र का पूर्वार्ध अधिक यथार्थ है परन्तु धीरे-धीरे वह तरल, भावुक और सौंदर्यवादी बनते गया है। फिर भी उसके इस मानसिक विकास में एक निश्चित संगति है।

एक कस्बे का आदमी बड़े शहर में जाकर किस तरह भटकन, अकेलेपन और सुनेपन को महसूस करता है, इसका संकेत भी इसमें किया गया है ऐसा आलोचकों का कहना है। परन्तु इस बात को बहुत दूर तक स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसमें शहर का चित्रण तो है ही नही। और फिर महेश पाँडे के अकेलेपन और सूनेपन के कारणों की खोज कहीं और करनी पड़ती है; शहरी संस्कृति में नहीं। खोई हुई दिशाओं के नायक के सदर्भ में उपर्युक्त निष्कर्ष अधिक उचित है। महेश पाँडे के भीतर का सूनापन ईश्वर की खोज में निकले एक भक्त का सूनापन है। अन्तर इतना है कि महेसा सौंदर्य की प्यास से पीड़ित है किसी ईश्वर के मिलने के लिए नहीं।

अन्य कहानियों की तुलना में प्रस्तुत कहानी प्रदीर्घ है। अर्थात यहाँ पर दीर्घता से तात्पर्य घटनाओं के संयोजन से तथा काल-मर्यादा से है; पृष्ठ संख्या से नहीं। राजा निरबंसिया के बाद यही एक कहानी इस प्रकार की विविध घटनाओं से जुड़ी है। कमलेश्वर की कहानियों में एक ही मनःस्थिति प्रमुख होती है। पात्रों की मानसिक स्थिति के इतने स्तर अपवाद स्वरूप में ही इतकी कहानियों में मिलेंगे। मजदूर महेश पांडे, फिर उसका पारबती से विवाह, पारबती की गम्भीरता, मृतशिशु, पारबती की आखिरी इच्छा, महेश की कोशिश और अंत में नीली झील की खरेदी। कमलेश्वर की कहानी कला में इसी कारण शायद यह कहानी अलग-अलग दिखाई देने लगती है। कथ्य का इतना विस्तार और घटनाओं की इतनी विविधता उनकी बहुत कम कहानियों में है। वातावरण का सूक्ष्म और प्रभावकारी चित्रण इस कहानी की अन्यतम विशेषता है। वातावरण का इतना सूक्ष्म चित्रण अनिवार्य भी था। एक आलोचक के अनुसार—"अनुभूति की वास्तविकता और विषय की तथ्यात्मकता यहां

गौण है। केवल एक सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति संपूर्ण कहानी में व्याप्त है। कथ्य वातावरण से अत्याधिक सम्प्रक्त है। कहानीकार के सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय प्रत्येक स्थान पर मिलता है। पक्षियों के सूक्ष्म हलचल को शब्द बद्ध करने का यह प्रयत्न सचमुच ही असाधारण है। इस सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के कारण कहानी का आधा भाग काव्यमय बन गया है। गद्य और काव्य का सुन्दर समन्वय इस कहानी में हुआ है। डा० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है—"कविता के धागों से कहानी बुनी गयी है। कविता की उदास छाया कहानी पर मंडराती है पारबती के चल बसने के बाद कहानी अपने पावों पर चलने के बजाए लेखक के सहारे लंगड़ाने लगती है"[1] मदान के इन आरोपों को पूर्णतः स्वाकीर करने में आपत्ति है। इस कहानी का कथ्य ही ऐसा है कि वह कविता की ओर अपने आप मुड़ जाती है। लेखक अपने कथ्य और अनुभूति के प्रति प्रामणिक रहे ऐसा आग्रह करने वाले आलोचक फिर यह आरोप क्यों लगाते हैं कि 'कविता की उदास छाया कहानी पर मंडराती रही है ? लेखक इस स्थिति में कैसे मार्ग निकाल सकता है ?

प्रगतिशीलता और यर्थाथ का आग्रह करने वाला कहानीकार जब सूक्ष्म सौंदर्य बोध की कहानी लिखता है तब इस प्रकार के आरोप किये ही जाते हैं। प्रत्येक कहानीकार की कहानियों के ढांचे के सम्बन्ध में हमने कुछ निश्चित धारणाएँ बना ली है। जब कोई प्रतिभा सम्पन्न लेखक हमारे द्वारा बनाई गई धारणाओं को तोड़कर आगे चला जाता है : तब हम इसी प्रकार के आरोप लगाते हैं। वास्तव में यह लेखक की सीमा नहीं हमारे चिंतन और समीक्षा की सीमा है।

---

1. हिन्दी कहानी : सर्वेक्षण माला : डा. इन्द्रनाथ मदान

कहानी यह दूसरा दौर है—"व्यक्ति के कारण और विसंगत संदर्भों को समय के परिप्रेक्ष्य में समझने का।" अर्थात् 'अनुभव के समय संगत संदर्भ' को समझ लेने का यहाँ प्रयत्न है।

—कमलेश्वर

कथा-यात्रा का दूसरा दौर

कालक्रम: 1959 से 1966 तक
स्थान: दिल्ली

कहानियाँ

(1) दिल्ली में एक मौत
(2) खोई हुयी दिशाएँ
(3) तलाश
(4) मांस का दरिया

"कहानी लिखना मेरे लिए यातना नहीं है, यातनापूर्ण हैं वे कारण जो मुझे कहानी लिखने के लिए मजबूर करते हैं.....और यह मजबूरी तभी होती है, जब मेरा अपना संकट दूसरों के संकट से संबद्ध होकर असहय हो जाता है.....या मेरी अपनी करुणा दूसरों की संवेदना से मिलकर अनात्म हो जाती है।"

—कमलेश्वर

(१) दिल्ली में एक मौत :

दूसरे दौर में लिखी गयी "दिल्ली में एक मौत" यह कहानी महानगरीय सभ्यता की कृत्रिमता ; यांत्रिकता और संवेदन शून्यता को अधिक तीव्रता के साथ स्पष्ट करती है। इस दौर में कमलेश्वर व्यक्ति के दारुण और विसंगत संदर्भों को समय के परिप्रेक्ष्य में जानने की कोशिश कर रहे हैं। प्रस्तुत कहानी में भी व्यक्ति विशेष अनुभूतियों को समय के परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश हुई है।

लोकप्रिय बिजनैस मैनेजर सेठ दीवानचन्द की मौत हुई है। इस मौत के समाचार को सुनकर उनसे परिचित विभिन्न व्यक्तियों में जो प्रतिक्रियाएँ हुई हैं— उसको इस कहानी में शब्द बद्ध किया है। प्रस्तुत कहानी का निवेदक (अथवा लेखक कमलेश्वर) भी सेठ दीवानचन्द से परिचित था। उसके अड़ोस-पड़ोस में रहने वाले लोग भी सेठ से परिचित थे। उनमें से कुछ लोगों का आर्थिक लाभ भी सेठजी के कारण हुआ था। आज सेठ की मृत्यु की खबर सबेरे के अखबार में पढ़कर निवेदक परेशान हो गया है चिंता में पड़ गया है। यह परेशानी अथवा चिंता उनकी मृत्यु को लेकर नहीं अपितु कड़ाके की इस सर्दी में सेठ की शव यात्रा में शायद शामिल होना पड़ेगा ; इस भय से उत्पन्न हो गयी है। दिसम्बर का यह महिना है। सबेरे नौ बजे भी कड़ाके की ठण्डी है। दिल्ली की रोजमर्रा की जिंदगी पर सेठ की मृत्यु का कोई असर नहीं हुआ है। बसें दौड़ रही हैं। टैक्सियाँ यात्रियों को ले जा रही हैं, अड़ोस-पड़ोस के लोग भी अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। वासवानी के यहाँ स्टोव्ह जल रहा है, सरदारजी मूँछों पर फिक्सो लगा रहे हैं; सभी घरों में जिंदगी की खनक है। और उधर सेठ की मृत्यु हुई है। और उनकी अरथी सड़क पर चली आ रही है। अरथी किस मार्ग से गुजरेगी इसकी सूचना सबेरे अखबार में दी गयी है। निवेदक इस कड़ी सर्दी में शवयात्रा जाने में न उत्सुक है न मानसिक रूप से तैयार। परन्तु उसे यह "खटका लगा था कि कहीं कोई आकर ऐसी सर्दी में शव के साथ जाने की बात न कह दे।"[1] वह अन्य पड़ोसियों से भी घबरा रहा था कि कहीं वे शवयात्रा के लिए चलने का आग्रह न करें। अपने कमरे में बैठकर वह सभी पड़ोसियों के दैनंदिन व्यवहार पर निगरानी रख रहा था। वह यह देखना चाह रहा है कि सेठ की मृत्यु से इन लोगों पर क्या परिणाम हुआ है और ये शवयात्रा में शरीक होने वाले हैं अथवा नहीं ? अगर वे सभी सम्मिलित हो रहे हैं तो उसे भी मजबूरी से वहाँ जाना होगा हालांकि उसकी कतई इच्छा नहीं है। औरों के व्यवहार से वह भांप रहा है कि वे शायद जाएंगे नहीं। "सरदारजी नास्ते के लिए मक्खन

---

1. खोई हुई दिशाएँ, पृ० 75

मंगवा रहे हैं, इसका मतलब है वे भी शवयात्रा में शामिल नहीं होंगे ।"[1] अतुल भवानी अपने कपड़े आयरन करना चाह रहा है, इसका मतलब वह भी नहीं जाएगा। मिसेज वासवानी मेक-अप करने में व्यस्त है, इसका मतलब है वे दोनों (मिस्टर-मिसेज) भी शवयात्रा में नहीं जाएँगे । सरदारजी रोज की तरह अपने बूटों को पॉलिश करवा ले रहे हैं । मिसेज वासवानी अपने पति से पूछ रही थी "नीली साड़ी पहन लूँ ? या"[2] और मिस्टर वासवानी टाई बांध रहे हैं ।

मेक-अप करने वाली और साडी का चुनाव करने वाली मिसेज वासवानी, कपड़े आयरन करके तैयार होने वाला अतुल भवानी, सूट और टाई पहन कर तैयार मिस्टर वासवानी, बूटों को चमकाकर, नास्ता करके दुपहर के भोजन की हिदायतें देकर निकलने वाले सरदारजी–इन सबको इस रूप में देखकर कौन कह सकेगा कि ये सब लोग शव यात्रा में सम्मिलित होने की तैयारी में लगे हैं ? उनकी इस तैयारी को देखकर ऐसा लगता है जैसे वे किसी उत्सव में, किसी पार्टी में अथवा किसी विवाह में सम्मिलित होने जा रहे हैं । निवेदक इन लोगों की अब तक की तैयारी को देखकर सोच रहा था कि वे लोग शायद शव-यात्रा में जाने वाले नहीं है ; और उसे इस बात की खुशी भी थी। क्योंकि इतने सर्द वातावरण में घर से बाहर निकलने की उसकी इच्छा भी नहीं थी । परन्तु जब ये पडोसी इस ढंग से तैयार होकर शवयात्रा के लिए निकलते हैं ; तब उसे एक जबरदस्त धक्का बैठता है । कस्बे के संस्कारों को लेकर आया हुआ यह निवेदक इस महानगरीय सभ्यता से आश्चर्यचकित हुआ है । कस्बें में अथवा देहातों में मृत्यु का समाचार मिला कि लोग सभी काम छोड़कर तुरन्त निकल आते हैं । परन्तु महानगरों में घर से निकलते समय सम्पूर्ण तैयारी के साथ लोग निकलते हैं । शव-यात्रा हो या विवाह अथवा जन्म-दिन का कार्यक्रम इनके लिए सब बराबर हैं । किसी भी सार्वजनिक कार्यक्रम में भाग लेना हो तो संपूर्ण मेक-अप और तैयारी के साथ ही निकलते हैं । मौत का उन्हें एहसास ही नहीं है । वहाँ कौन आएँगे, (प्रमिला वहाँ जरूर पहुंचेगी, क्यों डार्लिंग ?) किस तरह आएँगे, वहाँ भी मेल-मुलाकात से काम निकल सकते हैं अथवा नहीं ? — शव यात्रा में भाग लेने वालों के दिमागों में यही बातें हैं । गुजरे हुए व्यक्ति के प्रति या उनके घरवालों के प्रति कोई आत्मीयता नहीं । मानों यह शव-यात्रा नहीं एक सम्मेलन-यात्रा है । शहरी जीवन की इस संवेदन शून्यता से निवेदक हैरान है । वह खुद भी महानगरीय यांत्रिकता, कृत्रिमता और संकुचित वृत्ति के आगोश में आ गया है । अन्तर केवल इतना है कि और लोग अपने सम्पूर्ण व्यवहार का तटस्थ होकर पर्दाफाश नहीं कर सकते, निवेदक कर सकता है । निवेदक और मृत सेठ की अधिक पहचान नहीं है । इस कारण वह

---

1. खोई हुई दिशाएँ, पृ० 76
2. वही, पृ० 78

शव-यात्रा में जाना नहीं चाहता। परन्तु यह तो असली कारण नहीं है। असली कारण तो यह है कि वह इस सर्दी में बाहर निकलना नहीं चाहता। जब उसके चारों पड़ोसी (मिस्टर-मिसेज वासवानी, सरदारजी, अतुल भवानी) शव-यात्रा के लिए निकल पड़ते हैं, तो वह अस्वस्थ हो जाता है। उसे लगता है कि इनके कारण उसका जाना भी जरूरी हो गया है। नहीं तो, उसका अभाव औरों को खटकेगा।

चारों पड़ोसी जब निकले हैं तब भी उनके चेहरे पर शवयात्रा में सम्मिलित होने के भाव नहीं हैं। वे एक-दूसरे के कपड़ों की सिलाई की चर्चा कर रहे हैं। मिसेज वासवानी के मेक-अप और आकर्षक व्यक्तित्व को सरदारजी बार-बार निहारने लगे है। वे चारों टैक्सी में बैठकर श्मशान की ओर निकल गये हैं। और निवेदक सोच रहा है कि अब उसे क्या करना होगा। इच्छा न होते हुए भी शायद वहाँ जाना होगा। "दीवानचंद की शव-यात्रा में कम से-कम मुझे तो शामिल हो ही जाना चाहिए था। उनके लड़के से मेरी खास जान-पहिचान है और ऐसे मौके पर तो दुश्मन का साथ भी दिया जाता है। सर्दी की वजह से मेरी हिम्मत छूट रही है।"[1] एक और मित्र के पिता की घटना है तो दूसरी और सर्दी। कितनी अजीब बात है कि आधुनिक मनुष्य औरों के दु खों में सीधे सम्मिलित होने के बजाए, छोटी-मोटी फालतू बातों को लेकर अधिक चिंतित है। यहाँ इस मनोवृत्ति पर जबरदस्त व्यंग्य किया गया है। दोस्त क्या कहेगा, और लोग क्या कहेंगे इसी चिंता से पीड़ित होकर वह शव-यात्रा में सम्मिलित होने निकलता है। इस सम्मिलित होने के मूल में न करुणा के भाव हैं, न शोक है, न सहानुभूति। वास्तव में सच्ची संवेदनाओं को लेकर शव-यात्रा में सम्मिलित होने वालों की संख्या नगण्य सी ही है। श्मशान-भूमि पर सैकड़ों लोग इकठ्ठे हुए हैं। परन्तु उनमें से अधिकतर औपचारिकता के कारण आएं हैं; कुछ लोग वहाँ किसी और से मिलने तथा अपना काम करा लेने के लिए आए हैं, स्त्रियाँ अपने शरीर का प्रदर्शन करने आयी हैं। मृत्यु जैसी घटना के साथ भी कौन से मूल्य जोड़े जा रहे हैं; उसका सही चित्र यहाँ दिया गया है। सेठ की इस शव-यात्रा में सम्मिलित होने वालों की सख्या उनकी प्रसिद्धि और कारोबार की तुलना में कम ही है। क्योंकि वातावरण में सर्दी अधिक है। न आनेवालों के लिए प्राकृतिक बहाना बन गयी है। अगर और गंभीरता से सोचें तो यह बहाना भी बड़ा लचर और गलत है। इसी कारण निवेदक सोचता है कि "आदमी के मरते ही कितना फर्क पड़ जाता है। पिछले साल ही दीवानचद ने अपनी लड़की की शादी की थी तो हजारों की भीड़ थी।"[2] और आज·····। यह अन्तर जिन्दगी और मौत का अन्तर है। शहर की स्वार्थी, संवेदन शून्य और व्यापारी मनोवृत्ति का यह प्रमाण है।

---

1. खोई हुई दिशाएं, पृ० 80.
2. वही, पृ० 81

श्मशान-भूमि पर लोगों की भीड़ और कारों की कतार दिखाई दे रही है। "औरतों की भीड़ एक ओर खड़ी है। उनकी बातों की ऊँची ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही है। उनके खड़े होने में वही लचक है जो कनाट प्लेस में दिखाई पड़ती है। सभी के जूड़ों के स्टाइल अलग-अलग हैं।'[1] इन औरतों की ओर देखकर ऐसा नहीं लगता कि खबर पाते ही तुरन्त परेशान और दु.खी होकर ये घर से निकली हों। रोज की तरह घंटों मेकअप करके निकली है। प्रदर्शन की यह वृत्ति श्मशान-भूमि तक कैसे जा रही है—इसका मार्मिक चित्रण यहाँ किया गया है। स्त्रियों की यह स्थिति है और पुरुषों की·····"मरदों की भीड़ से सिगरेट का धुँवा उठ-उठकर कुहरे में घुला जा रहा है। और औरतों की आँखों में एक गरूर है।"[2] मिसेज वासवानी अन्य स्त्रियों से आराम से गपशप कर रही हैं। उनके गपशप का विषय कोई भी हो सकता है पर सेठ दीवानचंद नहीं। और मिस्टर वासवानी अपनी मिसेज को आँखों की इशारे से कह रहे हैं कि शव-दर्शन के लिए आगे बढ़ें। बड़ी अजीब स्थिति है यह! जिस काम के लिए यह आयी हैं; उसे ही भूल गयी हैं। अलबत्ता कुछ स्त्रियाँ शोक-का अभिनय ठीक से कर रही हैं। उनके उस अभिनय से प्रभावित होकर अन्य स्त्रियाँ भी उनका अनुकरण कर रही हैं—मानों एक स्पर्धा-सी लगी हो—शोकाभिव्यक्ति की। श्मशान-भूमि पर अन्तिम कार्यक्रम संपन्न होने जा रहा है। इकठ्ठे लोग सेठ दीवान का अन्तिम दर्शन ले रहे हैं। एक महिला माला रखकर कोट की जेब से-रुमाल निकालती है और आँखों पर रखकर नाक सुर-सुराने लगती है और पीछे हट आती है। ·····और सभी औरतों ने रुमाल निकाल लिये हैं और उनकी नाकों से आवाजें आ रही हैं।"[3] अजब स्थिति है यह! कृत्रिमता, फैशन और तड़क-भड़क की इस संस्कृति में शोक भी एक फैशन अथवा अन्धानुकरण की प्रवृत्ति मात्र बन गया है। यहाँ इस श्मशान-भूमि पर इकठ्ठे लोग सेठ के सम्बन्ध में बोल नहीं रहे हैं; अपनी अपनी भविष्य की योजनाओं और अन्य कामों के बारे में चर्चा कर रहे हैं। अतुल-भवानी अपने कागज निकालकर वासवानी को दिखा रहे हैं; तो स्त्रियाँ अपने मेक-अप की तथा रात की पार्टी की बातें कर रही हैं। जैसे—मिसेज वासवानी कह रही है—"प्रमिला ने शाम को बुलाया है, चलोगे न डीयर? कार आ जाएगी। ठीक है न?"[4] श्मशान-भूमि से लोग अपने-अपने काम पर निकल जा रहे हैं। गति के इस युग में किसी के शोक में थोड़ी देर के लिए सम्मिलित होने की इच्छा किसी की नहीं है। अब दिन के साढ़े ग्यारह बजे है। अधिकतर लोग श्मशान-भूमि से सीधे

---

1. खोई हुई दिशाएँ, पृ० 81.
2. वही, पृ० 81
3. वही, पृ० 82
4. वही, पृ० 82

अपने दफ्तरों अथवा अन्य कहीं किस काम से जा रहे हैं। क्योंकि सभी नहा-धोकर नास्ता करके पूरी तैयारी से निकले हुए हैं। और निवेदक इस बात पर पछता रहा है कि मैं तैयारी करके क्यों नहीं निकला। कुल पांच छः लोग ही बिना तैयारी के निकले हैं। (शायद वे सेठ के घर के ही हों) वे शायद सीधे घर जाएंगे। निवेदक यह समझ नहीं पा रहा हैं कि वह क्या करे ? मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि घर जाकर तैयार होकर दफ्तर जाऊँ या अब मौत का बहाना बनाकर आज की छुट्टी ले लूँ—आखिर मौत तो हुई ही है और शव-यात्रा में शामिल भी हुआ हूँ [1]।"

सपूर्ण कहानी में महानगरीय मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति हुई। निवेदक जो लेखक ही है इस मनोवृत्ति का तटस्थ दृष्टा है।—उसने उन सारे लोगों के शब्द-चित्र मात्र दिये है जो इस अवसर पर इकट्ठे हुए हैं। सेठ की मृत्यु की खबर से लेकर उन्हें जला देने की अवधि तक पाँच लोगों की (जिनमें से वह खुद भी एक है) विभिन्न प्रतिक्रियाओं, हलचलों और मनोवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। बौद्धिकता के कारण यांत्रिकता का प्रवेश जिंदगी के हर क्षेत्र में हो रहा है। प्रत्येक प्रसंग और घटना को लेकर कुछ निश्चित सूत्र बनाए जा रहे हैं। परिणामतः सभी ओर घोर यांत्रिकता के दर्शन हो रहे हैं। किसी भी प्रकार की दुर्घटना हुई हो तो भी व्यक्ति अपने दैनंदिन व्यवहार के प्रति सर्वाधिक सजग होकर सोचता है। विशाल फैले हुए शहरों के कारण उसे यह संभव नहीं कि पहले वह श्मशान चले जाएँ ; वहाँ से घर जाकर नहा-धो ले, खाना खाएं और फिर काम पर चला जाए। इसमें समय और सम्पत्ति इन दोनों की बर्बादी है। वह एक दिन की छुट्टी भी नहीं लेता है। क्योंकि ऐसे छोटे-मोटे काम के लिए (मौत ?) वह अपनी एक छुट्टी बर्बाद नहीं करना चाहता। वह तो छुट्टी किसी और काम के लिए सुरक्षित रखना चाहता है। इस शहरी मनुष्य की भी अपनी मजबूरियाँ हैं। इन मजबूरियों के कारण भी उसे कई बार ऐसा व्यवहार करना पड़ता है। शहरों का संपन्न वर्ग इस यांत्रिकता और प्रदर्शन का सबसे ज्यादा शिकार हो गया है। इस कहानी में स्त्रियों का जो चित्रण किया गया है; वह इसी कारण अधिक मार्मिक है। शहरी—जीवन की कठोर यथार्थता का चित्रण करने वाली यह कहानी व्यंग्य से परिपूर्ण है। फैशन, शौक की अभिव्यक्ति, मध्यम वर्गीय व्यक्ति, स्त्रियाँ आदि सभी पर इसमें कठोर व्यंग्य किया गया है।

---

1. खोई हुई दिशाएं-पृ० 83

(२) खोई हुई दिशाएँ :

सभी परिचित दिशाओं का खो जाना यह 20 वीं शती के मनुष्य की नियति है; और उसकी त्रासदि भी। खोई हुई इन दिशाओं का तीव्र एहसास शहरी आदमी को अधिक हो रहा है। उसमें भी ऐसे शहरी आदमी को जो देहात और कस्बे से आकर शहरी बन गया है। देहात और कस्बो में हर स्थान पर अपनापन होता है। प्रत्येक व्यक्ति या तो सीधे परिचित होता है अथवा परिचय का संकेत देता है। परन्तु शहर के भीड़-भाड़ में परिचित भी अपरिचित हो जाता है। बढ़ते हुए शहरों ने मनुष्य के स्नेह और अपनत्व को ही खत्म कर दिया है। उद्योगों, यन्त्रों और मिलों के कारण उपभोग की सैकड़ों नयी-नयी वस्तुएँ बनी हैं परन्तु ये वस्तुएँ जिस मनुष्य के लिए बन रही हैं वह धीरे-धीरे अकेला पड़ता जा रहा है। पुराने मूल्य अपने स्वार्थ के लिए रौंद दिए जा रहे हैं। सबसे भयावह बात यह हो रही है कि 'आदमी' के परिचय की सभी दिशाएँ धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है। इस तरह मनुष्य के अस्तित्व पर बहुत बड़ा सकट आ गया है। मनुष्य भी धीरे-धीरे यंत्र-मय और संवेदन शून्य बनते जा रहा है। शहर के ऐसे संस्कारों में ही जो जन्म लेते हैं; बढ़ते हैं वे इस स्थिति को शायद अनुभव नहीं करते। परन्तु देहात और कस्बे के सस्कारों को लेकर जो लोग शहर में आते है वे सर्वाधिक परेशान, क्षुब्ध और अकेलेपन के रोग से पीड़ित हो जाते हैं। अकेलेपन की इस गहरी सवेदना को लेकर इधर जितनी भी अच्छी कहानियां लिखी गयी हैं; उसके लेखक या तो कस्बे से आए हुए हैं अथवा एकदम देहात से। शहरी जीवन की इस भयानक अवस्था को इस विभाग से आये हुए लेखक ही तीव्रता से अनुभव कर सकते हैं। शहरों ने क्या खोया है और क्या पाया है इसे इसी विभाग के लेखक बतला सकते हैं। शहरों में मनुष्य की मात्र भीड़ है मनुष्य कहीं नही है। 'मेरे साथ कोई तो है', 'मुझे कोई तो पहचानता है', 'मैं अकेला नहीं हूँ'—इसी एहसास के बलबूते पर मनुष्य जीता है। उसकी जिंदगी की और उसके अस्तित्व की भी यही पहली शर्त है। देहात और कस्बे मनुष्य की इस मानसिक आवश्यकता की पूर्ति करते रहे हैं। देहात और कस्बे की हर सजीव-निर्जीव वस्तु में कहीं-न-कहीं अपनत्व दिखाई देता है। परन्तु शहर की सारी चीजें अपनी कभी नहीं लगती। वास्तव में शहर किसी का भी नही होता। शहर का यह खालीपन और अकेलापन धीरे-धीरे व्यक्ति में प्रवेश करने लगा है और वह खुद अनुभव करने लगा है कि शहर उसका अपना है नहीं।

सन् 1959–60 में जब कमलेश्वर अपना कस्बा छोड़कर दिल्ली जैसे विराट शहर में आ गये तब यह कहानी लिखी गयी है। स्पष्ट कि एक कस्बाई संस्कारों का व्यक्ति जब शहर में आ जाता है और वहाँ चार-पाँच वर्ष जी लेने के बावजूद भी वह

अनुभव करने लगता है कि वह यहाँ मात्र अकेला है। इस समय की मानसिक स्थिति को व्यक्त करने के लिए ही यह कहानी लिखी गयी है। कमलेश्वर हर नये शहर अथवा प्रदेश को कहानी के माध्यम से समझ लेने की कोशिश करते रहे हैं। दिल्ली अथवा किसी भी शहर को इस कहानी के माध्यम से आत्मसात् करने की कोशिश वे कर रहे हैं। या यूँ भी कहा जा सकता है कि नये स्थान में खुद को 'अड़जेस्ट' करने के लिए वे जिस मानसिकता से गुजरते है उसे कहानी के माध्यम से व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत कहानी इसी प्रकार की कहानी है। वास्तव में इस कहानी में कथ्य के नाम पर कुछ भी नहीं हैं। चन्दर की मानसिकता, और उसके अकेलेपन की स्थिति को ही यहाँ व्यक्त किया गया है।

इस शहर मे आकर चन्दर को तीन वर्ष हो गये हैं। कस्बाई संस्कृति और सस्कारों पर उसका व्यक्तित्व विकसित हुआ है। इसी कारण वह हर स्थान पर परिचित की आँखें ढूँढता है। कृत्रिमता और औपचारिकता से उसे बेहद चिढ़ है। परन्तु जिस दिल्ली शहर मे वह आया है वहाँ इन दो के सिवा तीसरी स्थिति का सामना ही नहीं होता। आज वह सबेरे आठ बजे घर से निकला है और अब शाम हो रही है। एक प्याली कॉफी पीकर वह दिन भर घूम रहा है, भूख का एहसास भी उसे नही हुआ है। "दिमाग और पेट का साथ ऐसा हुआ है कि भूख भी सोचने से लगती है"।[1] इतने बड़े शहर मे वह एकदम अकेला पड़ गया है। "आसपास से सैकड़ों लोग गुजरते पर कोई नहीं पहचानता। हर आदमी या औरत लापरवाही से दूसरों को नकारता या झूठे दर्प में डूबा हुआ गुजर जाता है।"[2] इसी अजनबियत के कारण उसे बार-बार अपना शहर याद आता है जहाँ से तीन साल पहले वह चला आया था— 'गगा के सुनसान किनारे पर भी अगर कोई अनजान मिल जाता तो नजरो मे पहचान की एक झलक तैर जाती थी।"[3] यहाँ सब कुछ अलग विचित्र और उलटा ही है। इसी कारण वह सोचता है 'और यह राजधानी ! जहाँ सब अपना है, अपने देश का है.....पर कुछ भी अपना नहीं है, अपने देश का नहीं है।"[4] चन्दर केवल अपनत्व चाहता है। अपनत्व लोगों से, सड़को से उन सभी से अक्सर उसे मिला करते हैं। परन्तु कोई भी तो ऐसा नहीं है। सब अपने-अपने कार्य में व्यस्त, यंत्रवत।

सड़को के किनारे घर हैं, बस्तियां है, पर किसी भी घर में वह नहीं जा सकता। संभवतः यह चन्दर की अतिभावुकता है कि वह किसी से भी सहानुभूति

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 40
2. वही, पृ० 40
3. वही, पृ० 40
4. वही, पृ० 40

और अपनत्व चाह रहा है। आज के इस गतिशील युग में इस प्रकार की चाह ही गलत है। एक शहर में तो यह और भी असभव। अपने घर के सदस्यों से तो अपनत्व की माग गलत नहीं है। 'पत्नी' तो सर्वाधिक रूप मे पुरुष के साथ जुड़ी हुई है। घर जाने के बाद तो कम-से-कम अपनी यातना को अकेलेपन को आदमी व्यक्त कर सकता है। परन्तु शहरो में यह स्थिति भी संभव नही। चन्दर यही अनुभव कर रहा है। घर जाने के बाद भी पत्नी के निकट अपने को पाने के लिए एक लम्बी प्रक्रिया से उसे गुजरना पड़ता है। बड़े शहर छोटे मकान ! फिर अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ ! उनके चले जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। खिड़कियों के पर्दे लगा लेने पड़ते हैं। "और इतनी लम्बी प्रक्रिया से गुजरने के पहले ही उसका मन झुंझला उठेगा.....सारा प्यार और समूची पहचान न जाने कहाँ छिप चुकी होगी, अजीब-सा बेगानापन होगा।"[1] इसी कारण तो वह अधिक झल्ला उठा है। अड़ोस-पड़ोस, सड़कें, दुकानें, बाग-बगीचे सभी स्थान पर उसे इसी प्रकार का बेगानापन का अनुभव हो रहा है। परिचित भी अपरिचत लग रहे हैं। कस्बे के सस्कारों का युवक चन्दर इस सारी स्थिति को झेल नही पा रहा है।

(1) वह जिस गली में रहता है वहाँ एक गैरेज पिछले पन्द्रह वर्षों से है। गैरेज जबसे खुला है तब से इमानदारी से काम करने वाला एक मैकनिक वहाँ है। परन्तु इस गैरज मालिक को इस पन्द्रह साल पुराने मैकेनिक पर आज भी विश्वास नहीं है। और चन्दर इस काईयापन को समझ नहीं पाता। 'अविश्वास' यह शहर की अपनी विशिष्ट पहचान है और विश्वास कस्बे की विशेषता। इसी कारण चन्दर को गैरेज के मालिक का यह व्यवहार खटकता है।

(2) पड़ोस में रहने वाले किशन कपूर नामक व्यक्ति को वह आज तक देख भी नहीं सका है। अलबत्ता रोज उसके नाम की प्लेट वह देखते रहा है। दो साल के बाद भी पड़ौस के एक व्यक्ति को न पहचानने का दुःख उसे है। न बिशन कपूर को हालाकि अकेले चन्दर की कपूर प्रति अत्यधिक उत्सुकता के बावजूद वह सम्बन्ध रख नहीं सकता यही विडंबना है।

(3) डाकखाना, बैंक तथा अन्य किसी भी सार्वजनिक स्थानों पर लोगों का व्यवहार एकदम कृत्रिम और यंत्रवत है। कहीं पर भी 'पहचान' की सुगन्ध नहीं है। अपने शहर 'इलाहाबाद' के किसी भी छोटे-बड़े व्यक्ति के सम्बन्ध में वह सब कुछ जानता था परन्तु यहां सब अजनबी ही है। बच्चों को लेकर घूमने वाली यहां की मम्मियां माएँ लगती नहीं है। "बच्चों की शक्लें और शरारतें तो बहुत पहचानी-सी लगती हैं, पर गोल गप्पे खाती हुई उनकी मम्मी अजनबी है, क्योंकि उसकी आंखों में

---

1. मेरी प्रिय कहानियां, पृ० 40

मासूमियत और गरिमा से भरा हुआ प्यार नहीं है। उनके शरीर में मातृत्व का सौंदर्य और दर्प भी नहीं है।"[1]

(4) शहर की निर्जीव वस्तुएँ भी अपनी नहीं लगती। चन्दर अनुभव करता है—"तनहा खड़े पेड़ों और उसके नीचे सिमटते अंधेरे में अजीबसा-खालीपन है। है। तनहाई ही सही, पर उसमें अपनापन तो हो।"[2]

(5) इस शहर में आकर चन्दर को तीन साल हो गये। तीन साल की यह जिन्दगी मात्र यंत्रवत चलती रही है। किसी भी प्रकार का विशेष परिवर्तन हुआ नहीं है। कोई ऐसी घटना भी नहीं हुई है जिसे संजोकर रखा जा सके। "इन तीन सालों में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जो उसका अपना हो, जिसकी कचोट अभी तक हो, खुशी या दर्द अब भी मौजूद हो।"[3]

(6) चन्दर अक्सर अनुभव करता है कि शहर के इस भीड़-भाड में वह अपने को भूलता जा रहा है। अपने व्यक्तित्व से ही वह अलग होते जा रहा है। मानों चन्दर नामक व्यक्तित्व का एक हिस्सा भीड़ का अंग बन गया हो और 'चन्दर' समाप्त-प्राय हो गया हो। इसी कारण चन्दर अपने से मिलना चाहता है। उसके भीतर का वह असली चन्दर (कस्बाई चन्दर) सुरक्षित रह सके। इसी कारण चन्दर सोचता है—"एक अरसा हो गया एक जमाना गुजर गया, वह खुद अपने से नहीं मिल पाया।"[4] उसने अपनी डायरी के हर शुक्रवार के आगे नोट किया कि—"खुद से मिलना है। शाम सात बजे से नौ बजे तक।" परन्तु नहीं। "न जाने क्यों अपने से मिलने में घबराता है।"[5] वास्तव में यह स्थिति भयानक ही है। अपने भीतरी व्यक्तित्व को जब आदमी करीब-करीब खत्म-सा कर देता है; तब अपने-आप से मिलने वह घबराता है। और इसी कारण वह या तो भीड़ का अंग बन जाता है यंत्रवत व्यवहार करने लगता है अथवा नशे में खो जाता है। अपने आंतरिक व्यक्तित्व को भुला देने की उसकी यह कोशिश होती है। पिछले तीन वर्षों में 'चन्दर' में भी कुछ इसी प्रकार का परिवर्तन होने लगा है। यह परिवर्तन जब पूर्ण हो जायेगा तब हम कह सकेंगे कि यह आदमी पूर्णतः 'शहरी' बन गया है। जीवन की सभी दिशाओं को खोने के बाद ही ऐसा परिवर्तन संभव है। चन्दर इस प्रक्रिया से गुजर रहा है। अपने भीतरी अंश को वह आज भी टटोल रहा है।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 42
2. वही, पृ० 43
3. वही, पृ० 43
4. वही, पृ० 43
5. वही, पृ० 43

(7) चन्दर को बार-बार अपनी शिक्षा पद्धति पर चिढ़ आती है। उसे लगता है कि शिक्षा पद्धति मात्र खडहरों के परिचय की तरह है। "चन्दर को लगा, जिंदगी के पच्चीस साल वह इन गाइडों के साथ खण्डहरों में बिताकर आया है, जिनकी जीवन्त कथाओं को वह कभी नहीं जान पाया, सिर्फ दीवाने-खास उसे दिखाया गया.....।"[1] इस शिक्षा पद्धति के कारण वह मृत भूतकाल पर बहुत बोल सकता है, जीवन्त यथार्थ पर कुछ नहीं। इस अकेलेपन के एहसास को शायद अधिक तीव्र बनाया है।

(8) इस शहर में मित्र के नाम पर जो भी उसे मिलते हैं उनके व्यवहार में वह अत्यधिक औपचारिकता और कृत्रिमता को ही अनुभव करता है। अक्सर ये मित्र किताबी भाषा बोलते हैं, फिल्मी मजाक करते हैं। उनमें वह बेतुकल्लुफी नहीं मिलती जिसके कारण मित्रता की सही पहचान होती है। "खोखली हसी के ठहाके हैं और दीवार पर एक घड़ी है, जो हमेशा वक्त से आगे चलती है।"[2] टी-हाउस में भी इसी प्रकार का वातावरण है। यहां आने वाला प्रत्येक व्यक्ति अजनबी बनकर आता है और अजनबी बनकर ही जाता है। किसी के देखने में कोई मतलब ही नहीं है। चन्दर का मन और भारी हो जाता है। "अकेलेपन का नागपाश और भी कस जाता है।"[3]

(9) इस बेहद अकेलेपन के और खोई हुई दिशाओं के वातावरण में चन्दर को जिन्दगी के वे क्षण याद आते हैं जब यह अकेलापन नहीं था, प्यार भरी आंखें थी और दिशाएँ उसकी बांहों में बन्द थी। उस समय इन्द्रा और वह भविष्य के सपने संजोते रहते थे। इन्द्रा उसकी प्रतिभा को पहचान सकी थी और उसके साथ जिन्दगी जीने के लिए वह किसी भी खतरे को मोल लेना चाह रही थी। उसकी हर आदत का ख्याल रखा करती थी। परन्तु संयोग ऐसा कि इन्द्रा कहीं और ब्याही गयी और और इसी शहर में वह अपने पति के साथ है। विवाह के बावजूद इन्द्रा चन्दर का उतना ही ख्याल रखती है जितना पहले रखा करती थी। इसी कारण "इस अनजानी और बिन जान-पहचान से भरी नगरी में एक इन्द्रा है जो उसे इतने सालों के बाद भी पहचानती है, अब तक जानती है।"[4] इसी कारण वह इन्द्रा के यहां जाने का निर्णय लेता है। दो चम्मच से अधिक चीनी चन्दर को कभी लगती नहीं और इन्द्रा इस आदत को अच्छी तरह से जानती है। कई बार इस बात को लेकर वह मजाक भी करती है परन्तु आज चाय बनाते समय जैसा ही इन्द्रा ने यह पूछा— "चीनी कितनी दूँ ?" तो चन्दर हड़बड़ा गया। एक झटके से सब कुछ बिखर गया।

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 44
2. वही, पृ० 45
3. वही पृ० 46
4. वही, पृ० 50

इस छोटे से सवाल ने फिर अपरिचय की दीवारें खडी कर दीं। इसी कारण "जहर की घूंटों की तरह वह चाय पीता रहा। इन्द्रा इधर-उधर की बातें करती रही, पर उनमें मेहमान बाजी की बू लम रही थी और चन्दर का मन कर रहा था कि इन्द्रा के पास से किसी तरह भागा जाए और दीवार पर अपना सिर पटक दे।"[1]

(10) इन्द्रा के घर जिस ऑटोरिक्षा पर वह चला गया था उस सरदारजी की आखों में पहचान की झलक देखकर उसे एक प्रकार की प्रसन्नता हो गयी थी। परन्तु पैसे लेते समय सरदारजी ने जिस कठोरता के साथ बात की थी उससे वह और अधिक क्षुब्ध हो उठा था।

(11) दिनभर के इन सारे अनुभवों को, बेहद अकेलेपन के एहसास को, लेकर चंदर जब घर आता है तब वह तन और मन मे पूर्णत: थक जाता है। घर में भी "वह मेहमान की तरह कुर्सी पर बैठ जाता है।"[2] पत्नी निर्मला को देखकर उसे महसूस होता है कि "वह अकेला नहीं है। अजनबी और तनहा नहीं है। सामने वाला गुलदस्ता उसका अपना है, पडे हुए कपडे उसके अपने हैं, उनकी गंध वह पहचानता है।"[3] शारीरिक सुख की प्राप्ति के बाद वह अपने को फिर से अकेला अनुभव करने लगता है। "और चंदर फिर अपने को बेहद अकेला महसूस करता है। कमरे की खामोशी और सूनेपन से उसे डर–सा लगता है।"[4] निर्मला के स्पर्श को वह पहचानता है। वह भी उसके स्पर्श को पहचानती होगी। परन्तु निर्मला थककर सो गई है। और बार-बार के स्पर्श से भी जब निर्मला जागती नहीं तब अचानक चंदर को लगता है कि शायद निर्मला भी उसे पहचानती न हो। "चंदर सुन्न-सा रह जाता है.....क्या वह उसके स्पर्श को नहीं पहचानती है।"[5] यह अनुभूति भयावह ही है। सर्वाधिक परिचय का एक ही रिस्ता होता है पति-पत्नी का। अगर वहां भी यह एहसास हो जाए कि यह परिचय और पहचनान अधूरा-सा ही है तो एक बहुत बडा धक्का पहुँच जाता है। बाहर के अकेलेपन के सारे दर्द को व्यक्ति घर आकर पत्नी के अपनत्व में डुबो देता है। और अगर घर में भी यही बेपहचान की स्थिति हो तो फिर वह क्या कर सकेगा ? संबंधों की अनेक दिशाओं में सबसे महत्व-पूर्ण और आखिरी दिशा 'पत्नी' की ही होती है। चंदर अन्य सभी दिशाओं को खो चुका है। और आज आखिरी दिशा भी उसके हाथ से फिसलने लगी है। इसी कारण वह निर्मला को गहरी नींद से उठाकर पागल की तरह पूछता है कि "क्या तुम मुझे

---

1. मेरी प्रिय कहानियां पृ० 52
2. वही, पृ० 53
3. वही, पृ० 53
4. वही, पृ० 55
5. वही, पृ० 55

पहचानती हो ? मुझे पहचानती हो निर्मला.....उसकी आखें उसके चेहरे पर कुछ खोजती रह जाती है।"[1]

पहचान की यह मांग प्रत्येक व्यक्ति की मजबूरी है। इसी पहचान के कारण वह जीते रहता है। उसकी यह मानसिक भूख है। उसके अस्तित्व की सुरक्षा-युग में 'अपनेपन' के 'पहचान का यह मूल्य समाप्त प्राय होता जा रहा है। प्यार की दो आंखे आदमी ढूंढ रहा है। परन्तु ऐसी आँखें उसे कहीं मिल नहीं रहीं हैं। कवि चन्द्रकांत कुसनुरकर के शब्दों में– "कुछ की आखों में बैंक-बैलेन्स है, कुछ की आखों में वासना है, कुछ की आँखों में प्रतिष्ठा परन्तु प्यार कहीं नहीं है।" कस्बे में आया हुआ आदमी इसी अपनत्व की तलाश में घूमते रहना है। शहर की कृत्रिमता पर ढेरों कविताए लिखी गई हैं। कमलेश्वर अपने तरीके से इस शहर की आत्मा को खोज रहे हैं। वे यह अनुभव कर रहे हैं कि शहर अपनी सभी दिशाओं को खो चुका है। इस दिशाहीन शहर में जाने वाले लोग किस बलबूते पर जीएँगे यह प्रश्न ही है। शहर की इस हृदय हीनता का अच्छा खासा चित्रण केदारनाथ अग्रवाल की..... "जाल और नकाब के बीच" कविता में हुआ है।

"फिर सवेरा होता है
फिर मेरा सुनसान में
सूरज पदार्पण करता है
और फिर
कर्म मुझे ढकेल देता है
न खत्म होने वाली सड़क पर
तमाम दिन किरी मारकर जीने के लिए।
और मैं
उसके पेट में
अन्धों से मिलता हूं—
जिन्हें पहचानता हूं
जो मुझे नहीं पहचानते :
गूंगों से मिलता हूँ :
बहरों से मिलता हूँ ·
भूखों से मिलता हूं :"[2]

चंदर की भी स्थिति इसी प्रकार की है। पंद्रह वर्षों से ईमानदारी से नौकरी करने के बाद भी नौकर पर विश्वास न करने वाला गैरेज मालिक, दो वर्ष से पड़ोस में रहने के बाद भी अपरिचित बिशन कपूर, डाकखाने, बैंक और बगीचों में मिलने

1. वही, पृ० 56
2. नयी कविता : केदारनाथ अग्रवाल : पृ० 62 (सं. : पद्मधर)

वाले अपरिचित लोग, यंत्रवत् जिंदगी, खुद से मिलने में डर का एहसास, खण्डहरों के परिचय की तरह निरर्थक और वर्तमान से कटी हुई शिक्षा पद्धति, निकट से परिचित और अपनत्व बतानेवाली परन्तु आज एक दम अजनबी बनी हुई इन्द्रा, ग्राहक मिलने तक परिचय बताने वाला और पैसे लेते समय परिचय के सूत्र को फेंक देने वाला सरदार जी चंदर को आज दिनभर मिले हुए ये विविध व्यक्ति हैं। इन सबकी आंखों में उसे अपने लिए कोई जगह नहीं मिली। इसी कारण वह पत्नी को जगाकर पूछता है कि क्या वह तो उसे पहचानती है ?।

संपूर्ण कहानी एक ही मनःस्थिति को लेकर चलती है। इसे "एक विशिष्ट मूड़ की कहानी" भी कह सकते हैं। अलबत्ता यह मूड़ अब शहरी जीवन का मूल्य बनते जा रहा है। प्रस्तुत कहानी में कस्बे के एक संवेदनशील युवक के मन की छटपटाहट को शब्दबद्ध किया गया है। अपनत्व से कट जाने के बाद सारी जिंदगी निरर्थक-सी लगने लगती है। संपूर्ण कहानी में अकेलेपन की अनुभूति ही प्रखर है। इस कहानी की मनःस्थिति पूर्णतः यथार्थ और जीवंत है। शहरों के भीतर एक 'अमानुषता' की स्थिति कैसे उभर रही है इसे फिर से साबित करने की आवश्यकता नहीं है। एक व्यक्ति का उपयोग दूसरा व्यक्ति अपनी प्रगति के लिए सीढ़ी की तरह कर रहा है। मनुष्य और मनुष्य के बीच जिस सहज संवेदनशीलता की, अपनत्व की हम अपेक्षा कर रहे हैं ; उसका तेजी के साथ लोप होने जा रहा है। इस अपनत्व की समाप्ति के बाद जिंदगी कितनी भयावह हो जाती है। इसको चंदर के माध्यम से व्यक्त किया गया है। विशेषत: संवेदनशील व्यक्तियों की ऐसी स्थिति हो जाती है। कस्बाई और शहरी मूल्यों की तुलना भी इस कहानी में अप्रत्यक्ष रूप से की गयी है। हमारी मानसिक यात्रा एक भयावह रास्ते से गुजर रही है। एक ऐसा रास्ता जिसकी न कोई दिशा है और न कोई मंजिल। हम जहाँ पर हैं वही रहेंगे अथवा आत्महत्या के लिए प्रेरित हो जायेंगे। भीड़ में रहकर भी हम सबसे अकेले हो गये हैं। शहरी और यंत्रमय संस्कृति ने हमें यही तो दिया है। पूरा यूरोप इस मानसिक यंत्रणा से गुजर रहा है। और हमारे शहर इसी रास्ते पर जा रहे हैं। एक संवेदनशील कथानुसार ने इस बदलाव को, वहां जीनेवाले व्यक्ति की मानसिकता को शब्दबद्ध करने का प्रामाणिक प्रयत्न किया है। इसीलिए इस कहानी का सर्वाधिक महत्व है। अनुभूति की प्रखरता और शैली की सहजता इस कहानी की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं।

अपने दूसरे दौर की कहानियों के संबंध में कमलेश्वर ने लिखा है—"व्यक्ति के दारुण और विसंगत संदर्भों को समय के परिप्रेक्ष्य में समझने का" प्रयत्न इस दौर में हुआ है। इस दौर में अनुभवों के समय संगत संदर्भ को बतलाने का प्रयत्न हुआ। प्रस्तुत कहानी में ये बातें स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई हैं। चंदर के संपूर्ण व्यक्ति-को उसके दारुण और विसंगत संदर्भों में पहचानने की पूरी कोशिश कमलेश्वर ने की है और इसमें उन्हें सफलता मिली है।

(३) तलाश :

एक सुशिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी विधवा और उसकी युवा लड़की के जीवन पर प्रस्तुत कहानी लिखी गयी है। विधवाओं की ओर देखने के दृष्टिकोण में इधर काफी अन्तर आ गया है। 1910-20 के पूर्व लेखक विधवाओं की ओर छिछली आदर्शवादिता से देखा करते थे। शारीरिक पवित्रता के मूल्यों की सुरक्षित रखने की पूरी कोशिश किया करते थे। प्रकृति के नियमों को अमान्य करते हुए उस स्त्री के संयम की दुहाई देते थे। परन्तु आधुनिक शहरी जीवन में ये सब मूल्य खत्म से हो रहे हैं। विधवाओं की जिंदगी और उनके दृष्टिकोण में काफी अन्तर आ गया है। अब विधवाएँ, विधवा की अपेक्षा एक स्त्री रूप में जीने लगी हैं। सम्पूर्ण परम्पराओं को नकारती हुई; शारीरिक पवित्रता आग्रह को तोड़ती हुई वह जिंदगी की यथार्थ से जुड़ना चाहती हैं। विशेषत: ऐसी स्त्रियाँ जब आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः स्वावलम्बी होती हैं, तब समस्या एक अलग रूप धारण करने लगती हैं। दूसरों के आधार पर जीने वाली विधवा और अपने ही पैरों पर खड़ी विधवा इन दोनों के व्यवहार में काफी अन्तर दिखाई देगा। आर्थिक आधार के कारण जिंदगी की यथार्थता से बौद्धिक स्तर पर जुड़ने का आग्रह इनमे होता है। प्रस्तुत कहानी में कमलेश्वर एक विधवा के माध्यम से बदलते हुए नैतिक, सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। दूसरे स्तर पर यह कहानी मां और बेटी के सम्बन्धों को उद्‌घाटित करती है। जिंदगी की आवश्यकताएँ एक ओर हैं और दूसरी ओर रक्त के सम्बन्ध ! कई बार व्यक्ति को इनमें से एक का ही चुनाव करना पड़ता है। वात्सल्य को नकार कर जब यह स्त्री शरीर सुख को ही चुन लेती है; तब उसकी मानसिक स्थिति को 'तलाश' लेखक करने लगता है। ठीक इसी प्रकार अपने मां के बदलते हुए व्यवहार से असन्तुष्ट होकर लड़की माँ से दूर रहने का निर्णय लेती है। तब उस लड़की की मन: स्थिति की खोज भी लेखक ने की है। इस प्रकार यह कहानी अन्य कहानियों की तरह दो स्तरों पर दो भिन्न अर्थ देने लगती है। सामाजिक स्तर पर मूल्य-विघटन का अर्थ तथा व्यक्तिगत स्तर पर सम्बन्धों के बदलाव का अर्थ। आधुनिक युग में माँ-बेटी के व्यवहार में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तन को रेखांकित करते-करते लेखक वात्सल्य की चिरन्तनता को भी स्पष्ट करता है।

ममी विधवा है। आठ वर्ष पूर्व पति की मृत्यु हो गयी है। आज सभी(उसकी लड़की) उम्र बीस की है और ममी की उन्तालीस। अपने शारीरिक सौष्टव के कारण ममी सुमी की बड़ी बहन लगती है, और सुमी माँ नहीं। ममी किसी कॉलेज में पढ़ाने का काम करती है, और सुमी टेलीफोन-आफिस में। पति की मृत्यु के बाद ममी आठ वर्ष तक अपने शरीर और मन पर नियन्त्रण रख सकी है। परन्तु इधर

मुश्किल हो रही है। कॉलेज में नौकरी करने वाली ममी बुद्धिवादी है। पुरुषों के बीच जीती है। बड़े शहर का वातावरण भी इस संयम के अनुकूल नहीं है। इस कारण वह अपने को रोक नहीं पाती। एक दिक्कत उसके साथ यह भी है कि घर में बीस वर्ष की उसकी लड़की है। इतनी युवा लड़की एक तरफ और दूसरी ओर उफनती हुई शारीरिक इच्छाएँ। इसी कारण चुपके से वह परिस्थिति के साथ समझौता कर लेती है। लड़की को सन्देह आये बिना वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने लगती है और लड़की अपनी माँ में एक अजीब-सा परिवर्तन अनुभव करती है। धीरे-धीरे उसके सम्मुख सारा चित्र स्पष्ट हो जाता है। सुमी ममी के इस व्यवहार से पहले तो उदास और निराश हो जाती है। परन्तु बाद में वह भी परिस्थिति के साथ समझौता कर लेती है और ममी की हर सुविधा का ख्याल रखने लगती है। दोनों की मानसिकता में परिवर्तन शुरू हो जाता है और यह परिवर्तन एक ऐसे स्तर पर चला जाता है जहाँ ममी सुमी बन जाती है और सुमी ममी। सुमी ममी की स्वतंत्रता और इच्छाओं के बीच दीवार बनकर खड़ी होना नहीं चाहती। इसी कारण वह हॉस्टेल में रहने के लिए चली जाती है। वह भीतर-ही-भीतर अनुभव करती है कि शायद ममी बहुत सुखी होगी। दोनों अकेलेपन की जिंदगी जीने लगती हैं। ममी के जन्म के दिन के अवसर पर सुमी जब फूलों का गुच्छा लेकर उससे मिलने जाती है; तब उसे यह देखकर आश्चर्य हो जाता है कि ममी बहुत-बहुत उदास रहती है। सुमी को खोकर वह सुखी नहीं; बेहद अकेली हो गयी है। सुमी की भी स्थिति कुछ इसी प्रकार की है। इसी कारण इस भेंट में औपचारिक प्रश्नों के अलावा वे दोनों किसी भी बात पर खुलकर बोलती नहीं; दोनों के हृदय भरे आए हैं। और कहानी यहीं समाप्त हो जाती है।

इस सम्पूर्ण कहानी में ममी और सुमी का चरित्र ही महत्वपूर्ण है। इन दोनों के माध्यम से बदलते हुए नैतिक मूल्यों, पारिवारिक सम्बन्धों तथा आधुनिकता को व्यक्त किया गया है। इसलिए इन दोनों के चरित्र का विस्तार से अध्ययन आवश्यक है।

ममी – इस कहानी के केन्द्र में 'ममी' है। ममी आज उन्तालीस की है। आठ वर्ष पूर्व पति गुजर गये हैं। सुमी की उम्र उस समय बारह वर्ष की थी, आज बीस की है। उन्तालीस वर्ष की होने के बावजूद भी ममी के रहन-सहन से, व्यक्तित्व से, आकर्षक-शरीर से उम्र का एहसास कभी नहीं होता। "ममी बहुत सुन्दर लगती थी। उनके सुडौल हाथ-पैर, तराशे हुए नक्श और ताजगी ! उनमें ऐसी ताजगी थी, जो उम्र के साथ खिलती आयी थी।"[1] ममी रहती भी इस तरह थी कि तन बिखरे नहीं। एक स्त्री के शरीर की लोच और नर्मी उनके बदन में है। "उनके तन से ऐसी

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 140

अछूती गन्ध फूटती थी जो सबको अपनी तरफ खींचती थी।"[1] इस प्रकार की रहन-सहन उन्हें शायद आवश्यक भी थी। पुराने ढर्रों की विधवाओं की तरह जीना उन्हें पसन्द नहीं था; और न आज के वातावरण को यह पसन्द है। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भी शायद उन्हें इस प्रकार के रहन-सहन की आवश्यता थी। पति गुजर जाने के बाद कई वर्षों तक वह अपने तन-मन को संयमित रख सकी है। परन्तु इधर उन्हें शायद यह कठिन लग रहा है। एक ओर मातृत्व है दूसरी ओर भीतर बैठी नारी। मातृत्व और नारीत्व का यह संघर्ष उनमें चलता रहा है। बुद्धि-वाद और आधुनिकता ने माँ के मन को पछाड़ दिया है। इसीलिए वह अब अपनी इच्छा पूर्ति के मार्ग खोज निकाल रही है। इस प्रकार की इच्छा पूर्ति को वह न उच्छृंखलता समझती है और न अनैतिकता। वह शायद इसे मजबूरी समझती है। परन्तु इस 'मजबूरी' को वह खुले ढंग से व्यक्त नहीं कर सकती। क्योंकि घर में बीस साल की युवा लड़की है। इसीलिए वह सभी के सो जाने बाद किसी के साथ घर में आती है। अथवा कॉलेज के काम का बहाना बनाकर किसी के साथ दूसरे शहर में चली जाती है। मातृत्व और काम पूर्ति इन दोनों में यह संतुलन बनाए रखना चाहती है। हर स्त्री को यह संतुलन बनाए रखना पड़ता है। एक विधवा के लिए यह जानलेवा खेल ही है। इधर ममी इस प्रकार के खतरे को स्वीकार कर रही है। अपनी इस स्थिति का लड़की को पता न चले इसलिए वह सभी प्रकार की सावधानी बरत रही है। परन्तु बीस साल की शिक्षित युवती से ये बातें छिपाना असम्भव तो नहीं परन्तु कठिन अवश्य है। इसी कारण सुमी धीरे-धीरे ममी के परिवर्तित व्यवहार को समझने लगती है। ममी के कमरे में बिखरे हुए कॉफी के प्याले, सिगरेटों के बदरंग टुकड़े, दाहिनी तरफ वाले तकिये पर हल्का सा गड्ढा, उनके संगमरमरी बाहों पर उभरा नीला निशान, टैक्सी की उधर वाली खिड़की से सिगरेट का सुलगता हुआ टुकड़ा, उनकी सूटकेश के जेब में पड़ा हुआ चपटा-सा पैकेट, साड़ी के साथ झांकता ऊनी मोजा—ये सारी वस्तुएँ और संकेत किसी भी युवती की समझ के परे तो नहीं हैं। इस कारण ममी की यह कोशिश निरर्थक ही है। धीरे-धीरे ममी भी यह समझ गयी है कि सुमी से अब कोई बात गुप्त नहीं रही। इसी कारण सुमी जब हॉस्टेल में रहने का प्रस्ताव रखती है तो ममी चुपचाप स्वीकृति दे देती है। सुमी के इस प्रकार घर से निकल जाने के प्रस्ताव को सुनकर "ममी एकाएक गम्भीर हो गयी थीं। उन्होंने गौर से सुमी को देखा था। पर उसके चेहरे पर कहीं भी विक्षोभ नहीं था और लहजे में भी कटुता नहीं थी।"[2] ममी की इस मनःस्थिति से स्पष्ट है कि वह सुमी से डरती हैं। भीतर की स्वतन्त्र नारी मातृत्व से डरती ही है। इसी भय के

कारण वह सुमी की ओर गौर से देख रही थी। कहीं सुमी को शक तो नहीं आया है। सुमी शायद इस स्थिति को जानती है इसी कारण मूल बात को छिपाकर अत्यधिक सहज होकर उसने यह बात की थी। ममी सुमी को हॉस्टेल जाने से रोक सकती थी, परन्तु उसने रोका नहीं है, इसके दो कारण हो सकते हैं। वह पूर्ण स्वतन्त्रता चाहती है। सुमी के रहते उन्हें काफी संकोच हो रहा था, इसीलिए सुमी का जाना उन्हें सुविधाजनक लगा हो। असम्भवत: उन्हें ऐसा विश्वास हुआ हो कि सुमी अब सब जानती है। इस परिवर्तित व्यवहार से वह शायद भीतर से दु:खी है; उसे जबरदस्ती से रोककर परेशान करना अच्छा नहीं है। दोनों भी स्थितियाँ हो सकती हैं। "पहली तारीख को सुमी होस्टल में पहुँच गई। ममी उसके साथ आईं और कमरे में सामान सजा गयी थीं। कुछ चीजें खरीदकर दे गईं। बहुत-सी हिदायतें दे गईं शुरू-शुरू में कुछ दिनों तक वह हर शाम कुछ देर के लिए आती रही, कभी सुमी जाती रही; फिर धीरे-धीरे टेलीफोन पर मुलाकात होने लगी.... और फिर उसमें भी व्यवधान पड़ने लगा।"[1]

एक दिन सुमी पिताजी की डायरी पढ़ने बैठी थी। "डायरी खोली, तो देखते-देखते नजर पड़ी—ममी के जन्म दिन पर·····पापा ने बड़े प्यार से ममी के बारे में कुछ लिखा था, जीवन-भर सुख देने की शपथ खाई थी। ग्यारह बरस पहले उन्होंने यह सब लिखा·····उसने तारीख देखी। तीन दिन बाद ममी चालीस की हो रही थी।"[2] ममी के जन्म दिन के अवसर पर सुमी नरगिस के फूलों का गुच्छा लेकर गयी थी। वे ही नरगिस के फूल जो उसके पिता ममी को हर जन्म दिन के अवसर पर भेंट देते थे। ममी के यहां जाने के बाद उसने यह अनुभव किया कि ममी काफी उदास है। उसकी दैनन्दिन जिंदगी बदल गयी है। न खाने में उनकी रुचि है न अन्य बातों में। और-तो-और जब से सुमी गयी है तब से कैलेन्डर पर की तारीख तक ममी ने बदली नहीं है।

ममी के इस चरित्र से अनेक प्रश्न उभर आते हैं। सनातनी भारतीय विचार-धारा के अनुसार ममी चरित्रहीन और उच्छृंखल साबित की जा सकती है। विधवाओं के लिए हमारे यहां कठोर बंधन रहे हैं। सुधारवादी युग में विधवाओं की अधिक से अधिक इतनी सुविधा दी गयी कि वे विवाह कर सकती हैं। इस सुविधा और सुधार के बावजूद कई समस्याएँ जहाँ की वहाँ रह जाती हैं। युवास्था की विधवाओं के लिए विवाह मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है परन्तु प्रौढ़ावस्था में जीने वाली स्त्री के लिए कौनसा मार्ग हो सकता है? फिर यह स्त्री मां भी हो तो फिर कौनसा पर्याय है? शारीरिक और मानसिक संयम का एक मात्र

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 147
2. वही, पृ० 148

मार्ग हमारे सामने है। परन्तु यह मार्ग भी अपना अर्थ खो चुका है। 50–60 वर्ष पूर्व इस पद्धति से जीना संभव भी था। अध्यात्मक, ईश्वरोपासना, अथवा धर्मग्रन्थ पारायण में वे अपना मन केंद्रित कर सकती थी, करती भी थी। संयुक्त परिवार-की व्यवस्था थी। दिन भर विविध प्रकार के काम उसे रहते थे। नाते-रिस्ते के आस पास में थे। उस काल का परिवेश काम भावना उद्दिप्त करने के बजाय व्यक्ति को उसके कर्त्तव्यों, आदर्शों और नैतिक मूल्यों की ओर ले जाता था। विविध प्रकार के बंधन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव व्यक्ति के अचेतन मन पर छोड़ जाते थे। इच्छा होते हुए भी उस काल में स्त्री गलत पद्धतियों से अथवा अन्य मार्गों से काम-पूर्ति नहीं कर ले सकती थी। बचपन से ही स्त्रियों पर ऐसे कठोर संस्कार डाल दिए जाते थे कि वे इस लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन नहीं कर सकती थी। और फिर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि गलत मार्गों से काम-पूर्ति कर लेने वाली स्त्रियों की समाज में दुर्गति होती थी, निंदा होती थी। वे बहिष्कृत हो जाती थीं। किसी भी स्तर पर उन्हें प्रतिष्ठा नहीं मिलती थी। परन्तु धीरे-धीरे व्यक्ति पर के सामाजिक, नैतिक और धार्मिक बंधन खत्म होते गये। वैज्ञानिक युग के कारण प्रखर बौद्धिकता की दृष्टि व्यक्ति को मिल गयी। पाप–पुण्य के सारे मूल्य निरर्थक साबित होते गये। आस-पास के परिवेश में अंतर हो गया। बढते हुए शहरों ने व्यक्ति को अजनबी बना दिया इस अजनबी शहर में व्यक्ति कुछ भी करने को स्वतंत्र हो गया। नाते-रिस्तों के लोगों से औपचारिकता के स्तर तक ही सम्बन्ध आने लगे। स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी और सबसे बढ़ कर विशेष परिवर्तन यह हो गया कि ऐसे व्यक्तियों–स्त्रियों-पुरुषों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगी। सामाजिक भय" का पूर्णतः लोप हो गया। इस सामाजिक भय के कारण ही कई जीवन-मूल्य टिके हुए थे। शहरों में यह भय समाप्त प्रायः हो गया। वैज्ञानिक प्रगति के कारण यौन-संबंध और सृजन का संबंध खत्म हो गया। नये वैज्ञानिक साधनों ने संभोग को केवल आनन्द के स्तर पर ला रखा। संभोग और संतति का सम्बन्ध कट जाना यह युग की सबसे बड़ी क्रांतिकारी घटना है। इस संबंध के कट जाने के कारण सभी नैतिक मूल्यों की होली हो गयी। यौन–सम्बन्धों का मार्ग जो अब तक केवल पति-पत्नी तक ही सीमित था; विस्तृत और व्यापक हो गया। विज्ञान ने इसे शरीर की एक आवश्यक भूख साबित कर दी और फ्रायड ने इसकी अतृप्ति अथवा दमन को अनेक मानसिक रोगों के कारण के रूप में साबित किया। शिक्षित और पढ़े लिखे स्त्री पुरुषों को मुक्त यौन सम्बन्ध रखने के लिए उपर्युक्त वैज्ञानिक साधन और फ्राएडियन तर्क आधार रूप में मिल गये। इन तर्कों ने "संयम" को गलत साबित किया। ममी के इस प्रकार के व्यवहार के मूल में उपर्युक्त सारी बातें पृष्ठ-भूमि के रूप में कार्य कर रहीं है। ममी एक शिक्षित आधुनिका है। शहर के वातावरण में जीती है। विवाहित स्त्री-पुरुषों के बीच रहती है। विज्ञापन, फिल्में और आधुनिक जीवन को निकट से देख रही है।

वह एक लड़की की माँ है इसलिए वह अपनी सारी इच्छाओं का दमन करे। यह उसे मान्य नहीं है। पति की मृत्यु के कई वर्ष तक वह शायद इस प्रकार के मुक्त जीवन पर गंभीरता से सोच रही थी। अन्ततः उसकी बुद्धि ने उसके मातृत्व को सबक्ष दिया है। भावुक मां बुद्धिवादी नारी के सम्मुख पराजित हो गयी है। ममी के इस प्रकार के यौन सम्बन्धों को लेकर न हम उसकी टीका कर सकते हैं; न उसका पूर्ण समर्थन। अलबत्ता इस विशिष्ट परिवेश में जीनेवाली यह स्त्री यही कर सकती थी; ऐसा जरूर कह सकते है। हमें कहीं न कहीं इन बदलते हुए नैतिक-मानदण्डों को स्वीकार करना ही पड़ेगा। ममी के इस प्रकार के व्यवहार के लिए आज भी सामाजिक परिस्थिति जिम्मेदार है; वैज्ञानिक प्रगति कारणीभूत है; बौद्धिकता सहायक है इसे हम न भूले। ममी आर्थिक मोह के कारण ऐसा व्यवहार नहीं कर रही है। अगर वह आर्थिक मोह के कारण ऐसा कर रही होती तो उसके चरित्र का अधःपतन हुआ है ऐसा हम कह सकते थे। ममी शरीर की मजबूरी के सम्मुख, आज की आधुनिकता के सम्मुख पराजित हो गयी है-ऐसा हम कह सकते हैं। और पराजय व्यक्ति के बौनेपन को साबित नहीं करता वह उसकी मजबूरियों को ही रेखांकित करता है।

सुमी के चले जाने के बाद ममी खुश रही है क्या ? नहीं। वह दिन-ब दिन उदास होती गयी है। इतनी उदास की वह अब रोज नाश्ता भी नहीं करती और कैलेण्डर पर की तारीख तक वह नहीं बदलती है। यही पर कहानी मातृत्व की चिरन्तनता को उजागर करती है। सुमी का चला जाना ममी को अच्छा लगा होगा पर कुछ दिनों तक। सुमी का अभाव उन्हें खटकने लगा। दैनंदिन जीवन में परिवर्तन होने लगा। जिंदगी का सारा उत्साह ही समाप्त हो गया। शारिरीकता में ही आदमी डूबकर जी नहीं सकता। शारीरिक सुख आखिर क्षणिक ही होते हैं। जिंदगी का चिरन्तन सुख शरीर के उपभोग में नहीं; संतति के प्यार और वात्सल्य में ही है। ममी को इसका एहसास कुछ ही दिनों में हुआ है। पर वह सुमी को वापस बुलाए भी तो कैसे ? क्योंकि सुमी तो अपनी इच्छा से गई है। और सुमी को अब सब कुछ पता भी चल गया है। जिंदगी में दोनों सुख महत्वपूर्ण हैं। काम-भाव और वात्सल्य-भाव के इस भीतरी द्वन्द्व को ममी ने काम-भाव को चुनकर समाप्त करना चाहा था। परन्तु काम-भाव की क्षणिकता ने उन्हें वात्सल्य की श्रेष्ठता का अनुभव कराया है। इसी कारण वह सुमी के जाने के कारण निराश हुई है। जन्म-दिन के अवसर पर जब सुमी आ जाती है तब उनका गला भर्रा आता है। वे कुछ नहीं बोल पातीं। भावनाओं का तूफान मचा है। अब तक के किए का पश्चाताप है। बेटी के प्रति अगाध वात्सल्य है। इसी स्थान पर 'ममी' ममी दिखाई देने लगती है। मां ने अब नारी को पराजित कर दिया है। भीतर की नारी भी रो रही है और माँ भी। शरीर के मोह से हम कितने भी भटक जाए, तो भी वात्सल्य हमें फिर एक

जगह टिकने को विवश कर देता है। भूले-भटके को मार्ग बतलाने की शक्ति इसी वात्सल्य में है।

सुमी—बीस वर्ष की युवती सुमी अपनी आयु की तुलना में अधिक प्रौढ़ है मां के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन और कारणों को वह जान गयी है। परन्तु वह इस बात का एहसास मां को किंचित भर भी नहीं करा देती। वह अन्तरमुखी है। मां की स्थिति को समझ लेने का प्रामाणिक प्रयत्न करती है। आम लड़की की तरह वह भी अपनी ममी से बेहद प्यार करती हैं। इस आयु में भी खिलते हुए मां के प्रसन्न सौंदर्य का उसे अभिमान है। माँ के इस बदलते हुए व्यवहार से सुमी चिंतित है। और यहीं पर उसके वैचारिक प्रौढ़त्व का परिचय मिलता है। वह माँ के सौदर्य को बनाए रखना चाहती है। उनके कपड़ों की, रहन सहन की उसे चिंता है। आफिस जाने में उन्हें देर न हो इसलिए खुद जल्दी-जल्दी सब काम निपटाती है। धीरे-धीरे सुमी ममी बन जाती है और ममी सुमी। होना तो यह चाहिए था कि ममी सुमी का अधिक ख्याल रखती। जवान लड़की के रहन-सहन का खयाल रखती। घर की सारी जिम्मेदारियां संभालती और लड़की को हमेशा प्रसन्नचित्त रखने का प्रयत्न करती। माँ लड़की के प्रति अपने कर्तव्यों को निभा नहीं रही है। परन्तु लड़की मां बनकर मां की देखभाल कर रही है। आयु की इतनी बड़ी खाई के बावजूद भी सुमी माँ के व्यक्तित्व को मानसिक स्तर पर जीने लगती है।

सुमी अपने पिता पर सर्वाधिक प्रेम करती थी; और आज भी करती है। ममी के इस प्रकार के व्यवहार के कारण वह मन-ही-मन अनुभव करती है कि ममी की (पापा के प्रति) यह बेईमानी है। इस प्रकार के व्यवहार से मृत पिता को तकलीफ होगी—ऐसा वह सोचती है। इसी कारण ममी के कमरे में स्थिति पिता की तस्वीर को वहां से उठाकर अपने कमरे में ला रखती है।—"न जाने क्यों वह उस तस्वीर को उठा लाई और उसे अपने कमरे में रखकर, उसकी जगह ममी के कमरे में वह काली तस्वीर रख आयी थी, जिसमें सागर उमड़ रहा था और ऊँचे आसमान में जल-पक्षी उड़ रहे थे।"[1] ममी के कमरे में उमड़ते हुए सागर का चित्र रखने के पीछे भी सुमि की निश्चित दृष्टि है। ममी की इच्छाएँ भी सागर की तरह उमड़ रही थी और ममी जल पक्षी की तरह अपने इच्छा रूपी सागर पर मंडरा रही थी। पिता की हर चीज धीरे-धीरे वह ममी के कमरे से निकालने लगती है। धीरे-धीरे घर का सारा हिसाब वह संभालने लगती है। मानो, ममी अब इस काम के लायक ही न रही हो। अपने कपड़े भी वह ममी को दे देती है। "उसकी चार साड़ियां और एक ब्लाउज ममी के कपड़ों में जा मिले थे। वह हर सबह ममी के

तैयार होने की राह देखती । उन्हें जो चप्पल पहननी होती पहन लेती उसके बाद वह कोई सी भी पहन कर चली जाती"[1] सुमी के इस व्यवहार के मूल में कौन से कारण हो सकते हैं ? ममी की तरह जीने की उम्र उसकी है और वह जिस मानसिकता को लेकर जी रही है; वह 'ममी' की मानसिकता है । सुमी यह सब बेहद निराशा के कारण कर रही है शायद उसके सम्मुख कोई दूसरा मार्ग नहीं है । वह या तो ममी के साथ खूब झगड़ती; उन्हें भला-बुरा कहती और उनके इस उच्छृंखल व्यवहार से तंग आकर इस घर से दूर चली जाती । वह भी नौकरी पेशा स्त्री है । अपने पैरों पर खड़ी । फिर मां के इस व्यवहार को वह इतना शांत होकर क्यों झेल रही है । मां के इस परिवर्तित रूप के कारण उसे बेहद मानसिक तकलीफ हो रही है; फिर भी खामोश क्यों है ? शायद वह मां की मजबूरी को समझती है । शारीरिक भूख की अनिवार्यता को मानती है । अथवा दूसरी स्थिति यह भी हो सकती है कि उसे यह सब कुछ गलत लगता है; परन्तु केवल माँ के प्यार के कारण वह इसे चुपचाप सह रही है । धीरे धीरे ममी और सुमी में खामोशी की दीवारें उभरने लगी । "दोनों कमरे दो अलग -अलग दुनियाओं में बदल गये थे । उसके कमरे में पापा अब भी रुके हुए थे ।"[2] पापा की हर चीज वह अपने कमरे में ला रही थी उनकी छड़ी, फाइलें, तस्वीरें, डायरियां, और बचा-खुचा सारा सामान धीरे-धीरे उसके कमरे में जमा होने लगा । स्थिति और अधिक गंभीर हो जाने के बाद सुमी होस्टल पर रहने चली जाती है । परन्तु कुछ ही दिनों बाद उसने अनुभव किया कि "होस्टेल का अकेलापन खाने दौड़ता है" ।[3] इसी कारण ममी के जन्म दिन के अवसर पर वह नरगिस के फूलों का गुच्छा लेकर निकलती है । उसे ऐसा लगता था कि उसके चले आने के बाद शायद ममी खूब मजे में होंगी । उसने उन्हें मुक्त कर दिया था । अब ममी को अपनी सही जिंदगी जीने के लिए कोई व्यवधान नहीं था । पर ममी के यहां आने के बाद वह अनुभव करती है कि उसके सारे निष्कर्ष गलत हैं । ममी अब इस घर में बहुत सन्नाटा अनुभव कर रही है । "ममी की आँखें शायद हल्के से नम हो आयी थी । वह इधर-उधर देखने लगी ।"[4] ममी की इस मन:स्थिति को सुमी तुरन्त भाप गई है । इसी कारण उसकी भी स्थिति ममी की तरह हो गयी है ।

पूरी कहानी में 'सुमी' एक बुद्धिमान पर भावुक लड़की के रूप में उपस्थित हुई है । पिता को लेकर वह भावुक है और माँ को लेकर बुद्धिवादी । न वह मां के व्यवहार का समर्थन कर सकती है न विरोध । उसमें स्पष्टता की बेहद कमी है । यह कमी ममी में भी है । सँभवत: यह विषय ही इतना नाजुक और व्यक्तिगत है

1. मेरी प्रिय कहानियां, पृ० 143
2. वही, पृ० 144
3. वही, पृ० 147
4. वही, पृ० 149

कि एक मां अपनी बेटी के साथ और एक बेटी अपनी माँ के साथ खुलकर बोल नहीं सकती। ममी के सुख के लिए सुमी चिंतत है। इसी कारण वह सब कुछ जानते हुए भी उनकी हर सुविधा का खयाल रखने लगती है। धीरे-धीरे सुमी ममी को बेटी की निगाहों से देखने लगती है। मां के प्रति उसके मन में वात्सल्य उभर आता है।

'तलाश' शीर्षक द्वारा लेखक यह बतलाना चाहता है कि इस वैज्ञानिक युग में सम्बन्ध बिखरते जा रहें हैं, मूल्य टूट रहे हैं। नैतिक, पारिवारिक और सम्बन्धों के सारे मूल्य पूरी तरह से निरर्थक साबित होते जा रहे हैं। बौद्धिकता ने हर मूल्य की परीक्षा करनी चाही है और उपयोगिता सिद्धांत पर उसे या तो स्वीकारा है अथवा नकारा है। मूल्यहीन वातावरण में मूल्यों की 'तलाश' की जा रही है। प्रस्तुत कहानी में शारीरिक सुख के अधीन होकर ममी अपने मातृत्व को भूल गयी। सुख की तलाश में लगी हुयी ममी सुमी के चले जाने के कुछ ही दिनों बाद वह अनुभव करती है कि 'तलाश' निरर्थक है। क्योंकि इन भौतिक सुखों के बाद एक भयंकर सन्नाटा अनुभव होने लगता है जो असहाय और भयानक है। सुख अथवा आनन्द 'मातृत्व' और 'वात्सल्य' को स्वीकारने में है; उससे अलग हटकर जीने में नहीं। इस प्रकार ममी की यह 'तलाश' आधुनिक युग के प्रत्येक व्यक्ति की 'तलाश' है। तलाश सुख की, तलाश तृप्ति और आनन्द की, तलाश सुख के नये मूल्यों की। पुराने मूल्यों को नकारकर सुख को अन्य भौतिक वस्तुओं में पाने की कोशिश करना आज के इस वैज्ञानिक युग की सबसे बड़ी विशेषता है। परन्तु धीरे-धीरे यह युग ममी की तरह अनुभव कर रहा है कि यह तलाश प्राणलेवी तलाश है, यह तलाश सिवा सन्नाटे के कुछ नहीं देती। इसी कारण फिर वह उन चिरन्तन सम्बन्धों की ओर मुड़ रही है; जिसकी दुहाई प्रत्येक युग के मनिषियों ने दी है। इस प्रकार यह शीर्षक ममी की मनःस्थिति को, उसके चरित्र को, आधुनिक युग की अन्धी कोशिश को स्पष्ट करता है। इस दृष्टि से यह शीर्षक अत्याधिक सम्पर्क और योग्य है।

श्री सविता जैन ने अपने एक निबंध—"समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा—" में प्रस्तुत कहानी पर गम्भीरता से विचार किया है। उनके अनुसार इस कहानी की नायिका ममी—"अपने खोये हुए व्यक्तित्व की तलाश में है जो विभिन्न आरोपित सम्बन्धों मे लुप्त हो गया है। वह माँ होने के साथ ही एक नारी भी है जो अपने पति की मृत्यु के साथ ही अपनी नारी-सुलभ भावनाओं को दफना नहीं देती अपितु उन्हें जोवित रखता चाहती है।"

(४) मांस का दरिया

वैश्या जीवन पर आधारित कमलेश्वर की यह कहानी हिन्दी साहित्य में विवादास्पद रही है। विवाद इसकी स्पष्टता को और भाषा के नंगेपन को लेकर हुआ है। कहानी की चर्चा जब भाषा के दायरे में ही फंस जाती है तब इस प्रकार के आरोप-प्रत्यारोप किये जाते हैं। किसी भी कृति की चर्चा उसकी समग्रता को लेकर होनी चाहिए न कि उसके किसी अंग विशेष को लेकर। इसी कारण इस कहानी में किसी एक पक्ष को लेकर निष्कर्ष देने के बजाए इसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लेकर सोचने का प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है।

वैश्या जीवन पर आज तक दर्जनों कहानियां लिखी गयी हैं; और लिखी जा रही हैं। इन सारी कहानियों में इस कहानी का विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। वेश्या वर्ग समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग रहा है अति आदर्शवाद की बात करने वाले विचारक इस वर्ग के अस्तित्व को ही समाप्त करने की बात करते हैं। वेश्याओं का उद्धार किया जाएं, उनके विवाह किये जाएँ और फिर कोई और वेश्या न बनें इसकी कोशिश की जाएँ—ऐसा इन विचारकों का मत रहा है। शुद्ध वैज्ञानिक और समाज-शास्त्रीय दृष्टि इस प्रकार है—'वेश्या समाज जीवन का एक आवश्यक अंग है। अनादि-अनन्त काल से इस वर्ग का प्रत्येक समाज में किसी-न-किसी रूप मे अस्तित्व है ही। इस वर्ग को नकारना समाज की वास्तविक स्थिति को नकारना है। हर मकान में जिस प्रकार गन्दगी निकालने के लिए मोरी हुआ करती है ठीक उसी प्रकार उस समाज में स्थित गन्दगी को निकालने के लिए 'वेश्या' एक मोरी ही है। इसी कारण समाज-स्वास्थ्य के लिए इस वर्ग की आवश्यकता है। विवाह संस्था की सुरक्षा के लिए भी इस वर्ग की आवश्यकता है। अगर वेश्या वर्ग को पूर्णतः समाप्त कर दिया जाय तो विवाह-संस्था खतरे में आ सकती है। विवाहिता स्त्रियों की जिंदगी अत्याधिक सुरक्षित है इन्हीं वेश्याओं के शारीरिक समर्पण के कारण। स्त्रियों के इस वर्ग के कारण ही उसका दूसरा वर्ग सुरक्षित है और वह साहित्य संस्कृति धर्म और नैतिकता की बात कर पा रहा है। भारतीय समाज में और साहित्य में बेश्याओं को अत्याधिक महत्व था। आदरणीय थीं, नगरवधू थीं, सुशिक्षिता, सुसंस्कृत और अभिरुचि संपन्न थीं। उन्हें "सदासुहागिन" नाम देकर हर स्थान पर आदर किया जाता था। स्पष्ट है कि वेश्याओं की ओर समाज कभी घृणा, तिरस्कार या उपेक्षा से देखता नहीं था। उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी राज्य और राजा की हुआ करती थी। समाज के एक वर्ग की वासना की पूर्ति करने वालों की चिन्ता समाज का दूसरा वर्ग करता ही था। प्रत्येक समाज में पुरुषो का एक ऐसा वर्ग होता ही है

जिसकी वासनापूर्ति योग्य मार्गों से (विवाह) सम्भव नहीं होती। आरम्भिक काल में इनकी ओर श्रद्धा और सम्मान से देखा जाता था। परन्तु बाद में इनकी ओर देखने की दृष्टि विकृति होने लगी। अब पुरुष, वेश्याओं के पास वासना की पूर्ति के लिए नहीं अपनी विकृति को बढ़ाने के लिए जाने लगा। परिणामतः वेश्याओं की स्थिति बिगड़ी। औद्योगीकरण से यह वर्ग धीरे-धीरे व्यवसाय के स्तर पर उतर आया। और व्यवसाय की सारी गन्दगियाँ अपने-आप इसमें आ गई। 19 वीं शती तक वेश्याएँ शारीरिक वासना की पूर्ति से भी अधिक संगीत, नृत्य और मृदु संभाषण के लिए ही प्रसिद्ध थीं। परन्तु दुर्भाग्य से दो महायुद्धों के बाद में मात्र 'माँस' का प्रतीक बन गयीं। एक जमाने में जो मुहल्ला शास्त्रीय संगीत, नृत्य सौन्दर्य और अन्य सभी कलाओं का संगम था अब वह मात्र 'माँस का दरिया' बन गया। शरीर के इस व्यापार का स्तर दिन-ब-दिन घटते गया और 'व्यापार' के अन्तर्गत जिस हृदय-हीनता, अमानवीयता, यान्त्रिकता और सौदेबाजी के मूल्य उभर आये हैं, ठीक उसी प्रकार इस व्यापार में भी यही मूल्य उभर कर आने लगे। पिछले 40-50 वर्षों में वेश्याओं की यह दुर्गति एक समाज शास्त्रीय प्रश्न बन गया है।

संवेदनशील साहित्यकारों ने वेश्याओं का चित्रण करने की हर बार कोशिश की है। इन वेश्याओं की ओर देखने के तीन दृष्टिकोण आधुनिक हिन्दी साहित्य में दिखाई देते हैं। (1) एक गांधीवादी आदर्श और भावुक दृष्टिकोण: 1910-20 के समय यह दृष्टिकोण साहित्य में उभर आया। वेश्याओं का सुधार होना चाहिए, उनके विवाह होने चाहिए; इस संस्था को धीरे-धीरे समाज में से खत्म किया जा सकता है; आदि विचारों से साहित्यकार प्रेरित और प्रभावित हैं। आर्य समाज ने भी इस प्रकार के विचारों की पुष्टि की है। ये लेखक वेश्याओं की ओर 'दया' भाव से देखते हैं। इनमे नायक उद्धारक अथवा सुधारक के रूप में आगे आते हैं। प्रेमचन्द में यह दृष्टि बहुत अधिक उभरी है। 'सेवासदन' में उपर्युक्त दृष्टि ही व्यक्त हुई है।

(2) वेश्याओं के जीवन को अधिक वासनामय, भड़कीला, उद्दीपक बनाकर प्रस्तुत करने वाले लेखकों की भी यहाँ कमी नहीं है। ऐसे लेखक इनकी ओर दया से देखने का नाटकभर करते हैं। वास्तव में ये इन्हें काम-पूर्ति का एक साधन मात्र मानते हैं। वेश्याएँ कितनी कुशील, स्वार्थी और संकुचित होती हैं इसका वे चित्रण करते हैं अथवा वेश्याएं कितने विशाल हृदया होती हैं—ते बतलाते हैं। दृष्टि किसी भी प्रकार की हो इनका उद्देश्य एक ही होता है—पाठकों को उद्दिप्त करना; उनका मनोरंजन करना। ऐसे उपन्यास पढ़कर वेश्याओं के प्रति युवकों में आकर्षण पैदा हो जाता है। और वे वेश्यागमन की ओर प्रेरित होते हैं। हिन्दी में ऋषभचरण जैन के उपन्यास इसी प्रकार के हैं। वेश्या जीवन का अत्याधिक काल्पनिक अतिशयोक्ति पूर्ण

रोमांटिक और अयथार्थ चित्रण इन उपन्यासों में हुआ है। पहले प्रकार के उपन्यास भावुक और आदर्शवादी हैं और दूसरे प्रकार के नग्न, अश्लील और गन्दे।

(3) वेश्याओं की ओर देखने का तीसरा दृष्टिकोण शुद्ध यथार्थ, मानवीय और तटस्थता का होता है। लेखक उनकी ओर न 'दया' से देखता है न रुमानी वृत्ति से। वह तो उनके सही रूप में देखने की ईमानदार कोशिश करता है। उनकी तकलीफों का बड़ा ही यथार्थ और कुछ सीमा तक कठोर चित्रण वह करता है। एक चित्रकार की तरह अत्यन्त ही तटस्थता से उनकी वास्तविक स्थिति को हमारे सामने रखता है। वास्तव में यही परिप्रेक्ष्य किसी भी साहित्यकार के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार की दृष्टि से लिखी गयी कहानियाँ पढ़कर न उन वेश्याओं के प्रति पाठक भावुक हो जाता है और न उनके प्रति आसक्ति बढ़ती है उलटे उस सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति उसके मन में एक चिढ़ पैदा हो जाती है; जिसने उनकी इतनी दुर्गति की है। कमलेश्वर इसी वर्ग के लेखक है। इसी कारण हिन्दी साहित्य में इस कहानी को एकदम अलग और विशिष्ट स्थान प्राप्त हो जाता है।

'जुगनू' नामक वेश्या इस कहानी के केन्द्र में है। कई वर्षों से वह इस व्यवसाय मे लगी रही है। इस व्यवसाय का और आयु का अत्याधिक सम्बन्ध होने के कारण जैसे-जैसे उसकी आयु बीत रही है। वह परेशान नजर आ रही है। आज वह सबसे अधिक परेशान है। क्योंकि "जाँच करने वाली डाक्टरनी ने-इतना ही कहा था कि उसे कोई पेशीदा मर्ज नहीं, पर तपेदिक के आसार जरूर है।"[1] एक वेश्या के लिए तपेदिक की बीमारी न केवल भयानक है अपितु जिदगी और मौत का सवाल होता है। अब जीएँ तो कैसे जीएँ ? एक बार गाहकों को पता चल जाए कि वह तपेदिक की शिकार है तो फिर उसकी ओर कोई नहीं फटकेगा और तब "कैसे बीतेगी यह पहाड़-सी बीमार जिंदगी ! सहारा.....कोई और सहारा भी तो नहीं, कोई हुनर भी नही.....।"[2] अपना शरीर सैकड़ों को सौंपने के बाद भी इस बुरे समय में कोई नहीं देखेगा–इसे वह जानती है। बेहद अकेलेपन का एहसास उसे होने लगता है। वह समझ नही पा रही है कि इस बीमारी को दुरुस्त कैसे किया जाएँ ? क्योंकि इतने रुपये उसके पास नही हैं और वह इस लायक भी नहीं है कि उसे कोई एकदम-से इतने रुपये दे सके। और उसी दिन पहली बार वह झिझकते हुए आया था। मदनलाल नामक किसी पार्टी का यह मजदूर नेता उसके पास आया था उसके व्यवहार में तथा अन्य ग्राहकों मे जुगनू अन्तर अनुभव करती है। अन्य पुरुषों की तरह वह न उसे छड़ता है न परेशान करता है। अन्य ग्राहकों की तरह

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. 79.
2. वही, पृ० 87

वह उसके साथ आरम्भ में व्यवहार करती है परन्तु भीतर-ही-भीतर यह भी अनुभव करती है कि यह आदमी औरों की तरह नहीं है। वह केवल उसके माँस को नहीं चाहता अपितु उसके प्रति कहीं मानवीयता के स्तर पर बातचीत भी करना चाह रहा है। इसी कारण जब जब वह दूसरी बार आता है तो जुगनू को खुशी होती है और उसके व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है। वह उसके सम्बन्ध में पूछताछ करती है और जब वह कहता है कि "मैं मजदूरों में काम करता हूँ।" तब वह अनायस कह उठती है कि "हमारा भी कुछ काम कर दिया करो·····हम भी मजदूर हैं।"[1] इस वाक्य में जुगनू का सारा दर्द व्यक्त हुआ है। इस पेशे के लोगों की अपनी समस्याएँ हैं और उन समस्याओं को निपटाने के लिए शायद उन्हें भी किसी नेतृत्व की जरूरत है। जब जुगनू यह कहती है कि आज तबीयत ठीक नहीं है तो वह कह देता है कि "मैं ऐसे ही चला आया था" माँस के उपभोग के लिए नहीं—तो जुगनू को एक आश्चर्य का धक्का बैठ जाता है। वेश्या के यहाँ पुरुष ऐसे ही चला आए—केवल मिलने के लिए—यह एहसास ही जुगनू के लिए नया था। इस बात पर फिर भी उसे विश्वास नही है। इसीलिए उसके चले जाने के बाद जुगनू बाहर आकर यह देखती है कि वह किसी और के पास तो नहीं गया? और जब वह चुपचाप सड़क पर सीधे जाता है तब "जुगनू को उसका यूँ लौट जाना बहुत अच्छा लगा था। हल्की-सी खुशी हुई थी।"[2] इसके बाद काफी अर्सा गुजर गया और वह तीसरी बार फिर आया। अब की बार जुगनू ने उसका नाम पूछ लिया। इधर जुगनु की तपेदिक बढ़ने लगी और हारकर उसे अस्पताल में दाखिल हो जाना पड़ा। अस्पताल जाने के पहले उसने अम्मा से कुछ रुपये मांगे थे। और जब उसकी ओर से नहीं मिले; तब वह अपने पुराने ग्राहकों से रुपये उधार ले आई थी। उसे रुपये देने में किसी को हमदर्दी नहीं थी। जिन लोगों ने उसकी जवानी का चाहे जिस तरह उपभोग किया था; आज वे ही मुंह मोड़ रहे थे। उसके शरीर पर जिस दलाल ने और अम्मी ने हजारों रुपये कमाये थे; आज उसके इस बुरे वक्त के समय वे उसका अपमान कर रहे थे। फिर भी बड़ी बेशर्मी से उसने रुपये इकट्ठे किये थे। मनसू किरानी, कँवरजीत होटल वाला, सन्तराम फिटर और मदनलाल प्रत्येक ने अपने-अपने तरीके-से रुपये दिये थे। रुपये देते समय हर एक ने गन्दी माँगे सामने रक्खी थी। सन्तराम फिटर ने सूद के रुपये रात में वसूल करने की बात कही थी। मदनलाल ने बस इतना ही कहा था—"ये चन्दे के रुपये हैं, जल्दी से दोगी तो ठीक रहेगा, मेरे पास भी इतना नहीं होता कि भर सकूँ।"[3]

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 88
2. वही, पृ० 101–102
3. वही, पृ० 109

और जब वह सेनेटोरियम से लौटी थी; तब सब ने और पुलिस वालों ने भी उसे परेशान करना शुरु किया था। सात महिने से उन्हें पैसा नहीं मिला था। जिनसे रुपये उधार लेकर चली गयी थी; वे भी परेशान कर रहे थे। भीतर-ही-भीतर वह बड़ी कमजोरी का अनुभव कर रही थी। परन्तु उसकी कमजोरी की ओर किसी का ध्यान नहीं था। वह तो मांस की पुतली थी और हर आदमी उसके मांस को नोचना चाह रहा था। फिर भी वह ग्राहकों को खुश करने का प्रयत्न कर रही थी। "इतना सब करने के बावजूद भी आमदनी काफी नहीं थी; कोई-कोई रात तो खाली ही चली जाती थी और अपनी कोठरी में अकेले लेटे हुए वह बहुत घबराती थी.....यह पहाड़-सी जिंदगी.....दिन-दिन टूटता हुआ शरीर।"[1] कर्जा चुकाना था वह अलग ही। जांघ की जोड़े पर एक फोड़ा भी निकल आया था जो धीरे-धीरे बढ़ रहा था और वह उससे परेशान हो रही थी। और लोग थे कि न उन्हें उसकी कमजोरी का ध्यान था न उस फोड़े का। मनसू उसे रुपये के लिए काफी तंग कर रहा था। इसी कारण पूर्णतः मजबूर होकर उसने कहा था— "कुव्वत हो तो वसूल कर ले जाओ"।[2] क्योंकि वह सोचती "कर्जा लेकर क्यों मरें जो उतर गया तो अच्छा ही है।"[3] इधर दोपहर में जब वह अकेली पड़ी रहती तो सोच में डूब जाती। आखिर क्या होगा? अगर यही स्थिति रही तो "वह दाने-दाने को मोहताज हो जाएगी। लंगड़ी घोड़ी की जिंदगी वह कैसे जी पाएगी?..... क्या उसे भी मस्जिद की सीढ़ियों पर बुर्का पहन कर बैठना होगा और अल्लाह के नाम पर हाथ फैलाना होगा?.....जी बहुत घबराता तो वह जहर खाने की बात सोचती.....या डूब मरने की"[4]। जुगनू की यह असहाय स्थिति कितनी दर्दनाक है? समाज के एक वर्ग को खुश करने वाली इस स्त्री के प्रति क्या उस सामाजिक व्यवस्था की अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं है? क्या आत्महत्या एक मात्र मार्ग इनके सम्मुख रह गया है? प्रत्येक स्थान पर इनका शोषण ही हो रहा है। इस शोषण को कैसे रोका जा सकता है? जुगनू सोचती है—"सैकड़ों मरद आये और गये.....पर कोई एक ऐसा नहीं, जिसकी परछाई तले ही उम्र कट जाए"[5] पिछले दिनों से सभी कर्जदार अपना अपना कर्जा वसूलने के लिए आने लगे थे। उसके लिए यहीं तसल्ली की बात थी। उस रात उसका फोड़ा बुरी तरह टीस रहा था। वह किसी को भी खुश करने की स्थिति में नहीं थी। जांघ का जोड़ फटा जा

---

1. मेरी प्रिय कहानियां, पृ० 89
2. वही, पृ० 90
3. वही, पृ० 90
4. वही, पृ० 91
5. वही, पृ० 91

रहा था और ऐसे ही समय मदनलाल आया था। यही एक व्यक्ति था जो अब तक रुपये वसूलने के लिए नहीं आया था। जुगनू उसे देखकर भीतर-ही-भीतर झल्ला उठी। इसी कारण उसने संकोच के साथ कहा था—"आज बहुत तकलीफ है..... जांघ के जोड़ पर फोड़ा निकला हुआ है"[1]। परन्तु जब मदनलाल ने यह कहा कि वह रुपयों के लिए नहीं उसके लिए आया है—तब उसे एक झटका सा लगा। ये कैसे संभव है? थोड़ी देर के बाद मदनलाल यह कहकर कि फिर आऊँगा—चला गया। उसके लौट जाने के बाद जुगनू ने अनुभव किया कि 'मन में कहीं अफसोस भी था कि उसे ऐसा ही लौटना पड़ा"[2]। और तभी कंवरजीत आया। उसके लाख मना करने के बाद भी वह उसे परेशान करता रहा। उस पर उसने जबरदस्ती ही की। आखिर वह कर्जदार थी; करेगी भी क्या? उसकी ज्यादती में, दर्द के कारण, पूरी आवाज में वह चीखी थी। फोड़ा फट गया था। मवाद जांघो पर फैल गया था। अब वह एक विचित्र सुख का अनुभव कर रही थी। थोड़ी देर पहले उसने मदन लाल को लौटा दिया था। सोच रही थी कि ऐसे आदमी को यूं लौटाना गलत ही था। उसके प्रति थोड़ी सी सहानुभूति और प्यार बतलाने वाले उस व्यक्ति को वह बदले में क्या दे सकती है? उसके पास था ही क्या सिवा मांस के। अपने निकटस्थ व्यक्ति को एक वेश्या सिवा अपने शरीर के और क्या दे सकती है? इसी कारण वह फत्ते को कहती है कि नीली कमीज वाले उस आदमी को बुला लाओ। अब वह उसे अपना शरीर सौंप देगी। अभी थोड़ी देर पहले वह इस बात को नकार चुकी थी। क्योंकि तब फोड़ा बुरी तरह से दर्द दे रहा था। परन्तु अब फोड़ा फूट जाने से दर्द समाप्त हुआ है इसी कारण वह मदनलाल को बुला रही है।

जुगनू नामक एक वेश्या की जिंदगी के कुछ हिस्सों के इस उपर्युक्त चित्रण को पढ़कर पाठकों के मन में अनेक प्रश्न निर्माण हो जाते हैं। जुगनू का यह चरित्र प्रतिनिधिक है। जुगनू के बहाने लेखक ने वेश्या जीवन का बड़ा ही यथार्थ, जीवंत और भयावह चित्र हमारे सामने रखा है। यहां किसी भी प्रकार के जीवन मूल्य नहीं हैं। मांस ही मूल्य है। जिंदगी जीने के लिए वही एक मात्र माध्यम है। यहां प्यार नहीं, ममता नहीं, स्नेह नहीं। यहां है तो मात्र भूख! पेट की भूख के लिए किसी दूसरे की दूसरी भूख शांत करनी पड़ती है। और फिर इस बीच दलालों की कमी नहीं है। अम्मा है, दलाल है, पुलिसवाले हैं, कर्जदार हैं। इनमें से कुछ को रुपये देने पड़ते हैं और कुछ को शरीर। तपेदिक से परेशान जुगनू को किसी ओर से सहानुभूति नहीं मिलती। एक मदनलाल है जो उसे सहानुभूति दे रहा है। प्यार और अपनत्व के लिए अन्य स्त्री पुरुषों की तरह जुगनू भी लालायित है। "अम्मा की

आखों में अपनापन पाकर उसे बड़ा सहारा-सा मिला था"[1]। परन्तु अम्मा के इस अपनत्व में स्वार्थ मात्र भरा हुआ है। तपेदिक से परेशान जुगनू कई बार सोचती है कि कहीं चली जाए। परन्तु फिर उसकी समझ में नहीं आता जाए तो कहां जाएँ ?

यह जुगनू भी अन्य स्त्रियों की तरह कभी एक भरी पूरी जिंदगी जी रही थी बारह बरस पहले की उसकी जिंदगी आम स्त्रियों की तरह थी। "खाट के नीचे गुदड़ था और टीन का बक्सा—बक्से में बारह बरस पहले का एक पर्चा पड़ा हुआ है, जिसके हरुफ भी उड़ गये हैं..... .....अब उस पर्चे का कोई मतलब नहीं रह गया है। मासविदा मुर्दा हो चुका है। और अब कौन जाता है वापस.....और कौन बुलाता है वापस..... .. ..।"[2] कमलेश्वर उन कारणों की खोज नहीं करते जिससे जुगनू को वेश्या बनना पड़ा। वे उस स्थिति को सीधे स्वीकार कर लेते हैं और इस वेश्या जीवन की यातनाओं का चित्रण करते हैं। वेश्या क्यों बनना पड़ा इसका विश्लेषण कोई समाजशास्त्री करते बैठेगा। यह जिंदगी कितनी भयावह है; इसको वे बतलाते हैं। जुगनू जैसी स्त्रियों का कोई भविष्य नहीं होता। अगर होता भी है तो वह मात्र भयानक होता है। किसी मस्जिद की सीढ़ियों पर बुर्का पहन कर भीख मांगने के सिवाय कोई दूसरा भविष्य इन स्त्रियों के सम्मुख नहीं होता। कैसा चरित्र है यह व्यवसाय ! व्यक्ति के अस्तित्व को ही यह समाप्त कर देता है। व्यक्ति को व्यक्ति से मांस के स्तर पर ला छोड़ने वाला यह व्यवसाय भयावह है। "जिंदगियों के बीच से वक्त का दरिया किनारे काटता हुआ निकल गया है ..... कहीं कोई नहीं है..... .... .. कहीं कोई नहीं है।"[3] कहीं कोई नहीं है कि एहसास से ही जुगनू परेशान है। इधर मदन लाल के कारण वह अनुभव कर रही थी कि उसका भी कोई है। मदनलाल का यूं ही आकर चले जाने के बाद जब उसके कमरे में कंवरजीत प्रवेश करता है तब वह अनुभव करती है—"एका एक लगा था जैसे कोई पराया घर में घुस आया हो।"[4]

सम्पूर्ण कहानी में जुगनू ही केन्द्र में है। आज जुगनू एक ऐसे बिन्दू पर खड़ी है जहाँ से वह न पीछे लौट सकती है न आगे जाने के लिए कोई रास्ता है। मांस के दरिये मे वह फंस गयी है। इसी में उसको जीना है और शायद मौत भी यहीं है। इस मांस के दरिये में घुट-घुट कर मरना यही उसकी नियति है। इस मांस

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 8
2. वही, पृ० 92
3. वही, पृ० 92
4. वही, पृ० 94

के समुद्र के एक बूंद की तरह वह है। इस बूंद से पूरे समुद्र की सारी विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। 'जुगनू' के चरित्र को लिखते समय लेखक किसी भी बाहरी मूल्य से प्रेरित और प्रभावित नहीं है। इसी कारण वह जुगनू की स्थिति का, वहां के वातावरण का दर्दनाक परन्तु यथार्थ चित्रण करने में समर्थ हो सका है। किसी भी प्रकार के आवेश, उपदेश अथवा दया-भाव को लेखक ने ओढ़ नहीं लिया है। वह तो इस स्त्री के बहाने उस सम्पूर्ण परिस्थिति को समझ लेने की कोशिश में लगा हुआ है। कहानी के अन्त में बतलाया गया है कि जुगनू मदनलाल को बुलाने के लिए फत्ते को कहती है। और फिर क्षण भर सोचकर कहती है—"रहने दे·····तू अपना काम कर। वह कह गया है, आ जायगा कभी·····।"[1] मदनलाल की सहानुभूति, आत्मीयता, और अपनत्व से जुगनू कहीं न कहीं खुश है। मदनलाल उसको उपर्युक्त चीजें दे रहा है। यह उसे बदले में क्या दे सकती है? जहाँ माँस ही जीवन मूल्य है। वहां समर्पण के लिए सिवा माँस के और क्या हो सकता है? इसीलिए वह उसे बुलाती है। फिर यह सोचकर की वह आयेगा फत्ते को रोक देती है। पता नहीं क्यों उसका विश्वास हो गया है कि फिर वह आयेगा, इस व्यवसाय में और इस अधेड़ अवस्था में इस प्रकार का विश्वास उसकी अपनी विशिष्ट शक्ति है।

जुगनू खुद को मजदूर समझती है। बाहर की दुनियां में मजदूरों के प्रश्नों के लिए कितनी बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी जा रही हैं; हड़तालें हो रही है; परन्तु हमारे लिए यह सब कुछ कब होगा? ऐसा भी उसका प्रश्न है। एक सहज संवेदनशील नारी के रूप में जुगनू हमारे सम्मुख आई है। अन्य वेश्याओं की तरह न वह ग्राहकों को तंग करती है; न उनका अपमान करती है; और न जादा नखरे ही उसे पसन्द हैं। इतनी बेहया जिंदगी जीते हुए भी वह अत्याधिक प्रमाणिक है इसी कारण वह सोचती है कि कर्जे के रुपये किसी-न-किसी तरह लौटाये जाएँ।" किसी का कर्जा लेकर क्यों मरे?" यह उसका सीधा प्रश्न है। अपनी इसी सहजता के कारण पाठकों की सम्पूर्ण सहानुभूति उसे मिल जाती है। 'जुगनू' के बहाने लेखक ने प्रस्थापित समाज व्यवस्था को लेकर कई प्रश्न उठाये हैं। अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से! यह कहानी पढ़ते समय सदहृय पाठक यह जरूर सोचता है कि क्या इन वेश्याओं को स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ देने की जिम्मेदारी समाज की नहीं है? इस अर्थ में यह कहानी प्रगतिशील है। वेश्याओं की भयावह स्थिति का बड़ा ही सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण इसमें किया गया है। जो उपयोग लेते हैं। अथवा जिन्होंने अपने उपयोग के लिए इस वर्ग को जन्म दिया है, उनका दायित्व है कि वह उनको सुरक्षा भी दे। उनके भविष्य के सम्बन्ध में किसी-न किसी प्रकार की व्यवस्था करें। परन्तु यहां ऐसा नहीं है। इस कारण इनकी स्थिति और भी भयावह हो जाती है। क्रूर परिस्थिति और

---

[1] मेरी प्रिय कहानियाँ पृ 96

व्यक्ति को यहां आमने-सामने खड़ा कर दिया गया है। एक ओर माँस का दरिया है तो दूसरी ओर जुगनू। इस दरिये से बचकर वह निकल नहीं सकी। वेश्याओं की बस्ती का, वहां के वातावरण का, वहाँ की भाषा का बड़ा ही सहज चित्रण यहां हुआ है। चित्रण की इस सहजता और स्पष्टता के कारण कहानी अत्याधिक नंगी बन गयी है इस नग्नता के बावजूद वह अश्लील नहीं है। क्योंकि नग्नता से भय भी पैदा होता है। इस नग्नता के लिए जिम्मेदार इकाइयों को लेकर ही पाठक गंभीरता से सोचता है। इस नग्नता में मग्न नहीं होता। यह नग्नता इतना डर पैदा कर देती है कि दिल दहल जाता है। इसीलिए इतनी घोर नग्नता के बावजूद भी यह कहानी अश्लील नहीं लगती। साहित्य में अश्लीलता का आरोप तब लगाया जाता है जब उस कृति को पढ़कर वैसी ही प्रक्रिया पाठकों के मन में शुरू हो जाए। मनुष्य क्षण भर के लिए 'गरम' हो जाए। और फिर सब कुछ भुला दें। परन्तु यह कहानी पाठकों को आत्म-निरीक्षण के लिए विवश कर देती है। घृणा सी पैदा हो जाती है उस परिस्थिति के प्रति। जुगनू के साथ अमानवीयता का व्यवहार करने वाले उन व्यक्तियों के प्रति एक चिढ़ पैदा हो जाती है। फिर यह कहानी अश्लील कैसे हो सकती है? इस कहानी को पढ़कर वेश्या व्यवसाय के प्रति अगर आसक्ति निर्माण हो जाती, वहाँ हो आने की इच्छा होती तो फिर यह कहानी जरूर अश्लील बन जाती। उलटे इसे पढ़कर तो इन स्त्रियों के प्रति सहानुभूति निर्माण हो जाती है। जुगनू परिस्थिति का शिकार मात्र है। इसी कारण उस सम्पूर्ण वातावरण के प्रति पाठक चिन्तित और परेशान हो जाता है। इस कहानी में कोई खलनायक नहीं है। खलनायक तो सिर्फ परिस्थिति ही है।

एक वेश्या के पास उसका अपना भूतकाल होता है, उसके अपने दर्द होते हैं; बीमारियाँ होती हैं; बिना किसी कारण से उसे त्रस्त करने वाले लोग होते हैं। सिवा मदनलाल के और सभी पुरुष उसे मात्र एक खिलौना ही समझते रहें हैं। एक वेश्या के पास उसका अपना केवल वर्तमान होता हैं। वर्तमान भी कैसा? भयावह घृणास्पद, अपमानास्पद, बीभत्स और उपेक्षा पूर्ण! भविष्य उसके पास होता नहीं और होता भी है तो वह वर्तमान से अधिक क्रूर। भयानक और बीभत्स बीमारियाँ, भीख और अवहेलना--यही तो भविष्य में भरा पड़ा है। अन्य लोग भविष्य के सपने देखकर वर्तमान को सुखकर बना लेते हैं। एक वेश्या भविष्य के सपनों से काँपने लगती है। क्योंकि सिवा इस भयानक भविष्य के और कोई पर्याय उसके सम्मुख इस समाज व्यवस्था ने अब तक रक्खा नहीं है। जुगनू की भी यही स्थिति है।

कमलेश्वर की यह दूसरे दौर में लिखी गयी अन्तिम कहानी है। अर्थात् 1959-1966 तक के काल में। इस दौर में वे व्यक्ति के दारुण और विसंगत संदर्भों को समय के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न कर रहे थे। प्रस्तुत कहानी में

भी यही प्रयत्न दिखाई देता है। जुगनू के इस दर्द को उसके समय और वातावरण के परिप्रेक्ष्य में समझ लेने का उनका यह प्रामाणिक प्रयत्न है। कमलेश्वर वातावरण के सजीव चित्रकार हैं। इस कहानी में वेश्याओं की बस्ती का, वहाँ के वातावरण का, चित्रण निकाल दें तो कहानी पूर्णतः लंगड़ी हो जाएगी। वातावरण के नींव पर ही पात्र खड़े हैं और पात्रों का दर्द वातावरण के कारण और अधिक पैना हो गया है। जलते अंगारों की तरह यह कहानी है। हिन्दी में अब तक वेश्या जीवन पर जितना भी साहित्य लिखा गया है; उसमें यह कहानी एकमेवाद्वितीय अपनी सहज मानवीयता के कारण, वातावरण की जीवन्तता के कारण, प्रगतिशीलता के कारण और सबसे बढ़कर एक स्त्री की छटपटाहट के कारण उसे इस प्रकार का स्थान कोई भी आलोचक दे देगा।

"यातनाओं के जंगल से गुज़रते मनुष्य के साथ और समांतर चलने का यह तीसरा दौर है। अर्थात् अनुभव के अर्थों तक जाने की कोशिश यहाँ है।"

—कमलेश्वर

कथा-यात्रा का तीसरा दौर

कालक्रम: 1966 से 1972 तक
स्थान: बम्बई

कहानियाँ

(1) नागमणि
(2) बयान
(3) आसक्ति
(4) उस रात वह मुझे ब्रीच कैण्डी पर मिली थी

"यातनाओं के जुंगल से गुजरते मनुष्य की इस महायात्रा का जो सहयात्री है, वही आज का लेखक है। सह और समांतर जीनेवाला, सामान्य आदमी के साथ।"

कमलेश्वर

(१) नागमणि

तीसरे दौर में लिखी गयी यह कहानी आज की मूल्यहीन सामाजिक अवस्था को अधिक स्पष्ट करती है। स्वतन्त्रतापूर्व गांधीवादी युग में इस देश का जन मानस आदर्शों से प्रेरित था। गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से लोगों के सामने जो आदर्श प्रस्तुत किये थे, वह न केवल नये और राष्ट्रीय-भावनाओं से ओतप्रोत थे अपितु अनुकरणीय भी थे। इसी कारण इस काल के सैकड़ों नवयुवक गांधीजी से प्रेरणा लेकर राष्ट्रीय सेवा के लिए निकल पड़े थे। उनके सामने स्वतन्त्र भारत की एक नयी तस्वीर थी, नये स्वप्न थे। इन स्वप्नों की पूर्ति के लिए वे कटिबद्ध थे। इन ध्येयों को जमीं पर उतारने की प्रतिज्ञाएँ उन्होंने की थी। व्यक्तिगत सुख दुःखों को त्यागकर वे राष्ट्र के लिए समर्पित हो चुके थे। प्रचारक के रूप में ये नौजवान देश के कोने-कोने में छा गये थे। कोई खादी का प्रचारक था, कोई स्वदेशी का, कोई नशाबन्दी का और कोई राष्ट्र भाषा हिन्दी का। वे यह समझ रहे थे कि प्रचारकों का अपना कोई विशिष्ट घर नहीं होता। सारा संसार ही उनका घर है। और "प्रचारकों के पास वक्त कहाँ ? देश को भाषा देनी है। देश को वाणी देनी है। लोग निरक्षर हैं। ऐसे देश कैसे बढ़ेगा ? भविष्य कैसे बनेगा ? जब तक अपनी भाषाएँ आएँगी, तब तक जनता गूंगी रहेगी और फिर उन्हें एक सूत्र में बाँधने का काम राष्ट्रभाषा करेगी। हम एक परिवार की तरह हो जाएँगे।"[1] इन विविध स्वप्नों को लेकर ये लोग जी रहे थे। देश ही उनके स्वप्नों का आधार था। उनकी हर धड़कन देश की धड़कन थी। सन् 1910 से 1947 तक इस देश के प्रत्येक हिस्से में इस प्रकार के लोग कार्य कर रहे थे। परन्तु 1947 के बाद अचानक एक बहुत बड़ा परिवर्तन हम अनुभव करने लगे। स्वतन्त्रता के पूर्व यह जो ध्येयवादी, स्वप्निल, भावुक, उदात्त और विशाल मन वाली राष्ट्रीय पीढ़ी थी वह धीरे-धीरे गायब होने लगी। उसके स्थान पर अत्यन्त संकुचित मनोवृत्ति वाली, स्वार्थी, साम्प्रदायिक और विदेशी वस्तु और भाषा की गुलाम पीढ़ी देश के सभी क्षेत्रों में दिखाई देने लगी। इस पीढ़ी के हाथों में राजनीतिक सत्ता, प्रशासकीय व्यवस्था और सार्वजनिक संस्थाएँ आ गयी। परिणामतः पुरानी ध्येयवादी और उदार पीढ़ी धीरे-धीरे निराश और उदास होकर बेहद अकेलेपन का अनुभव करने लगी। इस देश के भीतर पिछले 25 वर्षों में यही सबसे बड़ा मूल्यगत परिवर्तन हुआ है। 'अर्थ-प्रधान' सामाजिक व्यवस्था, पूँजीवादी आर्थिक रचना और केन्द्रित राजनीति ने जीवन के सभी क्षेत्रों

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, नागमणि पृ० 122

से श्रेष्ठ मूल्यों को जाने-अनजाने बहिष्कृत किया है। गाँधीके इस इस देश में गाँधी-जी के 5-7 वर्ष के बाद ही ध्येयवादिता, आदर्श और समर्पण हँसी मजाक के विषय बन गये। ऐसे लोग बेवकूफ, अव्यवहारी और गाँधी बाबा के नाम से सम्बन्धित किये जाने लगे। ध्येयवादी व्यक्तियों की ओर देखने की किसी को फुर्सत नहीं थी। जिनके कारण आज हम स्वतन्त्रता की खुली हवा में साँस ले रहे हैं; वे आखिर आज किस अवस्था में जी रहे हैं; उनकी समस्याएँ क्या हैं इधर किसी ने भी ध्यान नहीं देना चाहा। और ये तथाकथित पागल, अव्यवहारी और ध्येयवादी लोग गाँधी के नाम पर अपना काम उतनी ही लगन, निष्ठा और आस्था से करते रहे और कर रहे हैं। कई तकलीफों से जूझते, व्यक्तिगत सुख-दुखों की होली जलाकर वे आज भी अपने रास्ते पर अडिग खड़े हैं। समाज उन्हें उपेक्षा से देख रहा है, तो भी वे बराबर बढ़ रहे हैं। आस-पास के वातावरण को देखकर कभी-कभी वे बेहद निराश हो जाते हैं। स्वतन्त्रता पूर्व के देश को लेकर देखे गये स्वप्नों में और आज के इस देश में उन्हें किसी भी प्रकार की संगति दिखाई नहीं देती। एक पूरी पीढ़ी जिन स्वप्नों को देखते हुए फाँसी के तख्तों पर हँसते-हँसते चढ़ चुकी थी, लाठियों के क्रूर प्रहारों को सह चुकी थी; गोलियाँ खा चुकी थी, वह अपने स्वप्नों की भयावह दुर्गति देखकर किस मनःस्थिति से गुजर रही होगी इसे शायद हम समझ नहीं पाएँगे। परन्तु इस देश में ऐसा हुआ है, और हो रहा है। इन ध्येयनिष्ट और आस्थावान लोगों की मनःस्थिति की अभिव्यक्ति करना यह साहित्यकार का नैतिक कर्तव्य ही है। विश्वनाथ इस पीढ़ी का प्रतीक है। कमलेश्वर विश्वनाथ के माध्यम से एक ओर उस पीढ़ी के सम्पूर्ण दुःख को व्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर प्रस्थापित समाज व्यवस्था की क्रूरता को स्पष्ट करते हैं। एक तीसरे स्तर पर यह कहानी विश्वनाथ के व्यक्तिगत जिंदगी का करुण चित्रण भी प्रस्तुत करती है। आज साँस्कृतिक संकट और मूल्यगत संक्रमण को भी यह कहानी रेखांकित करती है।

विश्वनाथ नामक एक हिन्दी प्रचारक की यह करुण कहानी है। गाँधीयुग के ध्येयनिष्ट प्रचारकों की जो दुर्गति आज की प्रस्थापित व्यवस्था ने की है उसका जीवंत चित्रण इस कहानी में किया गया है। विश्वनाथ उत्तर भारत के किसी कस्बे से सम्बन्धित है। स्वतन्त्रता के पूर्व गाँधीजी से प्रेरित होकर उसने राष्ट्रभाषा प्रचार की जिम्मेदारी ले ली। और प्रचारक बनकर सुदूर दक्षिण के विभन्न प्राँतों, गाँवों और देहातों में घूमता रहा। पिछले कई वर्षों से वह यही काम बड़ी निष्ठा से कर रहा है। "अ – ···आ······इ····ई–कर कर····पर पर! घर घर! राम खाना खा। अब घर चल।····कोई भी आवाज हो, वह इन शब्दों में बदल जाती है।········कभी-कभी तो चलते-फिरते किरमिच के जूतों से भी यही आवाज निकलती है।"[1] हिन्दी

के इस प्रचारक का अपने कार्य के साथ अद्वैत स्थापित हो गया है। प्रकृति अथवा किसी भी आवाज से उसे हिन्दी के शब्दों का ही भास होता है। "आवाजों की बेहोशी में कभी-कभी विश्वनाथ मीलों इस तरह निकल गया है।"[1]

कितने बरस हो गये हैं इस तरह चलते हुए; कार्य करते हुए। न आर्थिक लाभ देखा न, व्यक्तिगत सुख। कोई एक जगह रहना भी नहीं हुआ कभी कहीं; कभी कहीं। "जब जहाँ राष्ट्र-भाषा प्रचार की जरूरत पड़ी-वहीं विश्वनाथ। मैसूर कर्नाटक तक गया। कालीकट-कोचीन गया। जहाँ गया बड़े सम्मान के साथ गया। .....पाठशालाएँ बनाई। रात-दिन लोगों को राष्ट्र-भाषा पढ़ाई। दस्तखत करना सिखाया। उन्हें साक्षर बनाया और दूसरे इलाके में चल दिया।"[2] वर्षों से जिंदगी का यही क्रम रहा है। यह कभी जाना ही नहीं कि अपना घर भी कुछ होता है। एक ही धुन थी....राष्ट्र-भाषा की। उन दिनों तो बादलों में भी राष्ट्रभाषा के अक्षर दिखाई देते थे। एक ध्येयवादी व्यक्ति की इससे बढ़कर और क्या पहचान हो सकती है कि प्रकृति के प्रत्येक कण-कण में वह अपने कार्य को ही देखें। आज इतने वर्षों विश्वनाथ को अपना घर याद आ रहा है। अब घर चल! "अपनी भाषा, अपना देश! अपना राज अपना वेश" का नारा अब किताबों में ही रहा। देश के सभी कोनों में स्वतन्त्रता के बाद जो विभिन्न परिवर्तन हो गये उसे देखकर विश्वनाथ जैसा व्यक्ति भीतर-ही-भीतर परेशान हो रहा है। इसी कारण उसकी इच्छा होती है कि अपने प्रदेश में चलें। वहाँ की स्थिति देखें।

"अहिन्दी प्रांतों में हिन्दी प्रचार करते-करते जब बदन थक गया था, तो वह अपने शहर लौट आया था। अपने देश का हाल देखकर वह उदास हो गया था। कहाँ है हिन्दी ?इतने वर्षों के बाद भी हिन्दी कहीं नहीं थी....जब तक आदमी बोलेगा नहीं, देश कैसे चलेगा ?.... अपनी भाषा; अपना देश, अपना वेश! उसे ताज्जुब हुआ था कि अपने प्रदेश में ही कुछ नहीं हुआ था।"[3] इसी कारण उसने प्रचार का यह कार्य अपने ही प्रदेश में शुरू किया। अपनी जरूरतें उसने और कम कर दी थी। और बड़ी मुश्किल से जमीन का एक टुकड़, उसमें चुंगी का कार्यालय से हिन्दी के लिए ले लिया था। उसने तय किया था कि अब यहीं 'हिन्दी मन्दिर' बनाएगा। जरूरत हुई तो छोटा-मोटा आन्दोलन चलाएगा। अब वह सीधा-सादा मामूली-सा आदमी बन गया था। बीस बरस बाद वह अपने प्रदेश को लौटा था। पाकिस्तान से लौटे हुए बाकर मिस्त्री को उसने ,हिन्दी भवन' बनवाने का काम दिया था।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, नागमणि पृ० 121
2. वही, पृ० 122
3. वही, पृ० 130

हिन्दी भवन बनकर तैयार हुआ था, अब वह उसका उद्घाटन करना चाह रहा था। उसे गांधीजी की अच्छा तस्वीर चाहिए थी। परन्तु अब कहीं गांधीजी की तस्वीर कहीं नही मिलती। फिल्म अभिनेत्रियां, तीर्थ-क्षेत्र अथवा इसी प्रकार की ढेरों तस्वीरें बाजार में उपलब्ध हैं। परन्तु गांधीजी की नहीं। भारत माता की तस्वीर तो असम्भव ही। गांधीजी की वह तस्वीर उसने फ्रेम कर ली थी। अक्षर-ज्ञान की दस पांच पोथियाँ थीं। दो एक स्लेटें, थोड़े से बताशे···बस और कुछ नहीं। हिन्दी-भवन के उद्घाटन के लिए वह किसी बड़े आदमी (?) को बुलवाना चाह रहा था। जिले के कमिश्नर साहब से मिलने जब वह गया और उनके सिपाही द्वारा अपमानित हुआ तभी उसमें एक बेहद उदासी छा गयी थी। देश के लिए अब तक किए गए कार्य का यही शायद फल था। उद्घाटन के समय सिवा बाकर मिस्त्री के वहाँ और कोई नहीं था। एक निष्ठावान गांधी प्रचारक की निष्ठा का, उसके आदर्शों का, उसकी अब तक की समर्पित जिंदगी का यह अपमान ही तो है। इन विपरीत और निराशाजनक स्थितियों के बावजूद भी वह अपने काम के प्रति बेईमान नहीं हो सकता। वह जानता है कि अब इस प्रकार के प्रचारकों की इस देश को कोई आवश्यकता नहीं हैं, फिर भी वह अपने इस कार्य को छोड़ नही सकता। क्योंकि उसकी सारी निष्ठा, और जिंदगी का सार ही यह कार्य है। अपने ही प्रदेश में हिन्दी की उपेक्षा, लोगों की उदासीनता, कमिश्नर ऑफिस में हुआ अपमान और जिंदगी का अकेलापन इन सारी बातों से विश्वनाथ बहुत परेशान हो गया है। दिन-ब-दिन वह भीतर से टूटने लगता है। अंग्रेजी के प्रति लोगों की बढ़ती हुई रुचि को देखकर उसे एक जबरदस्त धक्का बैठ जाता है। वह सोच ही नहीं पाता कि अब क्या किया जाए। इन सारी चिंताओं, देश के प्रति देखे गये स्वप्नों के नष्ट हो जाने से— विश्वनाथ के सम्मुख अब मौत के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। इस कारण वह अचेतावस्था में ही रहने लगता है। कारण न होते हुए भी अंग्रेजी बोलने लगता है। उसकी यह स्थिति इतनी भयावह हो जाती है कि एक दिन बेहोशी की स्थिति में ही 'उसे हिन्दी भवन' से बाहर निकाला जाता है। विश्वनाथ की यह अन्तिम स्थिति बड़ी करूण और त्रासद है। इस त्रासद और करूण स्थिति के लिए आज की प्रतिस्थापित व्यवस्था ही जिम्मेदार है। मूल्यहीन और आदर्शहीन देश में ध्येयवादी व्यक्तियों की त्रासदी ही होती है। इस विश्वनाथ के सामने एक भरी-पूरी जिंदगी थी। एक सुहानी भविष्य था। रिस्ते के भाई रतनलाल की शादी में वह गया था। तब रतनलाल की पत्नी-उसकी भाभी-रेल में उसके साथ घण्टों बातें करती बैठी थी। और तब सुशीला ने कहा था कि उसके विवाह की बातचीत विश्वनाथ से ही हो रही थी और वह विश्वनाथ को चाहती भी थी। "पहले हमारे बाबूजी ने आपके लिए ही बात की थी···तब हमारे घर में आपकी ही चर्चा रहती थी। छोटी बहन

कालीकट-कोचीन कहकर मुझे चिढ़ाने लगी थी।"[1] यह सुनकर विश्वनाथ क्षण भर के लिए बेचैन हो उठा था। कई तूफान उसके सीने में उठे। बहुत सम्भाल कर बोला था, "सच, मुझे बिलकुल पता नहीं। बड़ी भाभी ने यही सोच कर मना कर दिया होगा कि मेरा क्या ठिकाना, आज यहां कल वहां··· ····कोई काम-धाम तो है नहीं, कहाँ से खिलाऊँगा। किसी को मेरे भविष्य पर भरोसा नहीं है।"[2] सच, कितनी त्रासद स्थिति है यह ! एक ध्येयनिष्ट व्यक्ति के भविष्य पर उसके परिवार वालों तक का विश्वास नहीं होता। भाभी अगर विश्वनाथ को लिख देती तो शायद विश्वनाथ कुछ और सोचता ! परन्तु नहीं; समाज का प्रत्येक व्यक्ति ऐसे ध्येयवादी लोगों को उपेक्षा से ही देखते रहा है। फिर भाभी तो अनपढ़; गवार स्त्री थी। उस रेल के सफर में सुशीला ने ही नागमणि की दन्तकथा कही थी। सम्भवता सुशीला इस कथा के माध्यम से उसके व्यक्तित्व को ही स्पष्ट कर रही थी। विश्वनाथ की स्थिति भी सर्पमणि की तरह ही है। साँप अपने मणि को कही भूल जाए तो पागल हो जाता है। विश्वनाथ का ध्येय ही उसकी मणि है। वह मणि को छोड़कर चला जाए तो पागल जाएगा। सुशीला की इस भेंट के बाद कई वर्षों तक वह अपने घर नहीं गया था। सबसे वह उदास हो चुका था। सुशीला से एक बार भेंट हो चुकी थी; उसने अपना पता दिया था, परन्तु फिर वह उसे मिलने नहीं गया। आज इस बेहोशी की अवस्था में उसका अपना कोई उसके पास नहीं है। गांधीजी का वालिंटियर बनकर जब वह घर से बाहर निकला था; तभी वह अकेला था और आज जिंदगी के आखरी क्षणों में भी वह अकेला है। फर्क सिर्फ इतना है कि आरम्भ में देश के प्रति नये सपने थे; उत्साह था, लगन थी। देश-हित के लिए मर-मिटने की इच्छा थी। आज इस आखरी समय में वह बेहद उदास है; देश के भविष्य के प्रति उसका स्वप्न भग हो गया है; जबान पर अंग्रेजी शब्द हैं और भीतर सुशीला के वे शब्द !

गाँधीयुग के निष्ठावान; चरित्रनिष्ठ और त्यागी कार्यकर्ता की यह करुण कहानी है। इस प्रकार के कार्य कर्ता अब धीरे धीरे समाप्त होने लगे हैं। विश्वनाथ इन कार्यकर्ताओं की आखरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है। एक तेजस्वी युग के तेजस्वी कार्यकर्ता की यह सबसे निस्तेज गाथा है। किसी भी समाज व्यवस्था में जब ऐसे लोगों की इस प्रकार की त्रासद स्थिति होने लगती है; तब उस समाज व्यवस्था को लेकर अनेक प्रश्न निर्माण हो जाते हैं। मूल्यों के लिए जीने वाले व्यक्तियों का यह अवमूल्यन उस समाज के सांस्कृतिक संकट को ही स्पष्ट करता है। इस प्रकार इस

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ पृ. 128
2. वही, पृ० 128

कहानी में प्रस्थापित व्यवस्था को लेकर अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ कहा गया है। बयान और प्रस्तुत कहानी एक स्तर पर समाज सूत्र में बंध जाती हैं। क्योंकि' बयान कहानी में भी आज की प्रस्थापित व्यवस्था उस फोटोग्राफर का क्रूर शिकार कर लेती है। और प्रस्तुत कहानी में यही व्यवस्था विश्वनाथ की इस करुण, असहाय स्थिति के लिए जिम्मेदार साबित हो जाती है। इस प्रकार इन दोनों कहानियों में व्यक्ति की ईमानदारी और आदर्श को एक ओर तथा प्रस्थापित व्यवस्था की क्रूरता को, हृदय हीनता को, मूल्यहीन स्थिति को, अनादर्श को, दूसरी ओर रखा गया है। व्यक्ति और उसके इस परिवेश में एक सघर्ष शुरू हो जाता है। और अंततः व्यक्ति अकेला पड़ जाता है। या तो वह उस फोटो ग्राफर की तरह आत्महत्या करता है अथवा विश्वनाथ की तरह अकेला और निसहाय होकर बेहोश हो जाता है। आदर्श और श्रेष्ठ मूल्यों के लिए संघर्षरत व्यक्ति के सम्मुख इस देश में अब उपर्युक्त दो ही मार्ग बच गये हैं। इसी कारण हम कह सकते हैं कि नागमणि में प्रस्थापित व्यवस्था की क्रूरता का ही पर्दाफास किया गया है। विश्वनाथ की इस स्थिति के लिए सिवा आज की परिस्थिति के और कोई दूसरा जिम्मेदार नहीं है।

कहानी एक व्यक्ति को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है परन्तु एक व्यक्ति की यह कहानी नहीं हैं। हमारे सारे आदर्शों और ध्येयों का प्रतीक है विश्वनाथ। इसीलिए हम कह सकते हैं कि विश्वनाथ के माध्यम से एक व्यक्ति के दर्द को नहीं; मूल्यों के बिखराव को ही व्यक्त कर दिया गया है। सामाजिक परिवेश इस प्रकार के व्यक्तियों का गला कैसे घोट रहा है इसका जीवंत चित्रण यहाँ किया गया है।

इस कहानी का शीर्षक प्रतिकात्मक है। नागमणि की कहानी सुशीला द्वारा बतलाई गई है। नाग अपने मणि के अभाव में पागल ही हो जाता है। वह इसी कारण अपने मणि को सतत पास में रखता है। यह मणि ही उसे उजाला देती रहती है। मणि के अभाव में वह अंधा हो जाता है। ध्येय निष्ट व्यक्ति भी इसी प्रकार के होते हैं। ध्येय रूपी मणि को छोड़कर वे इधर-उधर जा नहीं सकते। उनकी जिंदगी से उन विशिष्ट ध्येयों को निकाल दिया जाय तो वे भी पागल हो जाते हैं; अंधे हो जाते हैं। ध्येय ही उनके लिए प्राण शक्ति का कार्य करते रहते हैं। विश्वनाथ इसी तरह का व्यक्ति है। ध्येय अथवा मूल्य न हो तो व्यक्ति अंधा और पागल हो जाता है। आधुनिक युग के मनुष्य की स्थिति मणि के अभाव में जीने वाले सर्प की तरह ही हो गयी है। ऐसे में यह मनुष्य दूसरों की मणि छिनने की अथवा भगा देने की कोशिश कर रहा है। विश्वनाथ जैसे व्यक्तियों की स्थिति इसी कारण इतनी बुरी बन गयी है। प्रचार का कार्य ही विश्वनाश की शक्ति थी। इस शक्ति को निकाल लेने के बाद उसका जीवन ही निरर्थक हो जाता है। इसी मणि के (ध्येय) लिए उसने सभी सुख ठुकरा दिये थे। इसी मणि के कारण उस

पर किसी ने भरोसा नहीं किया था । वास्तव में यह शीर्षक विश्वनाथ के संपूर्ण चरित्र को स्पष्ट करने में सफल है ।

संपूर्ण कहानी एक भयावह यथार्थ को हमारे सम्मुख रख देती है । इस यथार्थ को नकार नहीं सकते । ध्येयवादी व्यक्तियों की कैसी स्थति हो रही है यह इस देश के वर्तमान युग का खरा सत्य है । और अगर यही स्थिति है तो फिर एक बहुत बड़े 'सांस्कृतिक संकट से' से हम गुजर रहे हैं – ऐसा कहना होगा क्योंकि जिस समाज में ध्येय निष्ट और राष्ट्रीय वृत्ति के कार्य और इस प्रकार का कार्य करने वाले व्यक्ति को प्रतिष्ठा नहीं मिल रही है तो फिर इस देश के भविष्य के प्रति अनेक चिंतांए उभर कर आती हैं । इस ओर ध्यान आकृष्ट करना यही लेखक का उद्देश्य रहा है । परिवेश और व्यक्ति के इस संघर्ष में व्यक्ति कितना असहाय और अकेला पड़ गया है; इसे भी उन्होंने स्पष्ट किया है ।

(२) बयान

'बयान' कमलेश्वर की तीसरे दौर की प्रसिद्ध और चर्चित कहानी है। इस दौर में कमलेश्वर "अनुभवों के अर्थों तक जाने की कोशिश" में लगे रहे है। "अथवा यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य के साथ समान्तर चलने"[1] का यह दौर रहा है। अपने पात्रों की मूल अनुभूति तक पहुंचकर उसे व्यक्त करने का प्रयत्न यहाँ वे करते रहे हैं। इस कारण इस दौर में कमलेश्वर न दर्शक हैं; न तटस्थ। वे सहभोक्ता हैं। इसी कारण इस दौर की कहानियाँ अपनी विशिष्टता को लिए हुए है। प्रस्तुत कहानी बयान मे एक फोटोग्राफर की स्त्री का कोर्ट में दिया गया 'बयान' रखा गया है। इस बयान में न्यायाधीश और वकील के कई प्रश्नों के उत्तर समाये हुए हैं ठीक उसी प्रकार आज की प्रस्थापित व्यवस्था से सम्बधित अनेक प्रश्न भी उठाये गये हैं। इसलिए इस 'बयान' में प्रश्न भी हैं और उत्तर भी। उत्तर कम और प्रश्न अधिक।

दिल्ली में एक फोटो ग्राफर ने आत्महत्या की है। इस देश में आत्महत्या एक अपराध है। इस कारण इस आत्महत्या के बाद कानूनी कारवाई शुरू हुई है। इस व्यक्ति की पत्नी को कानून के कटघरे में लाकर खड़ा कर दिया गया है। क्योकि कानून की नजरों में वह अपने पति की आत्महत्या के लिए जिम्मेदार है। जब किसी भी प्रकार के प्रमाण मिल नहीं रहे हैं तब खींचातानी करके उस स्त्री को कानून के दाँवपेच में पकड़ने की कोशिश हो रही है। उसके पति की आत्महत्या के लिए कार्यरत असली कारणों की खोज करने के बजाय इस निरापराध स्त्री पर ही आरोप किए जा रहे हैं। असली कारण भयावह है और वह किसी एक व्यक्ति से संबंधित नहीं हैं। उसके लिए संपूर्ण परिस्थिति ही जिम्मेदार है। परन्तु कानून के अनुसार दोषी 'व्यक्ति ही होता है। इस स्त्री की व्यक्तिगत जिंदगी का संपूर्ण इतिहास बार-बार दुहराया जा रहा है। कोशिश ऐसी की जा रही है कि उसके पूर्व जीवन में कहीं न कहीं इस आत्महत्या के कारणों के बीज प्राप्त हो जाएं। इसी कारण बाईस साल पहले की बात को [विशन नामक उसके किसी पूर्व परिचित युवक के संबंध] दुहराया जा रहा है। इस फोटोग्राफर से विवाह के पूर्व यह स्त्री किसी विशन से परिचित थी। और यह विशन–पुराना–प्रेमी फिर से उसकी वैवाहिक जिंदगी में लौट आया होगा और इसलिए उसके पति ने आत्महत्या की होगी ऐसा कानून का सीधा तर्क है। परन्तु जिंदगी इतनी सीधी और सरल नुस्खों के बल

---

1. मेरी प्रिय कहानियां : भूमिका, पृ० 7.

पर तो चलती नहीं। किसी भी प्रकार से इस स्त्री को चरित्रहीन, जलील और पतित साबित करके उसके पति की आत्महत्या के लिए उसे जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। विशन से इस स्त्री को कभी कोई प्यार था नहीं। अगर था भी तो "बस उतना ही प्यार था जितना कि बाईस, चौबीस बरस पहले कोई भी लड़की किसी भी लड़के से कर सकती थी।"[1] कैशौर्य-अवस्था के इस प्यार का कोई महत्व नहीं होता। इस स्त्री का अपने पति के साथ बेइंतहा प्यार था। और पति ने भी उस पर सर्वाधिक प्यार किया था। शादी से पहले की किसी घटना का सूत्र पकड़कर इस स्त्री को जलील करने का कानून का प्रयत्न बड़ा विचित्र है। इसीलिए वह कहती है "गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुँचेंगे" ?[2] फिजूल बातों में ही मौत की बजह ढूंढी जा रही है। अगर यह स्त्री दुश्चरित्र नही है; पति के अलावा वह अपने किसी पूर्व प्रेमी से संबधित नहीं रही है तो फिर आत्म-हत्या के दूसरे कारण कौनसे हो सकते हैं ? शायद वह झगडालू स्वभाव की स्त्री रही हो यह स्थिति भी नहीं है। 'हम दोनों ही एक दूसरे को समझा लेते थे।"[3] आत्महत्या के पहले वाली रात को पति-पत्नी में कोई अनबन ? नहीं, वह भी स्थिति नहीं है। इन दोनों के पास सिवा एक दूसरे की परेशानियों के और था भी क्या ? फिर अगर पत्नी में कोई दोष नहीं था ; तो शायद पति में कोई दोष रहा हो। वह शायद मॉडिल लड़कियों के चक्कर में आया हो। पत्नी के अनुसार यह स्थिति भी संभव नहीं है। क्योंकि "उनके लिए दुनियां में सबसे सुन्दर औरत, पत्नी और लड़की जो कुछ थी मैं ही थी"[4] कैमरा और पत्नी बस यही दो चीजें उनके लिए सब कुछ थी। फिर अत्महत्या के कौनसे कारण थे ?

सरकारी पत्रिका में वह फोटोग्राफर था। प्रेस इन्फारमेशन ब्यूरो में; करीब पाँच साल। फिर करीब छःसात साल सरकारी पत्रिका में। फिर साढ़े चार साल एक विज्ञापन कम्पनी में; जब वह सरकारी नौकरी में था; तभी एक घटना हुई थी। वास्तव में यही घटना उसकी आत्महत्या के लिए कारणीभूत रही है। थार के रेगिस्तान को रोकने के लिए केन्द्र सरकार ने लाखों करोंडों की योजनाएं बनाई थी। बढ़ते हुए रेगिस्तान को रोकने के लिए पेड़ लगाये जा रहे थे। सभी ओर जंगल बनाकर रेगिस्तान को रोकने का प्रयत्न शुरू हुआ था। परन्तु यह योजना सिर्फ कागज पर थी। योजना के अनुसार काम कुछ भी नहीं हो रहा था। संविधान

1, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 67
2. वही, पृ० 67
3. वही, पृ० 67
4. वही, पृ० 68

अधिकारी तथा अन्य लोग इस योजना के रुपये अपने जेबों में भर रहे थे। सरकार और जनता समझ रही थी कि रेगिस्तान को रोका जा रहा है। सरकारी फोटोग्राफर की हैसियत से इस फोटोग्राफर ने इस तथाकथित जंगल की जो तस्वीरें लीं; उनमें जंगल कहीं न था। रेगिस्तान ही रेगिस्तान था। इस योजना की यही असली तस्वीर थी। इन सही तस्वीरों का परिणाम यह हुआ कि जनता के सामने भ्रष्टाचार की एक नयी तस्वीर आ गयी। सारे देश में हो हल्ला मचा। सरकार तथा सम्बन्धित मंत्री-महोदय की खूब बदनामी हुई। "विरोधी दल के किसी सदस्य ने उन तस्वीरों का हवाला देते हुए मुसीबत खड़ी कर दी। यह सब शायद लोक सभा में हुआ। मंत्रीजी का ध्यान तथा इनकी तस्वीरें मेल नहीं खाती थी।"[1] परिणामतः इस गलती पर (सही तस्वीरे देना-यही गलती) उसे बहुत डाँटा—फटकारा गया। और उसे उस पद से हटा देने का निर्णय किया गया। और तब से वह परेशानी की स्थिति में जीने लगा। आम माध्यम वर्ग की तरह उसके पास दूसरा कोई आर्थिक आधार नहीं था। घर की हालत खस्ता हो गयी। कहीं भी काम नहीं मिल रहा था। तभी बच्ची पैदा हो गयी और इन्हीं दिनों इस स्त्री को मजबूरन एक स्कूल में नौकरी करनी पड़ी। अब वह ज्यादातर घर पर ही रहता था। अखबारों को तस्वीरें भेजता था परन्तु इससे घर कैसे चलेगा? गर्मियों की छुट्टियों में स्कूल से वेतन मिलता नहीं था। छुट्टियों में नौकरी से हटा दिया जाता था। छुट्टियों के दिनों में घर की हालत और भी खराब हो जाती थी। सही तस्वीरों को गलत साबित किये जाने के धक्के को वह सहन नहीं कर सका था। उसका विश्वास अपने काम पर से उठ गया था। "जब आदमी का यकीन अपने काम पर से उठ जाता है तो, उसकी जो हालत हो जाती है"[2] वही उसकी हो गयी। कैमरा और तस्वीरों पर उसका सबसे बड़ा भरोसा था। और इसी कैमरे ने उसकी जिंदगी बरबाद की थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि अब जीने के लिए क्या किया जाए। इसी कारण भयावह आर्थिक परिस्थिति से, खस्ता हालत से तंग आकर उसने वह निर्णय लिया जो संभवतः एक पति नहीं ले सकता। उसने अपनी पत्नी की अधनंगी; आकर्षक; उद्दिपक उद्दिपक तस्वीरें खींची और एक सस्ते पत्रिका को बेच दिये। केवल जीने के लिए। यह परिस्थिति के साथ समझौता नहीं था; एक ईमानदार फोटो ग्राफर की मौत ही थी। इन तस्वीरों को खींचते समय वह हद से अधिक हताश, निराश और पराजित दिखाई दे रहा था। उसकी आँखों से खून टपक रहा था और आत्मा धिक्कारने लगी थी। ऐसी तस्वीरें छपकर आने के बाद उसकी पत्नी को तुरन्त

1, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 70

3. वही पृ० 74

स्कूल से निकाला गया क्योंकि "वे अधनंगी तस्वीरें स्कूल के मैनेजर तक भी पहुंची थी। उन्होंने फौरन तय किया था कि इस तरह की औरत का स्कूल में रहना एक पल के लिए भी मुमकिन नहीं हैं।"[1] स्कूल से निकाले जाने की दूसरी कोई वजह नहीं थी। न वह संपादक; न स्कूल का मैनेजर; न वह पुराना प्रेमी। इन तस्वीरों के छपकर आने के कुछ ही दिनों बाद उसने आत्महत्या कर ली।

इस स्त्री के उपर्युक्त बयान से अनेक प्रश्न उभर आते हैं। कानून के अनुसार भी अनेक प्रश्न हैं। कानून के अनुसार फोटोग्राफर की आत्महत्या के लिए उसकी पत्नी यह स्त्री ही जिम्मेदार है। क्योंकि उसके साथ सम्बन्धित वही एक व्यक्ति है। और एक पति की आत्महत्या के लिए उसकी पत्नी का चरित्र ही शायद सबसे बड़ा कारण होता है। इसी कारण कानून अनेक तरीके से इसी बात की खोज कर रही है। तथाकथित प्रेमी विशन, मैनेजर साहब या संपादक इन तीनों को कानून जरूरत के मुताबिक इस घटना के साथ जोड़ने की कोशिश में है। और जब इन तीनों को वह ठीक से जोड़ नहीं पाता तब दूसरे प्रश्न निर्माण हो जाते हैं। और इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न यह स्त्री कर रही है। आज भी कानून की निगाहों में किसी भी घटना के लिए कोई-न-कोई 'व्यक्ति' ही जिम्मेदार होता है। कानून उस परिस्थिति का विश्लेषण करना शायद पसन्द नहीं करता जो उस घटना के लिए किसी-न-किसी रूप में जिम्मेदार होता है। फोटोग्राफर की इस आत्महत्या के मूल में सम्पूर्ण प्रस्थापित व्यवस्था का विश्लेषण जरूरी हो जाता है। इस व्यवस्था की जड़ में ही ऐसे व्यक्तियों की आत्महत्या के कारण छिपे मिलेंगे। इसलिए इस व्यवस्था का; परिस्थिति का विश्लेषण जरूरी हो जाता है।

प्रजातांत्रिक भारत में ईमानदारी से जीने वाला अथवा जीने की कोशिश करने वाले पती-पत्नी की यह कथा है। यह बयान वास्तव में इधर की राजनीतिक, राजनितिक और आर्थिक परिस्थितियों पर की गई कटु परन्तु खरी टिप्पणी है। आधुनिक भारत की परिस्थितियां व्यक्तित्व के अस्तित्व को ही कैसे खत्म कर रही है; इसका खुला 'बयान' इसमें दिया गया है। इन परिस्थितियों ने विशेषतः राजनीतिक परिस्थितियों ने आम आदमी को कितना पंगु और नपुंसक बना दिया है इसका प्रमाण यह कहानी है। यहां प्रामाणिक आदमी की ईमानदारी को झूंठला दिया जा रहा है। उसकी जिन्दगी में अनेक बाधाएं उपस्थित की जा रही हैं। परिस्थिति के कुचक्र में फसे हुए ईमानदार आदमी के मजदूरी का यातना यह स्पष्ट 'बयान' है। ये परिस्थितियां दिखाई नहीं देती; इसलिए कानून इनका कुछ नहीं कर सकता। यह अदृश्य परन्तु क्रूर परिस्थितियां अपना कार्य कर रही हैं। इन परिस्थितियों से पराजित होकर आदमी जब आत्महत्या का मार्ग स्वीकार कर लेता है तब उसके परिवार

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 76

वालों का कानून परेशान करता है । जीते जी परिस्थितियों द्वारा और मृत्योपरान्त कानून द्वारा परेशान किया जाता है । बड़ी उलझन पूर्ण स्थिति है यह ! और कानून भी कैसा है—"गलत और बेकार सवालों द्वारा सही नतीजे तक पहुंचने वाला"[1] यह कानून नहीं प्रजातंत्रीय व्यवस्था की विडम्बना है । वास्तव में इस व्यक्ति की आत्म-हत्या के लिए प्रस्थापित व्यवस्था ही कारणीभूत है जो सच्ची तस्वीरों को झूठलाती है, नकारती है । सच्ची तस्वीरें देने वाले के सभी आर्थिक आधार यह क्रूर व्यवस्था तोड़ती है । ईमानदारी को बेईमानी में परिवर्तित करना चाहती है । व्यक्ति के श्रेष्ठ भीतरी मूल्यों को रौंदना चाहती है । ऐसी क्रूर व्यवस्था का शिकार हो गया था वह फोटोग्राफर ! पत्नी की स्कूल की नौकरी भी अजीब थी । छुट्टियों की तनख्वाह न देकर स्कूल शुरू होने के बाद नौकरी देने वाली और फिर छुट्टी शुरू होने के बाद नौकरी से निकाल देने वाली यह प्रस्थापित समाज व्यवस्था इस आत्महत्या के लिए कारणीभूत है । इसी कारण सभी ओर से पराजित फोटोग्राफर अपनी पत्नी की अधनंगी तस्वीरें उतारकर जीना चाहता है । अर्थात् पत्नी के सहयोग से बच्ची की अपनी और पत्नी की जिन्दगी के लिए उसे ऐसा निर्णय लेना पड़ा है । इस निर्णय की भयानकता का एहसास उसे तब होता है जब तस्वीरें छप कर आ जाती हैं । एक एक संवेदनशील कलाकार के लिए यह सौदा जान लेवा ही था । अपनी प्राण प्रिया पत्नी की ऐसी तस्वीरें सस्ती पत्रिका में देखकर वह इतना क्षुब्ध हो उठा कि आत्म हत्या के सिवा उसके सामने कोई दूसरा मार्ग ही नहीं था । इस प्रकार की तस्वीरें उतारने के लिए उसे उस विशिष्ट परिस्थितियों ने ही मजबूर किया है । क्या कानून इसका विचार कर सकेगा ?

यह आत्महत्या मनुष्य की भीतरी श्रेष्ठता के सिद्ध करती है । इस व्यक्ति में मूल्यों के प्रति श्रद्धा थी इसीलिए उसने आत्महत्या की है । राजनिरबंसिया, जगपती का और इस फोटोग्राफर की अंतिम स्थितियां समान हैं । परन्तु दोनों में काफी अन्तर भी है । जगपती अपने स्वार्थ के लिए पत्नी के शरीर का माध्यम के रूप में प्रयोग कर रहा था; पत्नी की इच्छा के विरुद्ध । जबरदस्ती से । पत्नी की जिन्दगी की तबाही के लिए वह कारणीभूत रहा परन्तु इस कहानी का फोटोग्राफर अपनी पत्नी के सहयोग से ही उसकी तस्वीरें खिचता है । जगपती खुद से नाराज होकर आत्महत्या करता है तो फोटोग्राफर की आत्महत्या उस सम्पूर्ण व्यवस्थापक के प्रति नाराजगी के कारण घटित हुई है । पत्नी की तस्वीरों के इस गलत उपयोग के लिए उसे परिस्थिति ने विवश किया है । इसलिए यहां परिस्थितियां केन्द्र में हैं । तीस वर्ष की स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के बाद इस देश में एक ऐसी भयावह स्थिति

तैयार हो गई है कि ईमानदार और संवेदनशील आदमी के सम्मुख आत्महत्या के सिवा कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है।

'कानून' व्यक्ति के खिलाफ ही निर्णय देगा। कानून के लिए व्यक्ति चाहिए। अकेला व्यक्ति। ,'फैसला··· कुछ तो होगा ही। और वह 'व्यक्ति' के खिलाफ ही हो सकता है। जी; व्यक्ति माने अकेला आदमी जैसे अकेली मैं ·····या आप····आ।"[1] वास्तव में आज की इस स्थिति में व्यक्ति 'कारण' रूप में कम ही है। सरकारी यत्रणा; सत्ताधारी, पूंजीपति तथा अन्य विविध प्रवृत्तियों के जो समूह इस देश में इधर उभर रहे हैं उनके खिलाफ निर्णय कब दिए जाएंगे ? ये विविध समूह अपनी नीतियों की सुरक्षा के लिए; अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए ईमानदार और संवेदनशील व्यक्तियों को आत्महत्या के लिए प्रेरित कर रहे हैं; उनके विरुद्ध निर्णय कब दिए जाएंगे ? वास्तव में इस प्रकार की भयावह व्यवस्था निर्माण करने वाली ये इकाइयां इस आत्महत्या के लिए जिम्मेदार हैं। ऐसी क्रूर प्रस्थापित व्यवस्था के विरुद्ध दिया गया यह सपाट बयान है। इस कहानी को पढ़ने के बाद ऐसे वर्ग के प्रति एक चिढ़ पैदा हो जाती है। सम्भवतः यही लेखक का उद्देश्य भी रहा है। किसी भी व्यक्ति अथवा पात्र के प्रति सहानुभूति न जगाते हुए कमलेश्वर बड़ी खुशी से उस क्रूर और अदृश्य व्यवस्था को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। जिसके कारण इस प्रकार के प्रतिभा सम्पन्न लोगों को आत्महत्याएं करनी पड़ती हैं। इहलिए यहाँ असली प्रहार ऐसी व्यवस्था पर है जो जीवन की प्रत्येक पवित्रता और मांगल्य को दूषित कर रही है। जो ईमानदार को मारने के लिए आगे बढ़ रही है।

मक्कारी वृत्ति और सत्य को झुठलाने की यह प्रवृत्ति कम से कम इस देश में सामान्य बन गयी है। दिल्ली से गली तक यही प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति का पर्दाफाश इस कहानी में किया गया है। इन भयावह परिस्थितियों में फंसे हुए भावुक और ईमानदार व्यक्ति का यह बयान है। एक अत्यन्त हंसते-खिलते परिवार की बर्बादी का यह बयान है। आधुनिक भारतीय जीवन संदर्भ का यह तीखा, सही और बेलाग बयान है। हमारे भ्रष्ट आर्थिक जीवन का यह बयान है।

राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ धीरे-धीरे कितनी क्रूर बन रही हैं; इसका बड़ा ही सहज चित्रण इस कहानी में हुआ है। यह आत्महत्या हमारी पूर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। आज की परिस्थिति का इतना जीवन्त, सहज और व्यंग्यात्मक चित्रण होने के बावजूद भी यह कहानी किसी विरोधी पक्ष का दस्तावेज नहीं है। कलात्मकता की यहाँ हानि हुई है। 'बयान' अपनी शैली की जीवंतता के कारण हिन्दी की एक अमर कहानी बन गयी है। इतनी प्रवाहपूर्ण, सहज

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 78

और मर्मस्पर्शी भाषा बहुत ही कम कहानियों में मिलती है । स्वयं कमलेश्वर की अन्य कहानियों में भी शैली की इतनी प्रवाहमयता और सहजता का अभाव है। इतनी सहजता शायद इसलिए भी है कि कमलेश्वर इस दौर में "यातनाओं के जगल से गुजरते मनुष्य के साथ समान्तर चलने की" कोशिश कर रहे हैं। इस कहानी में तो उन्हें इस मात्रा में अद्भुत सफलता मिली है। यातनाओं और दुःखों के मूल अर्थ तक जाने की कोशिश में वे लगे हैं। इसी कारण वे उस सम्पूर्ण व्यवस्था का अप्रत्यक्ष संकेत देने लगते हैं। परिस्थिति और व्यक्ति को एक दूसरे के सम्मुख लाकर वे खड़े कर देते हैं। अब पाठक यह निर्णय लेने में स्वतन्त्र है कि दोषी कौन है और क्यों है ? कहानी की किसी भी घटना या पात्र के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की टिप्पणी न देते हुए वे उन पात्रों के बीच से सीधे गुजरने लगते हैं। इसी कारण कहानी अधिक यथार्थ लगने लगती है।

———

(३) आसक्ति

आसक्ति एक ऐसे मजबूर भाई की कहानी है जो बहन की आर्थिक सहायता पर जी रहा है। सुजाता और विनोद दोनों भाई-बहन हैं। किसी बड़े शहर के किसी कार्यालय में सुजाता नौकरी कर रही है और दोनों भाई-बहन जीने की कोशिश कर रहे हैं। यह शहर उनके लिए अपरिचित है। इसने उनके आपसी संबंधों तक को नकारा है। पुरुष-सत्ताक समाज व्यवस्था में स्त्री के आर्थिक आधार पर जीने वाला पुरुषों की स्थिति बड़ी भयावह होती है। उनकी उपेक्षा तथा निन्दा की जाती है। उस पुरुष के व्यक्तित्व को ही नकारा जाता है। वह हंसी-मजाक का विषय बन जाता है। विनोद की स्थिति कुछ इसी प्रकार की है। एक ही कमरे में दोनों रहते हैं। (दो तीन कमरों का घर लेना उन्हें संभव ही नहीं है) किसी अपरिचित शहर में युवक युवती का एक ही कमरे में रहना चर्चा का विषय बन जाता है। लोग इस बात पर विश्वास नहीं करना चाहते कि वे दोनों भाई-बहन हैं। क्योंकि इधर 'बहन' का रिश्ता बड़ा ढीला होता गया है। इस सम्बन्ध की आड़ में कई गलत चीजें होती गयी हैं। संभवतः इसी कारण पड़ौसी उनके इस सम्बन्ध को स्वीकारने की स्थिति में नहीं है। विनोद बहन की कमाई पर जीने के लिए मानसिक रूप से तैयार नही है। पर परिस्थिति ने उसे मजबूर कर दिया है। भाई-बहन होने के नाते वे दोनों अपने भूत-वर्तमान और भविष्य को लेकर अक्सर रात गये तक बातचीत करने बैठ जाते हैं। और इस कारण पड़ोसियों की परेशानी और बढ़ जाती है। सुजाता थकी-मांदी दफ्तर से लौट आती तब विनोद उसे चाय बनाकर दे देता और फिर इधर-उधर की बात-चीत होती या कभी वे दोनों घूम आते। कई महिनों से जिन्दगी[1] का यही क्रम चलते रहा है। सुजाता के भी अपने अलग दुःख हैं। जवान और आकर्षक सुजाता को दफ्तर के पुरुष अक्सर तंग करते हैं। बदनाम भी करने की कोशिश करते हैं। घर आकर विनोद के सम्मुख वह अपने इन दुःखों को कहतती तो विनोद परेशान हो जाता। ऐसे समय वह अक्सर कहता नौकरी छोड़ दो। "तुम आज ही छोड़ दो!—कहने को वह कह गया था, पर दूसरे ही क्षण उसे खुद जैसे एक धक्का लगा हो—अगर सुजाता नौकरी छोड़ देगी तो फिर कैसे चलेगा ? वह खुद तो बेकार है ही, सुजाता भी बेकार हो गयी तो क्या होगा ?"[1] अक्सर ऐसे समय इन दोनों में छोटा मोटा झगड़ा हो जाता। कुछ घंटों उन दोनों में अनबन हो जाती। पर फिर वे एक दूसरे के साथ बातचीत करने बैठते। सुजाता जब दफ्तर की परेशानी उसके सामने रख देती तो वह एक

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ 153

उपदेशक की तरह उसे समझाता कि यह सब तो होता ही रहता है; इसमें परेशान होने की क्या जरूरत ?"[1] तब सुजाता बिफर उठती—"तुम्हें क्या परवाह; चाहे कोई मेरी इज्जत से खेले; मुझे जो भी कहे। तुम्हें अपने आराम चाहिए।"[2] सुजाता के इस प्रकार के आरोपों से वह काफी परेशान हो जाता। अपनी असहायता और मजबूरी का उसे तीव्रता से अहसास हो जाता। वह सुजाता से कहता भी कि 'मैं कहीं मजदूरी कर लूंगा आइन्दा से तुम्हारा पैसा नहीं लूंगा। मेरी वजह से तुम्हें कुछ भी नहीं सुनना पड़ेगा ?"[3] पर कुछ ही दिनों बाद उसे अपनी यह प्रतिज्ञा गलत लगने लगती। दिन भर वह नौकरी के लिए भटकता और निराश होकर घर लौट आता। लोग उसको सुनाने की इच्छा से परन्तु आपस में अक्सर यह कहा करते कि 'लड़की कमाती है और यह आदमी खाता है।' उनके भाई-बहन के रिश्तों को लेकर अभी लोगों को विश्वास नहीं था। रात को जब वह दोनों घंटों बातचीत करने बैठते तब लोग कहते—"ये कैसे भाई-बहन हैं; कुछ पता ही नहीं चलता ! अजीब रिश्ता है साहब।.....रात के दो-दो बजे तक इश्क मोहब्बत की बातें होती हैं.....तरह-तरह की आवाजें आती रहती है.....अजी कमरे में एक ही पलंग हैं। भाई-बहन हैं तो क्या हुआ, कहीं ऐसे.....।"[4] पड़ौसियों के इन तानों से वह और अधिक परेशान हो जाता है। भाई-बहन को जीने का हक भी यह समाज देने को तैयार नहीं है। केवल वे जवान है यही उनका अपराध ! सुजाता दफ्तर में परेशान और विनोद पड़ोसियों से। उनकी अनुपस्थिति में तो बदनामी की ये छायायें काफी बड़ी बन जाती थी। अब तो लोग उनके मुंह पर इस प्रकार की बातें कर रहे हैं। परन्तु दोनों भी समझ नहीं पा रहे हैं कि लोगों को कैसे समझाया जाए ? दोनों मन-ही मन सोचते कि लोगों के कहने से क्या होता है ? आखिर खून का रिस्ता तो मिट नहीं सकता। लेकिन सारी कोशिशों के बावजूद वे यह ग्लानी मिटा नहीं पा रहे थे।"[5] इसी कारण विनोद ने सुजाता को यह आग्रह करना शुरु किया कि वह अब ब्याह करलें। भाई के लिए वह कुंवारी तो रह नहीं सकती। उसका अपना भविष्य है। सुनहरे सपने हैं। है। सुजाता भी इसी चिन्ता में है। वह शादी करके इस प्रकार की निन्दा को हमेशा हमेशा के लिए समाप्त करना चाहती है। परन्तु विनोद की जिन्दगी का सवाल भी हैं। सुजाता के अनुसार शादी के बाद तो "तुम और भी मेरे पास नहीं रह पाओगे"[6]

किन्तु विनोद उसे बार-बार समझाता है कि "मेरे लिए तू अपने को कब तक बांधे रहेगी "?[1] और फिर धीरे-धीरे सब कुछ बदलता गया। सुजाता वीरेन्द्र के सम्पर्क में आई। धीरे-धीरे ये सम्बन्ध और भी गहरे होते गये। वीरेन्द्र और सुजाता के लिए विनोद अब केवल 'एक बेकार व्यक्ति' मात्र है। वे दोनों अब उसकी उपेक्षा करने लगे हैं। सुजाता अब अपनी अगली जिन्दगी को लेकर अधिक चिन्तित है। अब तक उसकी जिन्दगी के विचारों का केन्द्र भाई विनोद था। परन्तु अब वह वीरेन्द्र को लेकर ही अधिक सोच रही है। यह स्वाभाविक भी था। परन्तु 'विनोद की उपेक्षा एक दम नयी और आश्चर्यजनक बात थी। वीरेन्द्र जब भी घर पर आता तो विनोद चुपचाप घर से बाहर चला जाता। वह अब इस घर में एक फालतू चीज बन गया है। उसे यह स्थिति असह्य हो गयी है। पर कहीं काम भी तो नहीं मिल रहा है। और एक दिन वीरेन्द्र-सुजाता का विधिवत् विवाह भी हो गया। विनोद के और बुरे दिन आ गये। वीरेन्द्र के पास अपना कोई मकान नहीं था। इस कारण वह अपना सारा सामान लेकर सुजाता के यहां ही चला आया। एक ही कमरे में तीनों का रहना तो मुश्किल ही है। अब विनोद उन दोनों की सुविधानुसार अपनी जिन्दगी जीने की कोशिश करता है। उनका नहाना-धोना होने के बाद ही वह नहा सकता है। रात में अपनी चारपाई नीचे गली में सड़क पर लगाकर उस पर सो जाता है। सुजाता के विवाह के कारण एक बात अलबत्ता फायदे की हो गयी है। अब पड़ौसी ताने नहीं देते। उलटे भाई-बहन के रूप में उन्हें अब स्वीकार करते है। शादी के पूर्व इनके सम्बन्धों को नकारने वालों ने अब इनकी तारीफ शुरू कर दी है। बड़ा अजीब है यह समाज ! अपनी सुविधा और ग़रज के अनुसार वे किसी के रिश्ते को या तो स्वीकारते हैं अथवा नकारते हैं। एक ओर लोगों की गलतफहमी दूर हो गई है तो दूसरी ओर घर में रोज उसका अपमान हो रहा है। बड़ी विचित्र स्थिति है यह ! जब वे दोनों थे तब बाहर उसका अपमान होता था और घर में शांति थी। अब जब कि सुजाता का ब्याह हो गया है तब बाहर शाँति है तो भीतर अपमान। एक बेकार युवक की मनःस्थिति का यहां सचमुच ही बड़ा यथार्थ; करुण और सूक्ष्म चित्रण किया गया है। वीरेन्द्र सुजाता कभी-कभी उसे अपने साथ घूमने ले जाते हैं। तब रास्ते में अचानक उसके अकेलेपन का अहसास तीव्र हो जाता। वे दोनों अपने भविष्य के बारें में खूब बोलते रहते थे। उनके उन स्वप्नों में विनोद कहीं नहीं होता था। ऐसे समय में विनोद अक्सर एक भयंकर अलगाव को महसूस करता था। "उसे लगा था कि वह क्या बात करे ? अब तो भावना ही बदल गयी है।.....इस दुनियाँ में वह दखल नहीं दे सकता—अब दूसरे स्वप्नों की बातें हैं—ऐसे स्वप्नों की बातें जिसका

---

1. मेरी प्रिय कहानियां, पृ० 156

सौन्दर्य ही अलग है, गूंज और गहराईयां ही दूसरी है।"[1] वीरेन्द्र औपचारिकता के स्तर पर अक्सर उसकी नौकरी के बारे में बातें करता। सुजाता भी अब उसके प्रति उतनी गंभीर दिखाई नही देती जितनी वह पहले थी। "अब वह अक्सर गली में लेटे-लेटे यही सोचता है कि आखिर कह तक"[2] वह इस प्रकार की जिन्दगी जीएगा। बहन और अब बहनोई के आर्थिक आधार पर वह कितने दिन अपनी जिन्दगी चलाएगा। कहीं न कहीं उसे अपनी व्यवस्था कर लेनी चाहिए। परन्तु इतने बड़े शहर में उसे कहीं भी नौकरी नहीं मिल रही है। घर के भीतर की उपेक्षा और अपमान से वह बराबर दुःखी है। इन दोनों के जीवन में उसका यूं रहना गलत ही है। कुछ और दिन निकल गये। आकाश में सभी ओर बादल छाने लगे। वर्षा ऋतु के आगमन के संकेत मिलने लगे। गली में सोये हुए विनोद ने यह महसूस किया कि बारिश शुरू हो गयी है। लोग खाटें लेकर अपने अपने घरों में चले गये और विनोद बारिश में भीगता हुआ गली में ही खड़ा है। क्योंकि "उसने उपर जाकर तीन-चार बार दरवाजा भड़ भड़ाया, आवाजें दी, पर वे गहरी नींद में सो रहे थे। बारिश के शोर में आवाज डूब-डूब जाती थी।.....रात भर पानी बरसता रहा और वह उस अंधेरी रात में खाट पर चादर लपेटे उकडूं बैठा रहा।"[3] और सुबह पास से ही आवाज सुनाई दी—यह उसका भाई-वाई कुछ भी नहीं है—रात भर यहीं बैठा भीगता रहा।"[4] सुबह उठने के बाद सुजाता भाई की इस अवस्था को बर्दास्त नहीं कर सकी। वह प्यार और झल्लाहट में कह रही थी कि उसने दरवाजा क्यों नहीं खुलवाया। और वह उसे समझा रहा था कि उसने इसके लिए कितनी कोशिश की थी। परन्तु उसकी बात कोई मानने वाला ही नहीं था। शायद प्यार से ही सुजाता ने कहा था कि "एक प्याली चाय पी लो; नहीं तो सरदी लग जायगी।"[5] और विनोद चाय के साथ शायद आंसू भी पी रहा था।

इस प्रकार संपूर्ण कहानी में विनोद के दुखों को उसकी असहायता को, बेकारी के कारण उभरी उसकी मजबूरी को स्पष्ट किया गया। विनोद वास्तव में उन बेकार युवकों का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो मजबूरी के कारण मन मारकर दूसरों के आधार पर जीते रहते हैं। यह आधार कभी पिता का होता है, कभी भाई का तो कभी किसी और रिस्तेदार का। अपनी बेकारी के कारण ये बेकार युवक इन सबके अपमान को चुप-चाप झेलते रहते हैं। यहां विनोद तो बहन के आधार पर टिका

---

1. मेरी प्रिय कहानियां, पृ० 162
2. वही, पृ० 163
3. वही, पृ० 164
4. वही, पृ० 164
5. वही पृ० 164

हुआ है ? और भारतीय समाज व्यवस्था में यह सबसे भयंकर बात है । बहन कमाए और भाई खाये–यह शायद सबसे अपमान कारक स्थिति मानी जाती है । पितृसत्ताक समाज व्यवस्था के कारण स्त्रियों के आधार पर जीना यहां नपुंसकता का लक्षण ही माना गया है । अगर कोई व्यक्ति अपनी बहन या पत्नी के आर्थिक आधार पर जी भी रहा हो तो आसपास का समाज उस परिस्थिति पर विचार करना नहीं चाहता जिस कारण उसे ऐसे आधार को स्वीकार करना पड़ा हो । परिस्थिति और मजबूरी का विचार न करते हुए गंदे आरोप करने की प्रवृत्ति इस देश में आम है । विनोद ऐसी ही मनोवृत्ति के लोगों के बीच फँसा हुआ है । उसके सामने दो ही मार्ग हैं–इस अपमान और निन्दा को चुपचाप स्वीकार करके जीना अथवा सुजाता को छोड़कर कहीं भाग जाना । दूसरी स्थिति सम्भव नहीं है । इस दूसरी स्थिति में ही उसकी सारी मजबूरी व्याप्त है । सुजाता और विनोद ये दोनों इस दुनियां में सबसे अकेले प्राणी हैं । घर नामकी कोई जगह उसकी जिन्दगी में थी ही नहीं..... पिताजी रेल विभाग में काम करते थे । माँ बचपन में गुजर गयी थी । दोनों भाई बहन बचपन से एक ही जगह बढ़ते गये । माँ की मृत्यु के बाद पिताजी को घर में कोई रुची नहीं रही । ये दोनों शहर के किसी रेलवे क्वार्टर में रहा करते थे । और पिताजी कभी-कभार उनकी खबर लेने आ जाया करते थे । पिताजी की सारी जिंदगी रेलों में सफर करते अथवा गार्डस् रनिंग रूमों में ही कट गई । दोनों भाई-बहन एक दूसरे के लिए आधार थे । बचपन से ही ऐसी स्थिति थी । "परदेश में किसी अनजान स्टेशन में यार्ड पार करते हुए दुर्घटना में उनकी मौत हो गयी थी । बहुत दिनों बाद उनके बजाय-उनका काला बक्सा लौटकर आया था.....उस बक्से से उनकी सारी चीजें निकली थीं—लाल हरी झंडियां, सीटी, राख मिली स्याही, काले पड़े निबवाले होल्डर, टाइम टेबल इत्यादि....."[1] धरोहर के रूप में उन्हें पिताजी से इतनी ही चीजें मिली थी । "उनके जाने के बाद तो कोई ऐसी जगह नहीं रह गयी थी, जहाँ वे दोनों जा सकते । किसी छोटे-से शहर में चाचा-चाची तो थे, पर वहाँ कभी आना-जाना ही नहीं हुआ ।"[2].....इस प्रकार पिता की मृत्यु के बाद ये दोनों भाई-बहन अनाथ हो गये थे । बड़ी मुश्किल से सुजाता को इस शहर में नौकरी मिल गयी थी और इस कारण विनोद भी उसके साथ रह रहा है । सुजाता को छोड़कर आखिर कहाँ जा सकता है ? कई बार वह उसे छोड़कर जाने की सोचता है पर सुजाता के प्रति उसके मन में एक ऐसी आसक्ति है । जिस कारण वह उसे छोड़ नहीं सकता । वह जिन्दगी भर उसके साथ रह भी नहीं सकता । यह न तो सम्भव है और न व्यवहारिक ! जब तक वह अकेली थी तब तक वह उसकी सुरक्षा

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 161
2. वही, पृ० 161

की चिंता उसे थी। उस कारण उसे वह छोड़कर जा न सका। अब वह विवाहिता है, अब तो वह उसे छोड़कर जा सकता है। इधर कई महिनों की कोशिश के बाद वह यह समझ गया है कि नौकरी मिलना मुश्किल है। बगैर किसी आर्थिक शान्ति के वह जाए तो कहाँ जाएँ? फिर सुजाता के प्रति जो आसक्ति है वह भी उसे वहाँ से जाने नहीं देती। संभवतः यह आसिक्त सुजाता की अपेक्षा "जिन्दगी के प्रति" अधिक है। जिन्दगी और जोंक कहानी मे अमरकांत ने यही तो बतलाया है। जिन्दगी का यह आकर्षण अजीबसा है। अनेक अपमानों को सहते हुए भी आदमी जिन्दगी जीते ही रहता है। किसी भी प्रकार के मूल्यों का आदर्श सामने न रखते हुए जिन्दगी जीना यही एक मात्र लक्ष्य जब बन जाता है तब स्थिति भयावह हो जाती है। जिन्दगी के प्रति आसक्ति अथवा बहन के प्रति आसक्ति यही दो कारण विनोद के इस व्यवहार को लेकर दिये जा सकते हैं।

बढ़ती हुई बेकारी के कारण युवकों की स्थिति कितनी भयावह हो रही है, इसे यह कहानी स्पष्ट करती है। यह बेकारी कितने गलत मूल्यों से समझौता करने को मजबूर कराती है इसका प्रमाण है यह कहानी। संपूर्ण कहानी मे विनोद सबके द्वारा नाकारा गया है। पहले पड़ोसियों द्वारा, बाद में बहनोई द्वारा फिर बहन द्वारा और अंत में सबके द्वारा। फिर भी वह जी रहा है। शायद जिन्दगी की आसक्ति के कारण।

एक दूसरे स्तर पर जाकर हम यह भी कह सकते हैं कि विनोद में संघर्ष की शक्ति नहीं है। नौकरी के लिए उसने कोशिश की। अब अगर नौकरी मिल ही नहीं सकती तो उसकी प्रतीक्षा करते बैठना भी गलत है। उस बीच, जीने के लिए अथवा स्वावलम्बी बचने के लिए किसी-न-किसी प्रकार के प्रयत्न तो करने ही चाहिए। वह कहीं-न-कहीं व्यापार कर सकता था; छोटे-मोटे काम कर सकता था; बच्चों को पढ़ाने का काम कर सकता था। महिने में 30-40 रुपये तो कमा सकता था। स्पष्ट है कि वह आराम तलब जिन्दगी जीने का आदि हो चुका है। बहन और बहनोई के इस प्रकार के अपमान को सहने के बजाय वह कहीं भी चला जा सकता था। एक व्यक्ति और वह भी पुरुष कहीं-न-कहीं अपने लिए कमा सकता है। परन्तु विनोद यह कर नहीं पा रहा है। इसीलिए उसके प्रति जितनी सहानुभूति पैदा हो जाती है; उतनी ही चिढ़ भी। अपनी निष्क्रियता को छिपाने के लिए आज के युवक भी इसी प्रकार के ढेरों तर्क देते हैं। इस प्रकार के तर्क देकर वे अपने मन को धोखा दे सकते हैं; पर दूसरों का समाधान नहीं कर सकते।

है। उसकी नौकरी के लिए वह स्वयं प्रयत्न भी करती है। जिस दफ्तर में वह काम करती है; वहाँ के पुरुषों की गदी निगाहों से वह आतकित है। उसकी मजबूरी का गलत फायदा उठाने की शायद लोग कोशिश भी करते हैं इसी कारण वह विनोद के सम्मुख अपने इस दुःख को व्यक्त करती है। इस प्रकार के दुःख व्यक्त करने में उसे संकोच भी होता होगा क्योंकि भावुक विनोद इन बातों से चिढ़कर अगर कहीं चला जाए तो ? विवाह के पूर्व उसको विनोद की आवश्यकता थी। सुरक्षा के लिए अपनत्व के लिए। विनोद के कारण वह खुद को अकेली नही समझती। अगर विनोद चला जाए तोलोग उसकी असहायता का, अकेलेपन का जरूर गलत फायदा उठाएंगे उसे वह जानती है। इसी कारण विनोद को वह कहीं जाने नहीं देती। वह अपने भविष्य के सपने देखती रही होगी। उसके सौभाग्य से उसे वीरेन्द्र मिल जाता है। और वीरेन्द्र की निकटता के बाद वह भाई की उपेक्षा करने लगती है। यह स्वाभाविक भी है। ीएक स्त्र अपने भाई से जिन्दगी भर जुड़ कर रह नहीं सकती है। आखिर उसे अपनी जिन्दगी के बारे में भी सोचना होगा। वीरेन्द्र के साथ विवाह होने के बाद वह विनोद की जान-बूझकर उपेक्षा नहीं करती, परन्तु वीरेन्द्र का ध्यान अधिक रखने लगती है; जो कि स्वाभाविक भी है। इस कारण विनोद अकेला पड़ जाता है। विनोद के प्रति उसके मन में अब भी वही आसक्ति है। पर यह भी सही कि विनोद अब उसकी जिन्दगी में बाधा बन गया है। एक स्त्री के लिए आयु के प्रत्येक मोड़ पर पुरुष के आधार की जरूरत होती है। उस मोड़ से गुजर जाने के बाद उस पुरुष के प्रति केवल सहानुभूति रह जाती है; प्यार रह जाता है जिम्मेदारी नहीं। फिर वह पुरुष भाई हो अथवा पिता अथवा पति। विवाह के बाद जिम्मेदारी के केन्द्र बदल जाते हैं; प्यार के नहीं। इसी कारण वह विनोद के साथ अनजाने में उपेक्षा का व्यवहार करने लगती है। इसमें दोष सुजाता का नहीं; अपितु उस भाई का है जो आज भी उसके आधार पर जीना चाहता है।

———

(४) उस रात वह मुझे ब्रीच कैण्डी पर मिली थी .....

तीसरे दौर में लिखी गयी यह कहानी भाषा, शिल्प और कथ्य इन तीनों दृष्टियों से एकदम नवीन, मौलिक और विशिष्ट है। यहां पर आकर लेखक कथ्य की अपेक्षा वातावरण को और वातावरण से निर्मित मनः स्थिति को महत्व देने लगता है। इसी कारण यह कहानी अकहानी के निकट चली जाती है। परन्तु यह प्रयोग के लिए किया गया प्रयोग नहीं है। अनुभूति की विशिष्टता के कारण भाषा, शिल्प और कथ्य में अपने आप परिवर्तन होते गया है। इसी कारण अनुभूति के स्तर पर इस कहानी के साथ जुड़ जाना कठिन हो जाता है।

किसी भी नये शहर को कमलेश्वर कहानी के माध्यम से समझ लेने की कोशिश करते हैं। इलाहाबाद से दिल्ली चले जाने के बाद दिल्ली शहर को 'जॉर्ज पंचम की नाक' और 'खोई हुई दिशाएँ के माध्यम से समझ लेने की उन्होंने कोशिश की है। परिणाम-स्वरूप इन दोनों कहानियों में राजधानी की विशेषताएँ अपने-आप उभर कर आई हैं। ठीक इसी प्रकार बम्बई आने के बाद बम्बई को समझ लेने के उद्देश्य से प्रस्तुत कहानी लिखी गयी है। सन् 1966 में वे बम्बई आए। 'बयान', 'लड़ाई', 'रातें', 'अपना एकान्त' तथा प्रस्तुत कहानी इसी समय लिखी गयी हैं। बम्बई आने के बाद उन्होंने और कई कहानियां लिखी हैं। परन्तु प्रस्तुत कहानी का महत्व इन सब में अलग है। क्योंकि बम्बई की विशिष्टता की खोज इस कहानी में की गई है।[1]

संपूर्ण कहानी में बंबई के ब्रीच कैंडी का चित्रण किया गया है। रात के सन्नाटे में समुद्र किनारे बैठकर आसपास के सम्पूर्ण वातावरण को घण्टों निहारते बैठने में एक अलग आनन्द का एहसास होता है। समुद्र के किनारे बैठकर पास ही खड़ी विशाल बिल्डिगें, उनकी खिडकियाँ, लहरें, सन्नाटे को चीरकर जानेवाली कारें, दूर चमकने वाले निऑन लाईट्स कई मंजिले बिल्डिगों की खिड़कियों से झाँकती प्रकाश की लकीरें—ये सारे एक अजीब वातावरण का निर्माण करती हैं। ऐसे ही वातावरण में कहानी का निवेदक बैठा है। हर जगह उसकी दृष्टि जाती है। परंतु कहीं पर भी वह टिकती नहीं है। बारिश के दिन हैं। बारिश शुरू हो चुकी है। सब कुछ झीना-झीना नजर आ रहा है। उस वक्त आधी रात थी। मकान लंगर डाले हुए विशाल जहाज की तरह लग रहे थे। इन मकानों से छनकर रोशनी आ

---

1. विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर नागपुर में लेखक के साथ हुई प्रत्यक्ष बातचीत के आधार पर।

रही थी। मानो दूधिया धूल ही हो। कहानी के पूर्वार्द्ध में अलग-अलग शब्दों की कई आवृत्तियां, की गई हैं जैसे खिड़कियां, खिड़कियां; खिड़कियां; रोशनी के चौकोर टुकड़े; रोशनी के चौकोर टुकड़े चौकोर टुकड़े, दूधिया धूल,दूधिया धूल, दूधिया धूल; लहरें, लहरें; लहरें, बंद दरवाजे, बद दरवाजे, बद दरवाजे; बन्द दरावजे; बारजे, बारजे; इमारतें, इमारतें, इमारतें! आखिर इस प्रकार की पुनरावृत्ति की आवश्यकता क्यों थी? लेखक के मतानुसार यह एक विशेश मानसिक स्थिति की सूचक हैं। और वह विशेष मानसिक स्थिति इस प्रकार की है— "कई मंजिले मकानों की ओर देखते हुए हम यह तय नहीं कर पाते कि वह मकान निश्चित कितनी मंजिलों का है। हर मंजिल पर लगी खिड़कियों, बारजे अथवा दरवाजों को आधार मानकर हम मजिलों की गिनती करना चाहते हैं। शुरू भी कर देते हैं। बीच में अचानक हमें अहसास होता है कि हमारे हिसाब में कहीं कोई गड़बड़ी है; फिर से गिनती शुरू कर देते है; फिर कहीं आगे गड़वड़ी हो जाती है; (अगर हम खिड़कियों को प्रमाण मानकर गिनती कर रहे हो तो अंधेरे के कारण एखाद खिड़की छूट ही जाती है) हिसाब फिर शुरू हो जाता है। झांकते प्रकाश को प्रमाणित मानें तो अचानक किसी मकान की खिड़की से झांकता प्रकाश गायब हो जाता है, परिणामतः हिसाब फिर गड़बड़ा जाता है—ऐसे समय में हमारी मनःस्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है और इसी कारण हम गिनती का चक्कर छोड़कर इतना भर कह देते हैं—खिड़कियां, खिड़कियां, खिड़किया; अथवा—दरवाजें, दरवाजें, दरवाजें; [लहरों के गिनती के समय भी एसी ही स्थिति हो जाती है।] आधी रात को समन्दर के किनारे बैठा हुआ निवेदक गिनती की इसी गड़बड़ी की मन.स्थिति से गुजर रहा है। इस स्थिति को व्यक्त करने के लिए यही एक मात्र शैली हो सकती थी। लेखक के सामने दो ही पर्याय थे; या तो वह सारी स्थिति को विस्तार से स्पष्ट करता (तब कहानी के कलात्मकता की हत्या हो जाती और वह कहानी न होकर वर्णन मात्र) रह जाता) अथवा इस प्रकार शब्दों की पुनरावृत्ति करता। इस कारण शब्दों की यह पुनरावृत्ति उस विशिष्ट मनःस्थिति का अनुसरण ही कर रही है।

ब्रीच कैंडी की खाली पड़ी बेंचें आईसक्रीम की तरह चमक रही थी। सम्पूर्ण वातावरण में एक अजीव सी खामोशी थी। इसी समय एक टैक्सी अचानक समुद्र के किनारे आकर रुक गयी। उसके रुकने की पद्धति से स्पष्ट था कि वह इस स्थान पर अचानक रोकी गयी है। गंतव्य यह स्थान नहीं था। जैसे भीतर के लोगों ने यहाँ रुकने का निर्णय अचानक लिया हो। टैक्सी के रुकते ही "कुछ क्षणों में दरवाजा खुला और एक आदमी बरसाती डाले हुए उसमें से निकला, फिर एक औरत उतरी"। जहाँ वे रुके थे; वहाँ न कोई मकान था, न होटल। समुद्र के किनारे एकदम अकेले में इतनी रात के समय इन दोनों का यहाँ रुकना संशयास्पद ही था। पर वे दोनों

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ, 167

अपने मे ही डूबे हुए थे। शायद "उन दोनों को कहीं और जाना था, पर वे यहाँ उतर गये।"[1] आसपास का वातावरण पहले की ही तरह खामोशी में डूबा हुआ था। लहरें उसी तरह चट्टानों से टकरा रहीं थीं। आदमी और औरत किनारे पड़े हुए एक बैंच के निकट रुक गये। समुद्र को देखते रहे। पहले आदमी बैठा और थोड़ी देर बाद वह औरत। वे चुपचाप बैठे हुए थे। अपने में ही खोये हुए। रात और खामोश हो गयी थी। इनसे थोड़ी ही—दूरी पर तीन नावें किनारे के निकट आ गयी। उनमे कुल छः आदमी थे; उनके पास टोर्चें थी और वे निरंतर जल रही थीं। बारिश अब भी हो रही थी। वे दोनों बेंच पर बैठे भीग रहे थे। उनका ध्यान कहीं भी जा नहीं रहा था। धीरे-धीरे वे दोनों मूर्तियों की तरह स्तब्ध हो गये। नावें किनारे को आ लगी थी। एक नाव में से कुछ उतारा जा रहा था। वह एक औरत की लाश थी। नाव में से उतरे हुए लोग खामोश होकर पुतले की तरह काम कर रहे थे: बेंच पर बैठे ये दोनों इस समय भी स्तब्ध और शांत थे।

आधी रात के समय समुद्र के किनारे का यह चित्र लेखक ने हुबहू दिया है। किसी जासूसी फिल्म अथवा उपन्यास की तरह यह सब कुछ लगता है। परन्तु लेखक न जासूसी कहानी कहने जा रहा है न कोई फिल्म कथा। वह तो इन दोनों की पुरुष और स्त्री की तटस्थता से आश्चर्य चकित हो रहा है। ये दोनों अपनी दुनिया में इस तरह खो गये हैं कि उन्हें किसी भी बात का एहसास नहीं हो रहा है। शायद वे अत्याधिक आनंदी है अथवा अत्याधिक दुःखी और फिर आश्चर्य की बात है कि दोनों ही एक ही मनःस्थिति में जी रहे हैं। यह साधारणीकरण की अवस्था है अथवा अद्वैत की अथवा संवेदनशून्यता की ? उन्हें न बारिश का एहसास है, न भीगने का, न उस नाव का जो उनके करीब ही लगी है। आदमी की किसी भी तन्मयावस्था को तोड़ देने की शक्ति 'मौत' में होती है। 'मौत' जैसी घटना का नाम सुनते ही आदमी उत्सुक होकर अपने मौन को तोड़ देता है। यहां इन दोनों के सम्मुख एक लाश को को उतारा जा रहा है: फिर भी वे दानों तटस्थ हैं। न उन्हें किसी प्रकार का भय लग रहा है न वे उत्सुक हैं और न परेशान। निवेदक उनकी इस गजब की तटस्थता से आश्चर्य चकित हो गया है। संभवत. इसी आश्चर्य के कारण उसने इस कहानी को शीर्षक दिया है—"उस रात वह मुझे ब्रीच कैंडी पर मिली थी और ताज्जुब की बात कि दूसरी सुबह सूरज पश्चिम में निकला था"। इस शीर्षक की सार्थकता इन दोनों की मनःस्थिति में ही हम पा सकते है। कोई आश्चर्य जनक बात जब हमें मालूम हो जाती है अथवा दिखाई देती है तब हम इसी प्रकार के मुहावरों का (सूरज का पश्चिम में निकलना) प्रयोग करते हैं। लेखक उस स्त्री की संवेदनशून्यता से परेशान है। स्त्रियां स्वभाव से ही चौकस और कुछ हद

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ० 167

तक डरपोक होती हैं। यह स्त्री इतनी रात के समय निर्भयता के साथ अत्यन्त तटस्थ होकर उस पुरुष के साथ एक विशेष मन.स्थिति में जी रही है —यह लेखक के लिए एक आश्चर्य की ही बात है। लाश और वह भी एक औरत की–देखकर यह स्त्री न विचलित हुयी है न उत्सुक।

ये दोनों चाहे जितने तटस्थ और निर्लिप्त रहें तो भी निवेदक को यह संभव नहीं है। इसी कारण वह उनके निकट जाकर उनके संबंध में जानना चाहता है। उनकी असंभवनीय तटस्थता से वह प्रभावित है। उसके मन में उन दोनों को लेकर अनेक प्रश्न निर्माण हो गये हैं, इसीलिए वह उनके निकट जाकर उन्हें पूछता है," सुनो तुम्हारे दु.ख कहां हैं ?"[1] 'क्यों, हमारे पास है ! वह औरत बोली थी। और भी कई सवाल उसने किये। जैसे वह कहां रहते हैं ? यहां से कैसे वापस जाएंगे। घर कहां है ? वह औरत उसकी कौन लगती है ? इत्यादि। वह पुरुष इन प्रश्नों के उत्तर देता रहा। परन्तु भीतर से वह क्षण भर के लिए परेशान हो उठा, निवेदक को पुलिस का आदमी समझकर ! परन्तु उस स्त्री पर इन प्रश्नों का कोई असर नहीं हुआ। न वह घबराई। इसी कारण वह पूछ बैठी; क्यों, यहां बैठना मना है ? और निवेदक उसके इस प्रश्न से अनुत्तरित्त हुआ था, और वहां से चुपचाप खिसक गया था। वह लाश अब किनारे-से दूर सड़क पर लाई गयी थी। पुलिस की बैन आयी थी और लाश लेकर चली गयी थी। वे अभी भी वहीं बैठे थे। तो देर बाद वे दोनों उठे। 'वे साथ-साथ चले जा रहे थे। उसी तरह भीगते हुए।.....घुलते हुए.....धीरे-धीरे वे पिघलते से गये थे, फिर ओझल हो गये।"[1] निवेदक उस बेंच की ओर फिर गया जहां वे दोनों बैठे थे। बेंच पर एक भीगा हुआ फूल पड़ा था। शायद उसके जूड़े का था।

सम्पूर्ण कहानी में इम दोनों की तटस्थता का उनकी निर्विकारता का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। लेखक के लिए इस प्रकार की तटस्थता एक दम नई चीज चीज थी। बंबई शहर की यह सबसे बड़ी विशेषता है। वास्तव में यह बम्बई की नहीं; प्रत्येक शहर के मानसिकता की वास्तविक स्थिति है। इन शहरों में व्यक्ति अपने में ही डूबे हुए हैं। उन्हें कहीं और देखने की न फुर्सत है, न इच्छा। लाखों की भीड़ में भी यह व्यक्ति अकेला है। इस भीड़ में भी वह अपने में डूबकर जी सकता है। असम्भवत: इन दोनों को या तो इतनी खुशी हुई है कि वे अन्तरमुख हो गये हैं और कहीं पर भी देखना पसन्द नही करते हैं। अथवा अपने परिवेश के प्रति जिज्ञासू नहीं हैं। लाश से भी वे विचलित नहीं हुए हैं। 'खोई हुई दिशाओं में चंदर के माध्यम से शहर की एक विशिष्टता की —अकेलेपन के एहसास की अभिव्यक्ति लेखक

---

1 मेरी प्रिय कहानियाँ पृ० 171

2. वही, पृ० 171

ने की थी। इस कहानी में शहर की एक दूसरी विशिष्टता का तटस्थता का, अपने में ही डूबकर जीने की वृत्ति का उद्‌घाटन किया गया है। यह तटस्थता हृदय-हीनता के स्तर तक चली जाती है। कस्बे के लेखक को इस प्रकार की तटस्थता असम्भव सी लगती है। इसी कारण उसे आश्चर्य का जबरदस्त धक्का बैठा है। अपने इस आश्चर्य को उसने इस प्रकार का विशेष शीर्षक देकर प्रकट किया है। वास्तव में यह शीर्षक इस घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप ही दिया गया है।

सम्पूर्ण कहानी में वातावरण को अत्याधिक महत्व है। इस वातावरण के चित्रण के नींव पर ही कहानी खडी है। वातावरण की विशिष्टता के कारण ही पात्रों की विशिष्ट मन:स्थिति उभर कर आई है। यह चित्रण अत्याधिक सूक्ष्म; कलात्मक और स्वाभाविक है।

कमलेश्वर की कहानियां: एक कथा-यात्रा

"मैंने कहा है और फिर दुहराता हूँ कि कमलेश्वर एक ऐसा लेखक है जिसके यहाँ हिन्दी कहानी की पूरी यात्रा उसके लगभग हर मोड़ की प्रतिनिधि कहानी मिल सकती है और परम्परा से अंतर ही नहीं, उससे विकास की दृष्टि से भी ये कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं इस लिहाज से, हिन्दी कहानी की परंपरा को उन्होंने आत्मसात किया और उसे अलग-अलग भोगा है। उसकी सारी कहानियाँ कथ्य और शिल्प के स्तर पर ही नहीं, भाव बोध और चेतना के स्तर पर भी एक क्रमिक और अनुवती संक्रमण की द्योतक हैं।"

—डा० धनंजय वर्मा

कहानी मुझे औरों से जोड़ती है, या यह कहूं कि, बेहतों से संपृक्त होने की सांस्कृतिक स्थिति ही कहानी की शुरूआत है।—

—कमलेश्वर

कमलेश्वर की कहानियाँ: एक कथा यात्रा

कमलेश्वर की अब तक प्रकाशित सभी कहानियों के संग्रह प्रकाशित नहीं हुए हैं। प्रकाशित संग्रहों में "खोई हुई दिशाएँ" (ज्ञानपीठ प्रकाशन 1963) ; मेरी प्रिय कहानियाँ (राजपाल एण्ड सन्स, 1972); कमलेश्वर: श्रेष्ठ कहानियाँ (नये कहानीकार माला: राजपाल एण्ड सन्स 1966। राजा निरबंसिया (ज्ञानपीठ प्रकाशन 1966) उल्लेखनीय हैं। इन चारों संग्रहों में कुल 47 कहानियाँ (पुनरावृत्ति को छोड़कर) हैं। अपनी कहानियों के संबध में 'मेरी प्रिय कहानियाँ' इस संग्रह की भूमिका में ही कमलेश्वर ने कुछ लिखा है। 'खोई हुई दिशाओं' की भूमिका में नयी कहानी की चर्चा उन्होंने की है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी समय-समय पर उन्होंने अपनी कहानियों के बारे में लिखा है। परन्तु यहाँ 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका को ही प्रमाण माना गया है। इस भूमिका में कमलेश्वर ने अपने कहानी-लेखन के तीन दौर बतलाये हैं। (अपनी कहानियों को तटस्थ होकर देखने का प्रयत्न इस भूमिका में हुआ है।) केवल तीन पृष्ठों की यह भूमिका उनकी कहानी-यात्रा को समझ लेने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन तीन मोड़ों को प्रमाणिक मानकर प्रत्येक मोड़ की चार प्रतिनिधिक कहानियों का मूल्यांकन पिछले पृष्ठों में किया गया है। इन 12 कहानियों के अलावा भी कुछ और प्रतिनिधिक कहानियाँ हो सकती हैं; परन्तु मुझे यह 12 कहानियाँ अधिक शसक्त और प्रत्येक दौर की विशेषताओं को रेखांकित करने वाली महसूस हुई हैं। इस कारण इस प्रकार का चुनाव किया गया है। इन 12 के समग्र विश्लेषण मे कमलेश्वर की अन्य सभी कहानियों का विश्लेषण संभव है। इस कारण भी बाकी कहानियों को लिया नहीं गया है। कमलेश्वर के अनुसार "कहानियों का पहला दौर सन् 952 शुरू हो जाता है और 1958 में समाप्त।" इस दौर में युवक कमलेश्वर पुरानी कहानी और नयी जिन्दगी में सगति बिठलाने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु जिन्दगी के और निकट आने के बाद उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि पुरानी कहानी जिन्दगी के संदर्भ में बेइमानी और आदर्शवादी है। "कहानी के सौन्दर्यवादी, साहित्य शास्त्रीय इकाई होने में मेरा विश्वास नहीं समाता।"[1] कहानी के एतराफ जो विभिन्न झालर लगवाये गये थे उसका विरोध इस समय हो रहा था। कहानी को जिन्दगी के निकट लाने का प्रयत्न हो रहा था। इस समय के नये लेखकों के लिए कहानी निरन्तर परिवर्तित होते रहने वाली एक निर्णय केन्द्रित प्रक्रिया मात्र रह गयी थी। और यह निर्णय ? ये निर्णय मात्र वैयक्तिक नहीं

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका: कमलेश्वर, पृ० 1

हैं। वैयक्तिक है असहमति की जलती आग"[1] स्वतन्त्रता के बाद इस देश के सभी क्षेत्रों में जो परिवर्तन हुए उसका फायदा आम आदमी को सभी स्तर पर नहीं मिला। "युद्ध; स्वतन्त्रता और विभाजन ने; मूल्यों के इस परिवर्तन को एक अभूतपूर्व तेजी दी। सारे मान्य, स्वीकृत सम्बन्धों की जो गरिमा उन दिनों टूटी वह निरन्तर टूटती ही रही है.....अपने और अपने समय के यथार्थ को इस रूप में देखने, चित्रित करने की प्राय: कोई क्रमबद्ध परम्परा पुराने लेखकों के सामने नहीं थी"[2]..... इसी कारण नये लेखकों को इस यथार्थ से जूझना पड़ा। इसके साथ सघर्ष करते हुए उसकी अभिव्यक्ति के खतरे को स्वीकार करना पड़ा। यह इस युग का तकाजा था। आदर्श, रुमानी और सयोग से परिपूर्ण कहानियाँ लिखना अपने व्यक्तित्व को ही झुठलाना था। यह यथार्थ दृष्टि इनके पास अपने आप अचानक नहीं आयी। "यथार्थ के प्रति यह दृष्टि नये कथाकार के पास इलहाम की तरह नहीं उतरी-उसे इसके लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है निहायत ही उबड़-खाबड़ धरती से गुजरना पड़ा है और न जाने कितने बाहरी-भीतरी प्रभावों, रूढ़ियों, परम्पराओं के संस्कारों से जूझना पड़ा है"[3]

स्पष्ट है कि इस पहले दौर में कमलेश्वर, व्यक्ति, उसकी परिस्थिति और मूल्यगत सक्रमण को ही रेखाँकित करने का प्रयत्न कर रहे थे। अपनी इस दौर की मनस्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—"इस समय अपने कथास्रोतों की पहचान और परिवेश में जीने का प्रयत्न"[4] चल रहा था। एक नये कथाकार में यह प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। जब तक वह अपने कथास्रोतों को नहीं जान पाएगा; उन कथास्रोतों के बीच जीने की कोशिश नहीं करेगा; तब तक वह उस यातना की गहराई को छू भी नहीं सकेगा। अपने परिवेश के प्रति सजग होकर उसकी सगति-विसंगति, आदर्श-अनादर्श, मूल्यवत्ता और मूल्यहीनता को समझ पाने की कोशिश वे कर रहे थे। आस पास का सारा परिवेश ही बड़ी तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा था; और आज भी हो रहा है। जिन्दगी के किसी भी क्षेत्र में ऐसा कुछ भी तो नहीं मिल रहा है जो स्थिर है, कायम है, सर्वश्रेष्ठ है। बौद्धिकता से पीड़ित इस युग में सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में नित-नये परिवर्तन हो रहे हैं, और इन परिवर्तनों के अनुकूल व्यक्ति को अपने निर्णय बदलने पड़ रहे हैं। ऐसे समय कहानी अगर किन्हीं स्थिर मूल्यों का ही आग्रह कर रही हो तो वह निश्चित ही बेइमानी लगने लगती है। इसी

---

1. मेरी प्रिय कहानियां; भूमिका कमलेश्वर पृ० 5
2. एक दुनिया समानान्तर : राजेन्द्र यादव पृ० 27
3. एक दुनिया समानान्तर: राजेन्द्र यादव पृ० 28
4. मेरी प्रिय कहानियां; कमलेश्वर पृ० 7

कारण कमलेश्वर के लिए "कहानी निरन्तर परिवर्तित होते रहने वाली एक निर्णय केन्द्रित प्रक्रिया है।" अपने परिवेश को समग्रता से ग्रहण करने के बाद ही कमलेश्वर ऐसा अनुभव करते हैं कि मनुष्य के लिए राजनीति चाहिए; राजनीति के लिए मनुष्य नहीं। वर्तमान के यथार्थ को स्वीकार करके ही लेखकों को लिखना पड़ेगा। "आदर्शों तक पहुँचने की राह में मनुष्य को कितना छला गया है; और कितना छला जाता है, इसे नजर अन्दाज कैसे किया जा सकता है ?"[1] इस मनुष्य के छल को; निरन्तर परिवर्तित हाने वाली उसकी निर्णय प्रक्रिया को टूटते जीवन मूल्यों को, परिवेश की भयावहता को कमलेश्वर इस दौर में व्यक्त करना चाहते हैं। एक लेखक की तरह इस दौर में वे अपने अनुभव के क्षेत्र को पहचान ने की कोशिश कर रहे हैं। इस प्रकार इस दौर की वैचारिक पृष्ठ भूमि के उपर्युक्त विवेचन से तीन निष्कर्ष निकलते हैं—

(अ) आदर्शों तक पहुँचने की राह में मनुष्य कितना छला जा रहा है, इसको शब्द बद्ध करना।

(आ) कहानी निरन्तर परिवर्तित होते रहने वाली एक निर्णय केन्द्रित प्रक्रिया मात्र है। और इस परिवर्तित स्थिति (अथवा निर्णय) को शब्द बद्ध करना ही कहानी लिखना है।

(इ) अपने कथा स्रोतों को पहचानने और परिवेश में जीने का ईमानदार प्रयत्न करना-अर्थात् अनुभव के क्षेत्र की प्रमाणिक खोज करना।

प्रस्तुत दौर में लिखी गयी चार कहानियाँ यहाँ ली गयी हैं। राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, गर्मियों के दिन और नीली झील। सन् 1952-58 के बीच ये कहानियाँ लिखी गयी हैं। इन छः वर्षों के बीच कमलेश्वर कहानी की ओर किस दृष्टिकोण से देख रहे थे; इसका विवेचन उपर किया गया है। इस काल में, इस देश की मानसिकता में जो सूक्ष्म परिवर्तन हो रहे थे; उसकी अभिव्यक्ति का प्रयत्न इस समय के लेखक कर रहे थे। जिन्दगी से आए हुए पात्र कहानियों में दिखाई देने लगे और इन पात्रों के निर्णयों को शब्दबद्ध करने लगे। "राजा निरबसिया और देवा की मां उसी आधारभूत निर्णय की कहानियाँ हैं.....या यूँ कहिए जिन्दगी से आये हुए पात्रों के निर्णयों को मैंने रेखांकित किया है।"[2] "जीवन और उसके परम्परागत मूल्यों के प्रति इन पात्रों की असहमति ही मेरी असहमति है।"[3] राजा निरबसिया का जगपती, 'कस्बे का आदमी' का छोटे महाराज, 'गर्मियों के

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ; कमलेश्वर, पृ० 6
2. वही, पृ० 6
3. वही, पृ० 6

दिन' का वैद्य और 'नीली झील' का महेश पांडे ये इस प्रकार सीधे जिन्दगी से आये हुए पात्र हैं। इन पात्रों ने परम्परागत मूल्यों के प्रति (अपवाद: कस्बे का आदमी) असहमति व्यक्त की है। कभी यह असहमति नैतिक मानदण्डों को लेकर (राजा निरबंसिया); कभी बदलती हुई परिस्थिति को और स्पर्धा को लेकर (गर्मियों के दिन), कभी किसी श्रद्धा को लेकर (नीली झील) व्यक्त हुई हैं। इन कहानियों में बदलते हुए निर्णयों को ही रेखांकित किया गया है। अपने यथार्थ के प्रति अत्यधिक सजग होकर लेखक यहाँ पर परिस्थिति और उसकी भीतरी विसंगति की खोज कर रहा है। इस खोज के फलस्वरूप ही ये कहानियाँ लिखी गयी हैं। इस दौर में लिखी गयी कहानी 'नीली झील' को लेकर अलबत्ता कई प्रश्न उठाये गये हैं। इस दौर की प्रवृत्ति और विचारधारा में यह कहानी नहीं बैठती ऐसा कुछ आलोचकों का कहना है। इस प्रश्न पर प्रस्तुत कहानी के विवेचन के आरम्भ में विचार किया गया है; इसलिए पुनरावृत्ति के भय से उसे फिर दोहराया नहीं जाएगा।

इस युग की कहानियाँ कथ्य की धुरी पर टिकी हुई हैं। इस कारण कथात्मकता का अंश अधिक है। राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी और नीली झील इसके प्रमाण हैं। पृष्ठ संख्या की दृष्टि से भी ये कहानियाँ अपेक्षाकृत लम्बी हैं। इन कहानियों में एक विशिष्ट मनस्थिति के चित्रण की अपेक्षा संपूर्ण जीवन को पकड़ने का प्रयत्न किया गया है। इस कारण इन कहानियों का 'कथ्य' उपन्यास के अधिक निकट है। 'राजा निरबंसिया' के जगपती की अथवा नीली झील के महेश पांडे की जिन्दगी का एक बहुत बड़ा हिस्सा इन कहानियों में लिया गया है। इन दोनों की युवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की-प्रदीर्घ अवधि की मानसिकता का चित्रण किया गया है। 'दिल्ली में एक मौत' अथवा 'खोई हुई दिशाएँ' की तरह इन कहानियों की मानसिकता क्षणों अथवा घंटों की नहीं है। परिस्थितियाँ मनुष्य जीवन को कितनी परेशान कर रही हैं; उसे बदलने के लिए किस प्रकार मजबूर कर रही हैं; इसका चित्रण इन कहानियों में हुआ है। इस काल की सभी कहानियाँ आधुनिक युग की विसंगति, खोखलेपन और निरर्थकता को ही व्यक्त करती हैं। (प्रमाण: राजा निरबसिया, देश की मां, कस्बे का आदमी, गर्मियों के दिन इत्यादि) यथार्थ के विभिन्न स्तर इन कहानियों में व्यक्त हुए हैं। स्थूल यथार्थ (गर्मियों के दिन) से लेकर सूक्ष्म सौन्दर्य बोध (नीली झील) तक को इन कहानियों में व्यक्त किया गया है। अन्य कहानीकारों की तरह कमलेश्वर आरम्भ से ही विशिष्ट परिवेश और विशिष्ट कथ्य को स्वीकार करके नहीं चलते। क्योंकि इधर अधिकतर कहानीकार शहरी जीवन अथवा यौन विकृति को ही कहानी का विषय बना रहे हैं।) राजा निरबसिया में साधारण पढ़ा लिखा और कस्बे में जीनेवाला जगपती तथा अशिक्षित चंदा है; गर्मियों के दिन में सनातनी वैद्यजी हैं; कस्बे का आदमी में

भावुक, संवेदनशील और मस्त मौला छोटे-महाराज हैं; नीली झील में अशिक्षित परन्तु सूक्ष्म सौन्दर्यबोध से प्रेरित महेश पांडे है। एक ओर चरित्र की विविधता है तो दूसरी ओर कथ्य की भी विविधता है। राजा निरबंसिया में अर्थ, यौन, संगति, बेकारी और स्त्री की मजबूरी का कथ्य है तो कस्बे का आदमी में एक संवेदनशील व्यक्ति की मनःस्थिति केन्द्र में है। गर्मियों के दिन में जीवन के खोखलेपन, निरर्थकता कृत्रिमता और प्रदर्शन की वृत्ति को कथावस्तु का जामा पहनाया गया है। 'नीली झील' मनुष्य की सूक्ष्म सौन्दर्यवृत्ति को उद्घाटित करती है।

शिल्प की दृष्टि से भी इस काल की कहानियों में विविधता है। राजा निरबंसिया में पुरानी और नयी कहानी को समानान्तर रखते हुए एक नये अर्थवान शिल्प की खोज की गयी है; कस्बे का आदमी में 'फ्लश बैक' की शैली ग्रहण की गयी है, नीली झील में प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण करते हुए पात्रों की मनःस्थिति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

इस प्रकार पहले दौर की इन कहानियों को पढ़ते समय एक प्रतिभा सम्पन्न कहानीकार के सारे लक्षण मिलने लगते हैं। ये कहानियाँ इस बात को सिद्ध करती हैं कि लेखक की प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी है। कथ्य, चरित्र, शिल्प और भाषा का अद्भुत समन्वय यहाँ हुआ है। प्रयोग के लिए प्रयोग का आग्रह कहीं पर भी नहीं है। अनुभूति और अभिव्यक्ति का विलक्षण समन्वय यहां पर मिलता है। ये कहानियाँ इस बात को स्पष्ट कर देती हैं कि लेखक अपनी अनुभूति के क्षेत्र को निश्चित करने में सफल हो रहा है। वास्तव में नयी कहानी का विद्रोह इसी बिन्दु पर था। पुरानी कहानी अपने यथार्थ परिवेश से हटकर जीने का आग्रह कर रही थी। (इस प्रकार परिवेश से हटकर जीने वाले या तो बहुत पीछे पड़ जाते हैं, या मत प्रवाह में समाप्त हो जाते हैं अथवा अपनी असली पहचान खो देते हैं।) नयी कहानी अपने परिवेश से प्रतिबद्ध थी और है। यह प्रतिबद्धता पहले दौर की इन कहानियों में हम पाते हैं। इन कहानियों में स्वस्थ, प्रगतिशील दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। यहां लेखक किसी भी विचारधारा से प्रतिबद्ध नहीं है। वह प्रतिबद्ध है अपने परिवेश से, अपनी प्रखर अनुभूति से, उसकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति से। इसी कारण ये पात्र जीवन्त लगते हैं और ये कहानियां हमारी अपनी लगती हैं। इन कहानियों के पास अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। इसी कारण कहानी के तत्वों के कठघरे में खड़े करके इन पर विचार नहीं किया जा सकता। एक लेखक की पहले ही दौर की कहानियाँ इस कदर तक निर्दोष, कलात्मक, मौलिक और जीवंत हों कि वे कहानी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान अपने आप ग्रहण करलें—यह विशेष आश्चर्य की बात है। इस आश्चर्य का उत्तर उसकी प्रतिभा, प्रगतिशील दृष्टि तथा जिन्दगी से सीधे जूझने की उसकी हिम्मत में ही मिलता है।

(2) कहानियों का दूसरा दौर सन् 1959 में शुरू हो जाता है और 1966 में समाप्त। कमलेश्वर अपने कस्बे को छोड़कर 1959 में दिल्ली आए। कस्बाई व्यक्तित्व और सस्कारों को लेकर जब कोई युवक शहर में चला आता है तो कई दिनों तक वह खुद को उस बदली हुई परिस्थिति से 'एडजस्ट' नहीं कर पाता। इस युवक के पास कई स्वप्न हैं; जीवन मूल्यों के प्रति श्रद्धा है। परन्तु शहर में आने के बाद धीरे-धीरे ये सारी श्रद्धायें टूटने लगती हैं। धीरे-धीरे वह भीड़ का अंग बन जाता है। उसके अस्तित्व को कोई स्वीकार करने ही तैयार नहीं होता। सब जगह एक 'अजनबी' के रूप में वह घूमते रहता है। इन शहरों में मूल्यों का जो विघटन हो रहा है; उससे वह परेशान हो जाता है। जिन्दगी की प्रत्येक घटना को शहरी आदमी एक ही पद्धति से स्वीकार करता है उसकी यह सवेदनशून्यता कस्बाई व्यक्ति के लिए भयानक लगती है। उसे लगता है कि शहरों का न केवल यांत्रिकी करण ही हो रहा है; अमानवीयता की प्रक्रिया भी यहां घटित हो रही है। व्यक्ति की यह दारुण स्थिति देखकर संवेदनशील आदमी घबरा उठता है। उसे ऐसा अनुभव होता रहता है कि सम्बन्धों की सभी दिशाएँ समाप्त सी हो गयी हैं। अब जीने लायक कोई चीज है ही नहीं; "खोई हुई दिशाएँ" इस काल में लिखी गई इस प्रकार की एक श्रेष्ठ कहानी है। अपनत्व के अभाव में एक युवक की स्थिति कितनी भयावह हो जाती है; इसका चित्रण यहां किया गया है। "दिल्ली में एक मौत" कहानी में मौत के समय भी शहरी आदमी कितना निर्लिप्त, तटस्थ, कृत्रिम, यांत्रिक और प्रदर्शनकारी बन जाता है; इसको स्पष्ट किया गया है। इस समय की यह तटस्थता किसी योगी अथवा संत की नहीं है अपितु निर्जीव अथवा यंत्र की तटस्थता ही है। आधुनिक परिवेश में जीनेवाली एक प्रौढ़ा शारीरिक सुख के अधीन जाकर अपने मातृत्व को क्षण भर कैसे भूल जाती है और फिर कितनी निराश और अकेली हो जाती है इसका चित्रण 'तलाश' में किया गया है। इस दौर में लिखी गयी अन्तिम कहानी 'मांस का दरिया" में वेश्या जीवन की असलियत और एक संवेदनशील वेश्या की भयावह स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

व्यक्ति के व्यवहार को समय के परिप्रेक्ष्य में जानने का प्रयत्न है। अपने परिवेश को जान लेने के बाद ही व्यक्ति विसंगत व्यवहार का अर्थ लगा सकता है। अनुभव के क्षेत्र की पहचान के बाद ही अनुभव के समय संगत संदर्भ लगाए जा सकते हैं। इसी कारण इस काल में लिखी गयी कहानियाँ व्यक्ति जीवन को अधिक गहराई से स्पष्ट करने लगती हैं। यहां के पात्र अन्तर्मुख होकर आत्मनिरीक्षण करने लगते हैं। फिर वह 'खोई हुई दिशाओं' का चंदर हो अथवा 'मांस का दरिया' की जुगनू अथवा 'दिल्ली में एक मौत' का निवेदक अथवा 'तलाश' की ममी ! इसी कारण कथ्य की अपेक्षा अब पात्रों के व्यवहार में विविध संदर्भों का महत्व अधिक है। पहले दौर की अपेक्षा ये कहानियाँ संक्षिप्त भी हैं। काल मर्यादा भी छोटी है। यहाँ क्षण की मनःस्थिति है अथवा अधिक से अधिक कुछ दिनों की। कथ्य की अपेक्षा वातावरण और चरित्र को अधिक महत्व मिल गया है। यहां व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से जूझ रहा है और जूझते हुए वह तटस्थता के साथ अपने व्यवहार का निरीक्षण कर रहा है। पहले दौर की कहानियों में पात्रों को अपने परिवेश का एहसास ही नहीं है। वे अपनी ही दुनियाँ में खो गये हैं। वे खुद को धोका दे रहे हैं और लोगों को अपनी सही स्थिति का अंदाजा दे नहीं रहे हैं। गर्मियों के दिन का वैद्य अथवा राजा निरबसिया का जगपती इसके प्रमाण हैं। जिंदगी के आखिर में उन्हें अपने व्यवहार का, मूल्यहीनता का, निरर्थकता का एहसास होता है। ये पात्र जिंदगी से जूझ कर भी जिंदगी से अलग हैं। इनकी समस्याएँ यथार्थ हैं; परन्तु समस्याओं के उत्तर इनके अपने हैं। (जगपती की आत्म-हत्या, कस्बे का आदमी की मृत्यु, महेश पांडे का झील खरीद लेना आदि।) परन्तु दूसरे दौर की कहानियों में पात्र जिंदगी से जुड़े हुए हैं। उनके पास भी समस्याएँ हैं; परन्तु इन समस्याओं के उत्तर उनके पास नहीं हैं। वे समस्याओं के साथ जूझ रहे हैं। समस्या की गम्भीरता और भयानकता को वे जानते हैं यही इनकी विशेषता। वे जिंदगी से प्रतिबद्ध हैं परन्तु एक कथाकार की तटस्थता उनमें है।

इस दौर की कहानियों के पात्र विविध स्तर से आये हुए हैं, ये सभी पढ़े लिखे है (अपवाद-मांस का दरिया की जुगनू) शिल्प की दृष्टि से ये कहानियाँ बड़ी ही सरल और सपाट हैं। कथ्य की कमी के कारण शिल्प में किसी भी प्रकार की उलझन नहीं है। व्यक्ति और उसके परिवेश को एक दूसरे के विरुद्ध लाकर परिस्थिति की क्रूरता और व्यक्ति की असहायता को बतलाने की कमलेश्वरीय विशिष्टता के संकेत यहाँ मिलने लगते हैं। इस काल की आखरी कहानी 'मांस का दरिया' में यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है और यहीं से तीसरे दौर की कहानियाँ आरम्भ हो जाती हैं।

[3] सन् 1966 से 1972 तक लिखी गयी कहानियाँ तीसरे दौर में आती हैं। सन् 1966 में कमलेश्वर बम्बई आये; महानगरीय सभ्यता और संस्कृति को

और अधिक निकटता से जान लेने का अवसर उन्हें इस दौर में ही प्राप्त हुआ। सन् 1966 तक आते-आते इस देश का पूर्णत: स्वप्न भंग हो चुका था। स्वतन्त्रता के पूर्व राष्ट्र को लेकर अनेक स्वप्न देखे गये थे; अथवा यूँ कहें कि हमारे राष्ट्र पुरुषों द्वारा ऐसे अनेक स्वप्न बतलाए गये थे। इन्हीं स्वप्नों को देखते हुए इस देश के हजारो युवक जेलो की भयावह यातनाओं को सह चुके थे; लाठियाँ खा चुके थे; गोलियों का सामना कर चुके थे; फांसी के तख्तों पर हँसते-हँसते खड़े हो चुके थे; यह देश सुजलाम-सुफलाम बनेगा; श्रेष्ठ मूल्यों की प्रतिष्ठा यहाँ होगी, ईमानदारी और प्रामाणिकता यही व्यक्ति के मूल्यांकन के मानदंड होंगे ऐसा भी सोचा गया था। परन्तु प्रजातंत्रीय व्यवस्था स्वीकार कर लेने के बावजूद भी धीरे धीरे यह देश भीतर ही-भीतर से टूटने लगा। औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण यह प्रवृत्ति और अधिक उभरने लगी। 1962 का चीनी आक्रमण कई जटिल प्रश्नों को जन्म दे गया। पचशील और नि:शस्त्रता के मूल्यों को इस युद्ध ने खत्म-सा कर दिया। जिंदगी के प्रत्येक क्षेत्र में अनास्था; अविश्वास; मूल्यहीनता और कृत्रिमता के दर्शन होने लगे। स्वभाषा और स्वदेशी वस्तुओं का आग्रह करने वाला देश 1960 तक आते-आते विदेशी वस्तुओं और भाषा का पूर्णत: गुलाम बन गया। व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की मानसिकता के सूक्ष्म परिवर्तन विराट रूप धारण करने लगे। परिस्थिति अधिक क्रूर और अर्थ केन्द्रित होने लगी। व्यक्ति इस परिस्थिति के सम्मुख एकदम असहाय और मजबूर दिखाई देने लगा। ईमानदार और प्रामाणिक व्यक्ति इस विराट और क्रूर परिस्थिति के साथ लड़ कैसे सकेगा? अगर लड़ने की कोशिश करेगा भी तो उसकी हार निश्चित है। इस कारण इस दौर की कहानियों में कथ्य की अपेक्षा परिवेश और व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष को ही स्वर दिया गया है। मूल्यों पर श्रद्धा रखकर जीने वाले पात्र एक ओर तथा क्रूर परिस्थिति दूसरी ओर। इस क्रूर परिस्थिति के हजारों हाथ और लाखों आंखें हैं। ऐसे समय में व्यक्ति के सामने दो ही पर्याय हैं—या तो वह सीधे इस परिस्थिति के प्रवाह को स्वीकार करें और उसी के अनुरूप जीने की कोशिश करे अथवा आत्महत्या कर लें। कम से कम इस देश में तो यही स्थिति है। ईमानदार, राष्ट्रीय मनोवृत्ति वाले, विशाल दृष्टिवाले लोग इसी कारण इस देश में सबसे अधिक परेशान हो रहे हैं। मूल्यहीन, संकुचित; भ्रष्ट और स्वार्थी प्रवृत्तियों को अगर वे स्वीकार करके जीना नहीं चाहते हैं तो सीधे आत्महत्या कर सकते हैं। इस प्रकार पिछले 25-30 वर्षों में इस देश की मानसिकता में यह जो भयावह परिवर्तन हुआ है; उसकी अभिव्यक्ति इस काल की कहानियों में हुयी है। इस अर्थ में ये कहानियां पूर्णत: जिंदगी से जुड़ी हुयी हैं। परिस्थिति और व्यक्ति का संघर्ष यही इन कहानियों की

इस काल की चार प्रतिनिधिक रचनाएँ यहां ली गयी हैं 'नागमणि'; 'बयान'; 'आसक्ति' और 'वह मुझे ब्रीच कैंडी पर मिली।" ध्येयवादी और ईमानदार व्यक्तियों की असहायता को तथा विदेशी भाषा और गुलाम मनोवृत्ति वाले परिवेश को (नागमणि); भ्रष्ट, बेईमान और क्रूर व्यवस्था को (बयान) रखा गया है। इन दोनों कहानियों के माध्यम से लेखक ने इस देश में उभरते हुए सांस्कृतिक संकट को ही स्पष्ट किया है। तीसरी कहानी में युवकों की बेकारी, असहायता; निष्क्रियता तथा जिंदगी के प्रति उनकी आसक्ति का चित्रण किया गया है। आखरी कहानी में वातावरण के माध्यम से बम्बई की संवेदनशून्य और आश्चर्य चकित करने वाली मनःस्थिति का सहज चित्रण किया गया है।

इस दौर की कहानियों के संबंध में कमलेश्वर ने लिखा है कि "यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य के साथ और समानान्तर चलने" का प्रयत्न इस समय किया गया है। इस प्रकार समान्तर चलने के बाद ही कोई भी लेखक अभिव्यक्ति के प्रति प्रामाणिक रह सकता है। लेखक अब घटनाओं, पात्रों अथवा उनकी मानसिकता का तटस्थ दर्शक मात्र नही रह जाता। इस प्रकार की तटस्थता उसे मान्य भी नहीं है। वह पात्रों की मनःस्थिति को खुद जीना चाहता है। उसकी यातनाओं के साथ समान्तर चलना चाहता है। दूसरे दौर से गुजरने के बाद ही यह तीसरी स्थिति संभव थी। अब यहाँ अनुभव के अर्थों तक जाने की कोशिश है। इस प्रकार की सृजन प्रक्रिया के कारण ही 'नागमणि' का विश्वनाथ अथवा 'बयान' का फोटोग्राफर अथवा 'आसक्ति' का विनोद ये लेखक के प्रतिरूप ही लगने लगते हैं। इसका कारण इतना ही है कि लेखक इनकी यातनाओं का सहयात्री बना है। सहयात्री होने के कारण ही वह उस दर्द को सीधे झेलता है। संभवतः इसी कारण 'राजा निरबंसिया' का जगपती हमें थोड़ा सा पराया लगता है। परन्तु 'नागमणि' और 'बयान' के सम्बन्ध में ऐसा नहीं लगता। इस तीसरे दौर की इसी चेतना के कारण कमलेश्वर का लेखक "सामान्य आदमी से जुडा हुआ लेखक बन जाता है"। इसी आधार पर कमलेश्वर ने लिखा है कि "यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य की इस महायात्रा का जो सहयात्री है; वही आज का लेखक है। सह और समान्तर जीनेवाला, सामान्य आदमी के साथ।"[1] नयी और पुरानी कहानी में अन्तर करने वाली यही प्रवृत्ति है।

इस दौर की कहानियों में कथ्यात्मकता का अंश कम होता गया है। कथ्य की धुरी पर घूमती कहानियां अब कथ्य से दूर निकल जाती हैं। कथ्य की अपेक्षा परिस्थिति और व्यक्ति की असहायता पर ये आधारित हैं। राजा निरबंसिया से लेकर वह मुझे ब्रीच कैंडी पर मिली थी तक की कहानी यात्रा को कथ्य के सन्दर्भ में

---

1. मेरी प्रिय कहानियां: भूमिका; कमलेश्वर पृ० 6.

देखेंगे तो स्पष्ट होता है कि घोर कथात्मकता से अकथात्मकता तक ये कहानियाँ विकसित होती गयी हैं। अपनी परिस्थिति का एहसास न रखते हुए अपने अस्तित्व को बनाये रखने वाले पात्रों से लेकर परिस्थिति के साथ संघर्ष करते हुए पात्रों की यह कथा यात्रा है। उलझे हुए शिल्प से लेकर सपाट शिल्प तक की यह शिल्प यात्रा है। दीर्घ कथाओं से लेकर (राजा निरबंसिया पृष्ठ संख्या 26) छोटी कथाओं (वह मुझे क्रीच कैंडी पर-पृ० संख्या साढ़े छः) तक की यह यात्रा है। काल मर्यादा की दृष्टि से देखे ती आरम्भिक कहानियों में कई महिनों की अथवा कई दिनों की काल मर्यादा को स्वीकार किया गया है तो बाद की कहानियां क्षणों की मनःस्थिति पर आधारित हैं।

"अनुभव के क्षेत्र की प्रामाणिक पहचान" इस यात्रा का पहला पड़ाव था। इस पड़ाव में यह सवेदनशील लेखक अपने अनुकूल क्षेत्र की खोज कर रहा था। उस परिवेश को स्वीकार करने की, उसे जीने की प्रामाणिक कोशिश चल रही थी। अनुभव के समय संगत संदर्भ इस यात्रा का दूसरा पड़ाव था। इस समय वह इन अनुभवों के अर्थ लगाने की कोशिश में था। अनुभवों को व्यवहार, समय और परिवेश के संदर्भ में ग्रहण करने की कोशिश चल रही थी; उसकी सार्थकता की खोज हो रही थी। अनुभवों के अर्थों तक जाने की कोशिश" इस यात्रा का आखरी पड़ाव है। यहां आकर लेखक यातनाओं के जंगल से गुजरते मनुष्य का सह यात्री बनने की कोशिश करता है। आम आदमी की संपूर्ण मानसिकता को उसी रूप में स्वीकार कर जीने की यह कोशिश है। यात्रा के इन तीनों पड़ावों में कमलेश्वर कहीं रूके नहीं हैं अथवा अपने को दुहरा नहीं रहे हैं। वे इस यात्रा में हर बार अनुभूति की नयी जमीं" को छुते गये हैं। कमलेश्वर की बाद की कथा यात्रा अनुभूति के नये क्षेत्रों को स्पर्श कर रही है; अथवा वह रूकी हुअी है; अथवा खुद को दुहरा रही है; अथवा नयी पगडंडियां बना रही हैं; ये तो उनकी बाद की कहानियां ही साबित कर देंगी। यहां पर 1972 तक की प्रातिनिधिक कहानियां मात्र ली गयी हैं। उसके आधार पर ही प्रस्तुत निष्कर्ष दिये गये हैं।

कमलेश्वर की कहानियाँ: वस्तुगत अध्ययन

"घोर आत्मपरकता, कुंठा, घुटन एवं पलायनवादी प्रवृतियों के घने जाल से हिन्दी कहानी को खुली वायु में लाकर नया अर्थ देने का श्रेय बहुत अशों में कमलेश्वर को है।"

—डा० सुरेश सिनहा

"जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होना मेरी अनिवार्यता है। इस टूटते, हारते और अकुलाते मनुष्य की गरिमा में मेरा विश्वास है।.....मुझमें इतना झूठा दर्प और दुस्साहस नहीं कि अपनी समस्त थाती को हीन, कमीन, अश्लील, विगलित और रूग्ण आदि मानकर चल सकूँ।"

- -कमलेश्वर

कमलेश्वर की कहानियाँ : वस्तुगत अध्ययन

कथा-यात्रा के प्रकरण में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि कमलेश्वर की कहानियाँ जिन्दगी से जुड़ी हुयी हैं। जिन्दगी से हटकर कहानियां लिखना वे बेईमानी मानते है। नयी कहानी के आन्दोलन के पूर्व कहानी जीवन को छोडकर दूसरे राह पर चल रही थी। जिन्दगी और कहानी मे जिस प्रकार के कलात्मक समन्वय की आवश्यकता थी; उसका वहां अभाव था। इस खेमे के कहानीकारों ने इस कलात्मक समन्वय की पूरी कोशिश की है। 'घोर आत्मपरक्ता, कुण्ठा, घुटन एवं पलायनवादी प्रवृत्ति के घने जाल से हिन्दी कहानी को खुले वातावरण मे लाकर नया अर्थ देने का श्रेय बहुत अंशों मे कमलेश्वर को है।"[1] डा० सुरेश सिन्हा के इस निष्कर्ष मे बहुत बड़ा तथ्य है। इस काल की कहानियो के सम्बन्ध में कमलेश्वर ने एक जगह लिखा है, "मानवीय मूल्यों के संरक्षण, जीवन शक्ति के परिप्रेषण एव सामाजिक नव-निर्माण की जितनी उत्कट प्यास इस पीढ़ी के कहानीकारो मे है वह पिछले दौर में नहीं थी।"[2] इस उत्कट प्यास का परिणाम वस्तु के चयन पर होता ही है। जब इस प्रकार के किसी विशिष्ट मंजिल को कथाकार अपने सम्मुख रखता है तब उसके अनुकूल ही वह वस्तु का चयन करता है। इसी कारण "सामाजिकता और सोद्देश्यता"[3] इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएं है। इस सामाजिकता और सोद्देश्यता के कारण कहानियां प्रचारात्मक नही हुयी है। कलात्मकता के अपेक्षित स्तर तक यह कहानियां अपने आप पहुंच जाती है। इनकी समग्र कहानियों की कथा वस्तुगत विशेषताएं इस प्रकार की है—

(1) आधुनिकता की अभिव्यक्ति इनकी कथा वस्तु की पहली और सबसे प्रधान विशेषता है। नयी कहानी का आन्दोलन इसी आधुनिकता की अभिव्यक्ति का आन्दोलन रहा है। इस आधुनिकता की समग्रता को शब्द बद्ध करने का प्रयत्न इस युग में हो रहा है। डा० मदान के अनुसार आधुनिकता एक गतिशील प्रक्रिया है। वह स्थिर मूल्य में परिवर्तित होने वाली प्रक्रिया नही है। जैसे ही यह प्रक्रिया स्थिरता के निकट चली जाती है, वैसे ही उसकी आधुनिकता रुक-सी जाती है। इसीलिए सजग कथाकार इस आधुनिकता की गतिशीलता को पकड़ने का प्रयत्न करता है। इस

1, नयी कहानी की मूल संवेदना : डा० सुरेश सिन्हा, पृ० 107
2. वही, पृ० 107
3. वही, पृ० 108

आधुनिकता के कई आयाम हैं। प्रत्येक देश के अनुसार इसके आयाम बदलते रहते हैं। परन्तु इसके बावजूद समग्र रूप में आधुनिकता की अपनी विशिष्ट पहचान है। बौद्धिकता, यांत्रिकता, कृत्रिमता, औद्योगिकरण, भौतिकता, अश्रद्धा, अनास्था, अकेलापन, अर्थकेन्द्रित समाज व्यवस्था, सत्ता केन्द्रित राजनीति और स्वार्थ केन्द्रित संस्थाएं ये आधुनिकता के विविध आयाम है। दो महायुद्धों और विज्ञान की आश्चर्यजनक प्रगति के कारण पश्चिम में ये मूल्य उभर आए। स्वतन्त्रता, विज्ञान और तंत्रज्ञान की प्रगति पूंजीवादी व्यवस्था, स्वार्थ केन्द्रित संस्थाएं, सत्ता केन्द्रित राजनीति, और अफसरशाही के माध्यम से भारत में इस आधुनिकता का प्रवेश हुआ, उपर्युक्त विशेषताओं के अलावा ध्येय शून्यता, पूंजीवाद, यूरोप की अन्धानुकरण की प्रवृत्ति, विदेशी भाषा विदेशी रहन-सहन और विदेशी वस्तुओं के प्रति आशक्ति ये भारतीय आधुनिकता के कुछ अन्य पहलू हैं। जिन्दगी के सभी क्षेत्रों से ईमानदारी खत्म हो रही है; और ईमानदार व्यक्ति की दुर्गति हो रही है, यह भी शायद इसी आधुनिकता का परिणाम है। सभी नैतिक मानदण्ड बडी तेजी के साथ लुप्त हो रहे हैं। अतिबौद्धिकता के कारण 'घोर व्यक्तिवाद' उभर कर सामने आ रहा है। 1962 के चीनी आक्रमण के कारण मोहभंग की स्थिति से भी गुजरना पडा। इनका सबका संयुक्त परिणाम ऐसा हुआ कि व्यक्ति इस भयावह और क्रूर परिस्थिति के सामने अकेला, निस्सहाय और निशस्त्र खडा है। उभरती हुयी साम्प्रदायिकता, भाई-भतीजावाद, गुणवत्ता की अपेक्षा गुंडा गर्दी ने इस अकेले आदमी को और भी अकेला कर दिया। सम्पूर्ण परिवेश उसके विरुद्ध खडा हो गया है। कहना न होगा कि आज की यह भारतीय व्यवस्था 'मनुष्य विरोधी' है। आधुनिकता से हम बच भी नहीं सकते थे। समाज रूपी समरांगण में यह व्यक्ति इस प्रकार की भयावह शक्तियों के सम्मुख अकेला खड़ा है। तो दूसरी ओर उसके भीतर भी यही स्थिति है। इधर वह बडी तेजी से अनुभव करने लगा है कि वह बेहद 'अकेला' है। जिन्दगी की सभी दिशाएं धीरे-धीरे खो रहा है। भीतर के अकेलेपन ने और बाहर की क्रूर शक्तियों ने मनुष्य की जो स्थिति बनाई है—वही आधुनिकता है। और इस इस आधुनिकता की अभिव्यक्ति ही नया साहित्य है। सवेदनशील कलाकार इस मनुष्य विरोधी संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। कमलेश्वर ने लिखा है—'चारों ओर व्याप्त संत्रास, द्वेष, आक्रोश और विद्रोह को कहानी ने उठा लिया है। विसंगत और व्यर्थ को भी उठाकर अर्थसम्पन्न बना देने की कोशिश की है, जो कुछ नजर आता है, उससे तटस्थ होते हुए भी उसीसे जूझने का संकल्प किया है।"[1] परिस्थिति के साथ जूझना इस नये कथाकार की नियति है। इस व्यवस्था के प्रति उसके मन में कोई आसक्ति नहीं है। फिर भी

---

1. हिन्दी कहानी : पहचान और परख (सम्पादक : डा० इन्द्रनाथ मदान)
नए प्रश्न : नए उत्तर–पृ० 46

वह इस व्यवस्था में जीने के लिए मजबूर है। छायावादी कवियों की तरह वह इस व्यवस्था से पलायन नहीं कर सकता। अथवा किसी राजनीतिक विचारधारा का आवेश में समर्थन करते हुए क्रान्ति के स्वप्न नहीं देख सकता। इस भयावह परिस्थिति के साथ वह अपनी और आम आदमी की लड़ाई को देखते रहता है और इस लड़ाई में मनुष्य का जो कुछ भी टूट रहा है; खत्म हो रहा है उसे शब्दबद्ध करते जाता है। इसे यूँ शब्दबद्ध करना भी एक बहुत बड़ी तकलीफ से गुजरना है। प्रस्थापित की दोगली नीतियों का शिकार वह खुद हो जाता है परन्तु शिकार हो जाने के बावजूद तटस्थ होकर उस मानसिकता का सूक्ष्म चित्रण भी करता है। "स्वतन्त्रता के बावजूद कथाकार का एक संसार वह है जो उसके चारों ओर है और उसे आंतरिक घृणा है; बेहद नफरत है; लेकिन जिसमें रहने टूटने और समझौता करने को बाध्य है।"[1] इस सारे विश्लेषण से स्पष्ट है कि आधुनिकता और आधुनिक बोध यह कहानियों की कथा वस्तु की कपहली विशेषता है। इस आधुनिकता के बोध को अपनी संवेदना के स्तर पर ले जाकर कलात्मक रूप से वह उसकी अभिव्यक्ति करता है। इस आधुनिकता बोध के देशी आयाम ही कमलेश्वर की कहानियों में व्यक्त हुए हैं। "कमलेश्वर की कहानी में भी आधुनिकता की प्रक्रिया देशगत आयामों के लिए हुए है—वह चाहे खोई हुई दिशाएं में हो या 'रूकी हुई घड़ी' 'दुख के रास्ते' या 'जो लिखा नहीं जाता।"[2] आधुनिकता के रूप में पश्चिमी जीवन का हूबहू चित्रण करने वालों की कमी यहाँ नहीं है। रेस्तरा, कल्ब्स, स्त्री की माँसलता, उत्तम शृंगार और बनावटी दुनियाँ के चित्र आज भी आधुनिकता के नाम पर दिए जाते हैं। कमलेश्वर को ऐसी ओढी हुई आधुनिकता से चिढ़ है। इस देश के भीतर भी मूल्यगत संक्रमण हो रहा है। मोहन राकेश ने लिखा है—'भारतीय जीवन शिथिल चाहे लगता हो, पर सतह के नीचे उनमें इतनी हलचल है जितनी पहले कभी नहीं रही।"[3] सतह के नीचे की हलचल को कमलेश्वर अपनी कहानियो में स्पष्ट करते हैं।

अर्थ प्रधान संस्कृति में अर्थ के मोह के कारण अपने पानी के शरीर की बिक्री करने वाला जगपती, सब कुछ खो चुकने के बाद भी अपने खोखले पन और निरर्थकता को छिपाने वाले वैद्यजी, भीड़ की संस्कृति में जीने वाला और अपनत्व की खोज करने वाला चन्दर, ईमानदारी के कारण आत्महत्या के लिए विवश फोटोग्राफर, अपने नारीत्व की तलाश में ममी, मौत के प्रति लोगों की सवेदनशून्यता से परेशान निवेदक-आधुनिकता बोध से परिचालित ये विविध पात्र है। ये पात्र आधुनिकता की अभि-

---

1. एक दुनिया समानान्तर (भूमिका) राजेन्द्र यादव पृ० 98
2. हिन्दी कहानी परिचय और परख : इन्द्रनाथ मदान पृ० 233
3. हिन्दी कहानी अपनी जबानी : डा. इन्द्रनाथ मदान, पृ० 36

व्यक्ति के माध्यम मात्र हैं। संक्रमण की अवस्था से गुजरने वाले व्यक्तियों की ये कहानियां हैं।

(2) 'आधुनिकता' और आधुनिकता बोध को कथावस्तु के रूप में स्वीकार करने के कारण 'समसामयिकता' कथावस्तु की एक और विशेषता बन गयी है। कमलेश्वर ने लिखा है—"इधर की कहानियों ने यह कहानी परकता आत्मबोध और समयबोध के भीतर से ही प्राप्त की है—उनके संयमित विश्लेषण से"[1] इसी कारण इन कहानियों में जीवन के चिरन्तन तत्वों की अभिव्यक्ति नहीं मिलती। इसका कारण यह है कि आज आदमी अपनी सम-सामयिकता अथवा समयबोध से इतना ग्रस्त है कि उसके चिन्तन में और व्यक्तित्व निर्माण में इन्हीं को महत्वपूर्ण स्थान मिल गया है। भविष्य के प्रति अनास्था तथा भूत के प्रति नफरत की वृत्ति के कारण आज का मनुष्य केवल 'वर्तमान' में जीता है। वर्तमान में जीने वाले लोग समयबोध से ही ग्रस्त रहते हैं; चिरन्तना से नहीं; चिरन्तन जीवन मूल्यों की हत्या इधर पिछले कई वर्षों से ही हो रही है। ऐसे चिरन्तन मूल्यों के प्रति आज की पीढ़ी में अनास्था है, अश्रद्धा है। और फिर चिरन्तना के मूल्य को यथार्थ जीवन में नकारा गया हो तो फिर उसका चित्रण एक बेईमानी ही तो है। इसलिए आज की कहानी वर्तमान में जीने की; टिकने की अनिश्चितता है; वहाँ अन्य मूल्यों की बात कैसे की जा सकती है। समसामयिकता' और 'समयबोध' को स्वीकारने के बावजूद भी ये कहानियाँ मात्र इतिवृत्तात्मक अथवा पुलिस रिपोर्ट की तरह नीरस, रुक्ष और उपदेशात्मक नहीं हैं। कलात्मकता की रक्षा इसमें हुई है। और हर स्तर पर हुई है। राजनिरबसियाँ, गर्मीयों के दिन, बयान, माँस का दरिया, तलाश, नागमणि आसक्ति आदि कहानियाँ वर्तमान जीवन से गहरे रूप में जुड़ी हुई है। किसी भी चिरन्तन मूल्य की उद्घोषणा न करते हुए भी ये कहानियाँ समस्पर्शी बन गयी हैं। वर्तमान जीवन की जटिलता को संघर्ष को बेइमानी और मक्कारी को स्पष्ट करने लगती है। संक्रमण काल का सच्चा लेखक चिरन्तन मूल्यों का आग्रह कर भी नहीं सकता। वह तो उस संक्रमण को सही रूप में रखने का प्रयत्न करता है।

(3) कथात्मकता का अभाव कथावस्तु की तीसरी विशेषता है "कहानी आपको कहानी न लगे और कहानी को के अलावा वह कुछ और न हो।"[2] इस विशिष्टता के दर्शन यहां होते हैं। इस कहानियों का कथानक विस्तार के साथ हम किसी को कह नहीं सकते। क्योंकि सुनाने जैसा कथानक इस में नहीं होता; अनुभव करने जैसी अनुभूति प्रबलता इसमें होती है, और यही इसकी विशेषता है। ये कहानियाँ व्यक्ति

---

1. हिन्दी कहानी, पहचान और परख : नये प्रश्न नए उत्तर ; कमलेश्वर, पृ० 45
2. वही, पृ० 44

को अन्तर्मुख बना देती है और अनुभूति के स्तर पर कहानी को भोगने का आग्रह करती है। इसीलिए इन कहानियों को बयान नहीं किया जा सकता। कमलेश्वर के शब्दों में यहाँ "अनुभव का घनीभूत स्फुरण हैं; आत्मबोध की अभिव्यक्ति मात्र है। और कथात्मकता से परे हैं।"[1] इसलिए कथात्मकता की जगह अब तनाव भरी कथ्यात्मकता ने ली है। इस कहानी का मूल स्रोत है–जीवन का यथार्थ बोध। परन्तु जीवन का यथार्थ बोध प्रेमचन्द, यशपाल, और अज्ञेय की तरह नहीं है। वह अधिक सूक्ष्म और जीवन के विविध सन्दर्भों को लेकर प्रगट होती है।

कमलेश्वर की आरम्भिक कहानियों की कथावस्तु में कहानीपन अधिक है। कथात्मकता का वे अन्य पुराने कहानीकारों की ही तरह निर्वाह करते हैं। आरम्भ में शिल्प और दृष्टि में मौलिकता है 'कथावस्तु' परम्पराबद्ध अर्थ में ही वहाँ आई हुई है। परन्तु धीरे-धीरे कथात्मकता का लोप होता गया है। अब कथात्मकता की अपेक्षा कथ्यात्मकता की अधिक होती गयी है। 'राजानिरबसिया' और 'वह मुझे उस रात ब्रीच क्रेंडी' ... इन दो कहानियों की कथावस्तु की तुलना करें तो उपर्युक्त बात और स्पष्ट हो जाती है। एक में कथातत्व की अधिकता है तो दूसरे में उसका पूर्ण अभाव। यह परिवर्तन इधर की हमारी मनस्थिति को ही स्पष्ट करता है। इस वस्तुगत परिवर्तन के कारण ही आरम्भिक कहानियाँ दीर्घ और अनेक मोड़ों से युक्त हैं। उसकी काल मर्यादा भी बड़ी है। परन्तु बाद में ये संक्षिप्त होती गयी है।

(4) ये कहानियां बाह्य विचारों से प्रेरित नहीं हैं। कथा-वस्तु अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है और अपनी शक्ति के सहारे चलने लगती है। किसी आदर्शवादी विचारधारा की; अथवा किसी राजनीतिक वैसाखियों का वह सहारा नहीं लेती, इसी कारण इसके कथ्य पर कोई हावी नहीं है। कभी यह कथ्य किसी आदर्श से प्रेरित था, (प्रसाद, प्रेमचन्द) कभी किसी विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा से (यशपाल) कभी किन्हीं सिद्धान्तों से (इलाचन्द्र जोशी) कभी घोर व्यक्तिवाद से (अज्ञेय) अथवा कभी दार्शनिक सिद्धान्तों से (जैनेन्द्र) परन्तु अब वह इन सारे बाह्य प्रभावों से मुक्त है। अर्थात् लेखक को अब कथ्य के चुनाव को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है। अथवा यूँ कहें कि अब वह परम्परा मुक्त और रूढि मुक्त कथ्य को चुनने का सामर्थ्य रखता है। एक ताजे मन से वह अपने आस-पास के वातावरण को देख सकता है। और एक संवेदनशील कलाकार के नाते उसे तटस्थ रूप से झेल सकता है। कमलेश्वर ने लिखा है—"इन नये कहानीकारों ने राजनीतिक वादों (राजनीति से नहीं) परम्परा प्रेरित मंतव्यों, घर-परिवार की सीमाओं, पति-पत्नी सम्बन्धों आदि के सतही और सहज

---

1. हिन्दी कहानी : पहचान और परख : नये प्रश्न-नए उत्तर : कमलेश्वर पृ० 44

कथा बिन्दुओं से मुक्ति पा ली है। कहानी कहीं भी किसी भी जगह 'कनफर्मिस्ट' नहीं रह गयी है। अपने सिवा वह किसी भी सत्ता की गुलाम नहीं है। न वह स्थापित मूल्यों की परवाह करती है और न मूल्यों की स्थापना को जरूरी मानती है।"[1] इस प्रकार स्वतन्त्रता के बाद कहानी का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व उभर कर सामने आया है। कमलेश्वर की कहानियाँ भी इसी प्रकार के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रगतिशीलता इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रगतिवाद नहीं। इस प्रगतिशीलता को स्वीकार करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। "इस पिछले दस पन्द्रह वर्षों में कुछ गजेटेड आलोचकों के कारनामों के कारण एकाएक प्रगतिशीलता जनवादी दृष्टिकोण आदि शब्दों से लेखकों को परहेज हो गया; इतना ही नहीं उन शब्दों से उन्हें डर भी लगने लगा है–मेरे लिए वे शब्द डर का कारण नहीं हैं–वे मेरी शक्ति है।"[2] प्रगतिशीलता यह आरोपित विचार नहीं वह कथ्य का भीतरी पक्ष है। ये प्रगतिशीलता अप्रत्यक्ष रूप से अपने आप व्यक्त होती गयी है। जैसे माँस का दरिया, बयान, नागमणि, आसक्ति–इत्यादि।

(5) ये कहानियां जीवन के प्रतिबद्ध हैं; मानवता के प्रति प्रतिबद्ध हैं। जिन्दगी इन कहानियों के केन्द्र में हैं। जिन्दगी के सभी पक्ष और सभी स्तर यहाँ व्यक्त हुए हैं। वैसे तो अब तक की सभी कहानियों के केन्द्र में 'जिन्दगी' ही थी, परन्तु यह जिन्दगी रुमानी, मनोरंजक, हल्की-फुलकी, अथार्थ स्वप्नजीवी और रंगीन हुआ करती थी। बाद में मात्र 'यथार्थ' जिन्दगी ने यह स्थान ले लिया। नये कहानीकारों ने जिन्दगी को जिन्दगी के रूप में अनुभव के स्तर पर ग्रहण किया और संवेदनात्मक स्वर में उसे व्यक्त किया है। कमलेश्वर कहता है––"जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होना मेरी अनिवार्यता है। इस टूटते, हारते, अकुलाते मनुष्य की गरिमा में मेरा विश्वास है।"[3] जीवन के प्रति इसी प्रतिबद्धता के कारण ही पीड़ित और पराजित वर्ग की मर्म वेदना का चित्रण इन्होंने किया है। "जिन्दगी की यथार्थता के पर्दे उघेड़ने में उन्होंने निर्ममता से काम किया है और प्रत्येक सामाजिक स्थिति का चित्रण करने का प्रयत्न किया है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी कहानियाँ प्रकृतिवादी हैं। उन्होंने इन स्थितियों का चित्रण एक फोटोग्राफर की भाति नहीं; वरन् लेखकीय संवेदनशीलता के साथ किया है।"[4] सभी आलोच्य कहानियों में जीवन की यह प्रति-

---

1. हिन्दी कहानी पहचान और परख; नये प्रश्न-नये उत्तर : कमलेश्वर पृ० 46
2. धर्मयुग : नवम्बर 1964 एक कथा दशक, आत्मकथ्य : कमलेश्वर पृ० 31
3. वही, पृ० 31
4. नयी कहानी की मूल संवेदना : डा० सुरेश सिन्हा: पृ० 108

बद्धता अभिव्यक्त हुई है। अलबत्ता उनकी नीली झील के सम्बन्ध में आलोचकों में मतभेद है। परन्तु सूक्ष्म सौन्दर्य बोध के स्तर पर यह कहानी भी जीवन से जुड़ी हुई है।

(6) वस्तु के चयन में विविधता है। नये कहानीकारों के सम्बन्ध में अक्सर ऐसा हुआ कि वे आरम्भ में आधुनिकता; टूटते जीवन मूल्य और बौद्धिकता से जड़ जिंदगी की बात करते रहें। परन्तु बाद की कहानियों में वे अपने को दुहराते रहे। स्त्री की जाँघों, क्लबों, बौद्धिक नपुंसकता से आगे की बात उनकी कहानियां कह नहीं सकी। परन्तु इस प्रवाह में कमलेश्वर उन कहानीकारों में से एक है जो संवेदना और कथ्य के नये क्षेत्रों को दुहराते नहीं घूमे। जो हर बार संवेदना और कथ्य के नये क्षेत्रों को उद्घाटित करते रहे। इसीलिए डा० धनंजय ने यह लिखा है कि नयी कहानी में हर मोड़ की परिवर्तन की कहानियां कमलेश्वर ने लिखी हैं। यहां कस्बाई जीवन के लोग हैं; और शहरी जीवन के भी। जीवन के विविध स्तरों से इनके पात्र आये हैं। यौन सम्बन्धों को ही महत्वपूर्ण मानकर उसी में वे घुट नहीं रहे हैं। भ्रष्टाचार, बेईमानी मक्कारी, ढोंगीवृत्ति आदि विविध स्थितियों को वे कथा वस्तु के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी चयन की प्रतिभा किसी विशिष्ट दायरे में फंस नहीं गयी है। इसीलिए उनकी ये कहानियाँ इतनी आकर्षक, ताजी और नयी लगती हैं।

(7) इन कहानियों का कथ्य इकहरा नहीं है। जिन्दगी के विविध संदर्भों को ये कहानियाँ उद्घाटित करती है। इसके पूर्व की कहानियाँ एक बार में एक ही बात कह सकने की सीमा में आबद्ध थी। परन्तु नयी कहानी विविध स्तरों पर विविध अर्थ उद्घाटित करती है। कमलेश्वर की कहानियों में मुख्यतः दो सन्दर्भ है—(अ) पात्रों की व्यक्तिगत जिन्दगी का सन्दर्भ तथा (आ) सामाजिक और प्रस्थापित व्यवस्था की क्रूरता का संदर्भ। पहला संदर्भ अधिक तरल, संवेदनशील और करुण है। दूसरा स्तर कठोर क्रूर और संवेदनशून्य है प्रत्येक कहानी इसी कारण इन दो भिन्न स्तरों पर अर्थ देती है। और सामाजिक विसंगति की व्याख्या करने लगती है। इसलिए ये कहानियां एक ओर व्यक्ति की असहायता और दूसरी ओर सामाजिक जीवन की क्रूरता को स्पष्ट करती हैं। वे न व्यक्ति को उपदेश देती हैं और न परिस्थिति की राजनीतिक या समाजशास्त्रीय व्याख्या करती हैं। कलात्मक स्तर पर वे व्यक्ति की स्थिति को संवेदनात्मक स्वर दे देती हैं, उसमें से अपने आप सामाजिक जीवन की क्रूरता का पर्दाफास हो जाता है। माँस का दरिया, नीलमणि बयान आसक्ति इस प्रकार की श्रेष्ठ कहानियां है। प्रसाद, प्रेमचन्द की कहानियां भी अनेकार्थ देती थी। परन्तु उस अनेकार्थ में कर्तव्य का स्मरण कराया जाता था; उपदेश दिया जाता था अथवा किसी श्रेष्ठ मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जाता था परन्तु ये कहानियां अपने विविध अर्थों में जीवनगत सन्दर्भों को उसके कार्य-कारण

को अधिक तीखा, और नंगा कर देती हैं। पाठक इन कहानियों को पढ़कर अभिभूत नहीं होते (जैसे कि वे पहले की कहानियां पढ़कर होते थे) अपितु उस प्रस्थापित क्रूर व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हैं और व्यक्ति की असहाय स्थिति से अस्वस्थ हो जाते हैं। इस दृष्टि से इन कहानियों का कथ्य इकहरा नहीं है।

(8) इधर की अधिकांश कहानियों का विवेचन परम्पराबद्ध पद्धति से किया नहीं जा सकता। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण, कथोपकथन, उद्देश्य–इन तत्वों के जरिए परम्पराबद्ध कहानियां तो इन तत्वों के आधार पर बुनी जाती थी; अथवा इन तत्वों को अलग-अलग रूप से उसमें देखा जा सकता था, परन्तु इधर की कहानियों का अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। स्वतन्त्र व्यक्तित्व की इन कहानियों को तत्वों के कटघरे में खड़ा करना उन पर अन्याय करना ही है। ये कहानियां आधुनिक जिन्दगी से जुड़ी हुई हैं। इस कारण आधुनिक जिन्दगी की सारी विशिष्टताएं, गुण (तथा दुर्गुण ?) इनमें आ गये इसलिए इन कहानियों की समीक्षा के लिए 'कहानी-कला" के ज्ञान की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी असली के पहचान की।

इसी कारण कमलेश्वर की प्रस्तुत कहानियों का विवेचन परम्पराबद्ध दृष्टि से सम्भव नहीं है। अगर कर भी दें तो उस सम्पूर्ण विवेचन से कहानी की मूल सवेदना प्रकट होने के बजाय और अनावश्यक बातें ही आती जाएंगी। इन कहानियों की इधर 'क्लास-रूम' समीक्षा हो रही है–परन्तु उससे कहानी स्पष्ट होने के बजाय कहानी कला के तत्व ही स्पष्ट हो रहे हैं। इसलिए इनकी समीक्षा न कहानी-कला के तत्वों के आधार पर की जा सकती है; न परम्परागत जीवन दृष्टि से। इन कहानियों को आत्मसात् करने के लिए आधुनिक जिन्दगी को उसके सारे सन्दर्भों को जानना होगा, कहानी स्पष्ट हो सकती है। अगर हम इस प्रकार नहीं कर पाएंगे तो जगपती विश्वनाथ, फोटोग्राफर, जुगनू आदि के साथ न्याय नहीं कर पाएंगे।

(9) इन कहानियों की 'वस्तु' परिवेश (वातावरण) के कारण अधिक जीवन्त हो उठी है। परिवेश की इसी विशिष्टता के कारण ये कहानियां जिन्दगी के निकट आ सकी हैं। इसके पूर्व की कहानियों में भी 'वातावरण' अथवा 'परिवेश' का चित्रण होता था। परन्तु वह एक प्रकार का Stop-Gap हुआ करता था। किसी कहानी को लिखते समय लेखक बीच में रुककर थोडी देर के लिए पाठकों को वातावरण का एहसास करा देता था। अथवा अपनी काव्यशक्ति का परिचय मात्र देता था। दो कार्यक्रमों के बीच जिस प्रकार Stop-Gap संगीत हुआ करता है; कुछ इसी प्रकार की स्थिति कहानी में इस 'वातावरण' की थी। अर्थात् परिवेश और पात्र में अभिन्नता अथवा अद्वैतता स्थापित नहीं होती थी। विशिष्ट परिवेश के कारण ही व्यक्ति

विशिष्ट पद्धति से क्रियारत होता है —यह शायद पुराने कहानीकारों को मान्य नहीं था। इसी कारण उसका कोई असर नहीं होता था। परन्तु आज की कहानी में परिवेश वस्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण इकाई है। उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। उसकी उपस्थिति को अगर हटा दे तो पूरी कहानी अपनी सार्थकता खो बैठती है। उदा:— खोई हुई दिशाएं; दिल्ली में एक मौत; मांस का दरिया; नीली झील; दूसरी सुबह सूरज.....आदि कहानियों में परिवेश और वस्तु का अभिन्न सम्बन्ध प्रस्थापित हुआ है।

(10) उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इन कहानियों की कथावस्तु प्रत्येक स्तर पर जिन्दगी से जुड़ी हुई है। परम्पराबद्ध कहानी से अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी उसमें कहानीपन है। प्रयोग के नाम पर प्रयोग की वृत्ति नहीं है। ये सभी कहानियां (पाठकों की दृष्टि से भी) नीरस; क्लिष्ट अथवा बौद्धिक नहीं बन पायी हैं। जिन्दगी की विविधता के दर्शन इन कहानियों में होते हैं। इनकी वस्तु 'यौन' के दायरे में फंस नहीं गई है। कौतूहल और उत्सुकता अंत तक बनी रहती है। यह उत्सुकता मन:स्थिति और परिवेश के प्रति होती है। ये कहानियां पाठकों को क्षुब्ध कराने की शक्ति रखती है। प्रस्थापित व्यवस्था के विरुद्ध साहित्यिक मोर्चे पर से लड़ी जाने वाली यह लड़ाई है। आम आदमी के समर्थन में लेखक यहां खड़ा है। सम्पूर्ण प्रस्थापित व्यवस्था की क्रूरता को वह स्पष्ट करते गया है। 'यहां व्यक्ति और व्यवस्था एक दूसरे के विरुद्ध खड़े हैं। 'व्यक्ति' पराजित हो गया है; असहाय हो गया है। व्यक्ति की इस असहायता की; बदलते सामाजिक मूल्यों की; जीवन के विविध सन्दर्भों की अभिव्यक्ति ही इनकी कथावस्तु के केन्द्र में है।

कमलेश्वर की कहानियां: चरित्रगत अध्ययन

"मुझे झुके हुए मस्तकों से सहानुभूति है, हारे हुए योद्धाओं से स्नेह है— क्योंकि मेरी दृष्टि में उनका झुका हुआ मस्तक शर्म का विषय नहीं, शर्म और क्रोध का विषय है वे दुर्दांत कारण, जिन्होंने उनके अस्तित्व के लिए हर तरह के संकट खड़े कर दिए हैं।"

—कमलेश्वर

"जिनकी जीत होती रहेगी, वे क्रूर होते जाएँगे, इसीलिए मुझे तो लगता है कि मैं हमेशा 'हारे हुओं' के बीच रहने के लिए प्रतिबद्ध हूं और यह तब तक रहेगा, जब तक सब जीत नहीं जाएंगे और मैं बिल्कुल अकेला नहीं रह जाऊँगा। तब मुझे न आस्था की जरूरत होगी, न विश्वास की और न लिखने की।"

—कमलेश्वर

कमलेश्वर की कहानियाँ: चरित्रगत अध्ययन

[अ] स्त्री पात्र—

कमलेश्वर की कहानियों की 'स्त्री' अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को लेकर आयी है, वह किसी की पत्नी है; परन्तु इस रूप में भी वह अपनी अस्मिता और स्वतन्त्र अस्तित्व को भूलती नहीं है, समाज के सभी विभिन्न स्तरों की स्त्रियाँ यहां हैं पर अपनी सम्पूर्ण मजबूरी को, विशिष्टता को और यातनाओं को लेकर, इसके पूर्व की कहानियों में 'स्त्री' के जो विविध रूप मिलते हैं उसका बड़ा सुन्दर विवेचन राजेन्द्र यादव ने एक स्थान पर किया है—"छायावादी युग की नारी; न तो नारी है; न सामाजिक सन्दर्भों में रहनेवाली जीवित इकाई। वह प्रायः निराकार है, एक हवा है जो कवि-हृदय कलाकार को आन्दोलित करती रही है। कथाकार या तो उसके हाड़-मांस के रूप को ही देखने से इन्कार करता रहा है; या उस रूप को देखते ही अपने-आपको आध्यात्मिक ऊँचाइयों से गिरा हुआ पाता है और उसे दानवी कहकर धिक्कारता है।"[1]·····द्विवेदी काल में उसे 'देवी' के रूप में देखा गया तथा प्रगतिवादियों ने उसे शोषण की इकाई के रूप में देखना शुरू किया। वास्तव में भारतीय भाषाओं के साहित्य में नारी या तो शृंगार की पुतली बनकर आयी है अथवा देवी अथवा कुलटा। उसके अन्य रूपों को देखने की कोशिश ही नहीं हुयी। आज का साहित्यकार स्त्री को अलग-अलग इकाइयों में बांटकर नहीं देखता, वह तो उसे एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में ही देखना पसन्द करता है। उसे "देवी या राक्षसी रूप में न देखकर यथार्थ मानवी और समान सामाजिक प्राणी के रूप में (नये साहित्यकारों ने) देखा है, उन्हें मजबूर होना पड़ा है कि नारी को एक सामाजिक समस्या के रूप में देखे।"[2] नारी के प्रति कथाकार न पुरुष की दृष्टि से देखें न स्त्री की दृष्टि से, वह उसे एक सामाजिक इकाई के रुप में देखें; उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को स्वीकार करके देखें—ऐसा आग्रह शुरु हुआ। एक और बात की आवश्यकता थी-कि वह नारी को परम्परा से मुक्त होकर; नैतिक, सामाजिक मानदण्डों के परे जाकर उसकी भीतरी स्थिति को जानने की कोशिश करें। यह कार्य कठिन तो है ही क्योंकि भारतीय सस्कारों के व्यक्ति को इस प्रकार की साफ दृष्टि बड़ी मुश्किल से प्राप्त होती है। साहित्य में अभिव्यक्त उसके परम्पराबद्ध रूप के सम्बन्ध में कमलेश्वर ने लिखा है—"(पुराने साहित्य में) इस

1, एक दुनिया: समानान्तर, भूमिका, राजेन्द्र यादव, पृ० 32

2. वही, पृ० 33

स्त्री का कोई रूप ही नजर नहीं आता, और अगर आता भी है, तो वह है घुंघ के पार खड़ी एक नारी आकृति की कुछ रूप-रेखाओं वाला उसके बाल नहीं, केश या अलके हैं जिनसे नहाने के बाद कुछ बूंदे टपकती हैं, मांग और माथा सिंदूर और बिन्दी लगाने के काम आते है, पलकों का काम केवल जल्दी-जल्दी झपकना या आंसू भर लाना है, कान सुनने के लिए नहीं, लबों को लाल करने भरके लिए हैं, गाल नहीं: कपोल हैं और वे शर्म से लाल होने के अलावा आँसू ढुलकाकर आंचल पर टपकाने के लिए हैं, कन्धे गायब है.....यह वह नारी है जो इलाचन्द्र जोशी की समस्त सेक्स ग्रंथियों के बावजूद प्रसाद से लेकर यशपाल तक हमें मिलती है। वह विद्रोह करके क्रान्तिकारिणी बन जाए, या किसी की पत्नी के रूप में अपने को समर्पित कर दे मर्यादाओं में बंधा उसका रेखाचित्र यही है। आज भी जैनेन्द्रजी को उसका यही रूप आक्रान्त किए है।"[1] यादव और कमलेश्वर के इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि परम्पराबद्ध कहानी में स्त्री किस रूप में व्यक्त आती थी। अलबत्ता प्रेमचन्द ही एक ऐसे अपवादात्मक साहित्यकार हैं, जिनके साहित्य में स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का चित्रण हुआ है, चाहे वह मालती के रूप मे हो या धनिया के रूप में। दो एक अपवादों को छोड़ भी दें तो भी इस बात को स्वीकार करना होगा कि हिन्दी साहित्य में नारी चित्रण के (अ) भोगवादी (आ) आदर्शवादी (इ) घुट घुट कर जीनेवाली (ई) प्रत्येक परिस्थिति के सम्मुख या तो नत मस्तक होनेवाली अथवा परिस्थिति के विरुद्ध जाकर आत्महत्या करने वाली ये ही विविध रूप प्रचलित थे। अज्ञेय की कहानियों में इस नारी के तरल और करुण रूप की अभिव्यक्ति हुई परन्तु नये कहानीकारों ने नारी को एक स्वतन्त्र चेता व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार किया। आधुनिकताकी इस गतिशील प्रक्रिया में नारी की इस मानसिकता को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न हुआ। औद्योगीकरण, शहरीकरण, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता आदि को इस देश में उपलब्धियों के रूप में स्वीकार किया गया। इस शहरीकरण और प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के कारण शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की गयी। परिणामत: पढ़ी लिखी आधुनिक और बुद्धिवादी स्त्री इस देश में उभरने लगी। शहरीकरण तथा बौद्धिकता ने सारे नैतिक मूल्यों को ही चुनौती दे दी है। इसका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव स्त्री के मानस पर होने लगा। वह अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग हो गयी। पुरुष जाति के प्रति जो भय संकोच और मालिक की भावना थी; वह समाप्त होने लगी। शिक्षा तथा व्यवसाय के कारण वे दोनों निकट आने लगें और इस निकटता की कई मानसिक प्रतिक्रियायें हुईं। इन प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होने लगी। इसी निकटता के कारण पुरुष के मन मे स्त्री के प्रति जो गलतफहमियाँ थी; वह कुछ हद तक कम होने लगी। और स्त्री के मन में पुरुष के प्रति जो भय था वह भी कम

1. कहानी: स्वरूप और संवेदना: राजेन्द्र यादव पृ० 36.

होने लगा, इह निकटता के कारण एक दूसरे के प्रति एक दूसरे के मन में तरलता, यौनगत तथा बौद्धिक आकर्षण, कुण्ठा, स्पष्टता आदि परस्पर विरोधी बातें उत्पन्न होने लगी। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि स्त्री-पुरुषों में मात्र यौनगत भेद ही है। बाकी प्रत्येक स्तर पर उन में समानता है। परम्पराबद्ध तथा सनातनी भारतीयों के यह नयी बात थी। प्रजातांत्रिक व्यवस्था के कारण नौकरी तथा अन्य सभी क्षेत्रों में स्त्रियां समान रूप से दिखाई देने लगी। इन सबका संयुक्त परिणाम यह हुआ कि स्त्री अपने व्यक्तित्व के प्रति अत्याधिक सजग हो गयी। अपनी भीतरी 'नारी' का उसे नया साक्षात्कार हुआ। अब तक वह बेटी, बहन, पत्नी तथा मां रूप में ही जी रही थी। परन्तु अब उसे अपने नारीत्व की सुरक्षा अथवा विकास के लिए वह प्रत्येक स्तर पर प्रयत्न करने लगी। इस स्वतन्त्रचेत्ता नारी का चित्रण साहित्य में जरूरी था। अन्य विधाओं की अपेक्षा 'कहानी' में ही उसका यह रूप अधिक निखर आया। इसका यह अर्थ नहीं कि सभी नया साहित्य अथवा नयी कहानी में स्त्री के इसी रूप की अभिव्यक्ति हुयी है। बहुत ही कम साहित्यकार नारी के इस स्वतन्त्र रूप को सशक्तता के साथ उतार सके हैं। अधिकतर साहित्यकारों ने उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व के साथ खिलवाड़ की है। उसे अधिक उछृंखल ही बतलाया है। मोहनराकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म सहानी, शानी, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा आदि कहानीकार उसके इस स्वतन्त्रचेत्ता रूप को शब्दबद्ध कर सके हैं। अन्य कहानीकारों ने इस स्त्री को अपनी मानसिक रति का माध्यम मात्र बनाया है। उनकी कहानियों की स्त्रियां पढ़ी लिखी हैं आधुनिक हैं. पुरुष भी पढ़े लिखे और आधुनिक हैं। परन्तु पुरुषों की दृष्टि रीतिकालीन ही है और स्त्रियां अपने शरीर को पुरुष की थाती मात्र मानती है।

कमलेश्वर की कहानियों की स्त्रियां जीवन के विविध स्तरों से आयी हुयी हैं। कस्बे से लेकर शहर तक की स्त्रियाँ यहां हैं। कस्बे की स्त्री परम्पराबद्ध पद्धति से सोचती है वह पतिव्रता है। पर अन्ध श्रृद्धालु नहीं, गुलाम नहीं, अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग है। राजा निरबसिया की चन्दा इसका प्रमाण है। अपने पति को बचाने के लिए वह कम्पाउन्डर से समझौता कर लेती है। मौत के मुंह से पति को छुड़ा लाने के लिए शरीर को समर्पित कर देती है। परन्तु इसके बाद भी पतिमहाशय अपने स्वार्थ के लिए उसके शरीर का माध्यम के रूप में प्रयोग करना चाहते हैं। तब वह विद्रोह कर बैठती है। यह विद्रोह भी तुरन्त नही है। शरीर का माध्यम के रूप में प्रयोग करने के बाद भी जब पति उसका अपमान करता है उसकी दुश्चरित्रता पर असन्तोष प्रकट करता है तब वह ऐसे पति से विद्रोह कर बैठती है। यह विद्रोह उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का परिचायक ही है।

'बयान' की स्त्री अपने पति की ईमानदारी का बयान कर रही है तथा जज से यह निवेदन कर रही है कि वे पति की आत्महत्या का इल्जाम उस पर न लगाएं

अपितु उस सम्पूर्ण परिस्थिति का विचार करें। "मांस का दरिया" की जुगनू एक संवेदनशील स्त्री है, और एक वेश्या स्त्री अपने मांस के अलावा किसी और दूसरी बात का समर्पण करने में कैसी असमर्थ है यह स्पष्ट कर रही है। "नीली झील" की 'पारबती' विधवा है। परन्तु 'संतति' के मोह के कारण समाज से विद्रोह कर महेश पांडे जैसे एक साधारण व्यक्ति से विवाह कर लेती है। मां बनने के उसके सपने कभी पूर्ण नही हुए। परन्तु विधवा की स्थिति को वह घुट-घुट करके सहती नहीं। निर्भयता से विवाह कर लेती है। उसका यह निर्णय भी उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को ही स्पष्ट करता है, 'नागमणि' की सुशीला विवाह के कुछ घण्टों के बाद ही अपने देवर विश्वनाथ को अपने मन की सही स्थिति बतला देती है। विश्वनाथ से ही उसका विवाह होने वाला था, वह उसको मन-ही-मन चाहती भी थी परन्तु विश्वनाथ की ध्येयवादिता के कारण यह विवाह कैसे संभव नहीं हो सका और मजबूरी से आज उसका विवाह उम्र में उससे काफी बड़े एक विधुर से (विश्वनाथ के दूर के भाई से ही) हो गया है अपनी इस यातना को वह बतला देती है।

'तलाश' की ममी अपने नारी व्यक्तित्व की तलाश में है। "तलाश की नायिका ममी अपने खोये हुए व्यक्तित्व की तलाश में है जो विभिन्न आरोपित सम्बन्धों में लुप्त हो गया है। वह मां होने के साथ ही एक नारी भी है जो अपने पति की मृत्यु के साथ ही अपनी नारी सुलभ भावनाओं को दफना नहीं देती अपितु उन्हें जीवित रखना चाहती है।"[1] प्रस्तुत कहानी में व्यक्ति सत्ता को एक मूल्य के रूप मे ही स्वीकार किया गया हैं। "तलाश की मां सभवत: हिन्दी कहानी की पहली माँ है जो मां होने से पूर्व एक नारी है और जो जीवन में अपने नारीत्व को ही सार्थक करना चाहती है।"[2]

इसी कहानी की युवा लड़की सुमी भी अत्यन्त ही संवेदनशील युवती के रूप में यहां आयी है। वह अपनी मां की मनस्थिति को समझ लेती है। "वह जानती है कि मां की यह व्याकुलता सामाजिक दृष्टि से अनैतिक है किन्तु फिर भी वह इसके लिए मां को दोषी नहीं ठहराती अपितु मां की स्वतन्त्रता में बाधक न बनने के विचार से ही घर छोड़ कर चली जाती है"[3] सभवत: सुमी हिन्दी कथा साहित्य की पहली युवती है जो मां से इस व्यवहार का जवाब नहीं पूछती अपितु स्वयं उन्हें इसके लिए सुविधा प्रदान करती है। यह बौद्धिकता और आधुनिक दृष्टि का ही परिणाम है।

---

1. हिन्दी कहानी: दिग्दर्शन की यात्रा: सम्पादक डॉ. रामदरश मिश्र डॉ नगेन्द्र मोहन समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य सघर्ष की दशा: सविता जैन पृ. 133-134.
2. वही, पृ० 135.
3. वही, पृ. 134.

'आसक्ति' की सुजाता आरम्भ में एक बहन का दर्द लेकर आती है। एक बहन के नाते वह अपनी जिम्मेदारियों का पालन करती रहती है। परन्तु आखिर वह एक नारी है। और एक नारी होने के नाते उसके अपने स्वप्न हैं, उसका अपना भविष्य है। इसी कारण वह विवाह का निर्णय लेती है। विवाह के बाद भाई की उपेक्षा सामान्य सी बात थी। फिर भी यह स्त्री पत्नी और बहन इन दोनों कर्त्तव्यों का निर्वाह करना चाह रही है।

"दिल्ली में एक मौत" में आयी हुयी मिसेज रामवानी सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। सम्पन्न वर्ग की कृत्रिम जिंदगी फैशन परस्ती और संवेदना शून्यता का समन्वय ही उसके व्यक्तित्व में हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष दिये जा सकते हैं—

1. ये स्त्रियां परम्पराबद्ध नहीं हैं, परम्पराबद्ध मूल्यों को ही जीवन की आखिरी कसौटी मानकर जीने वाली ये स्त्रियां नहीं है। व्यवहार, जिंदगी और परिस्थिति के प्रति ये सजग हैं, किसी अल्प श्रेष्ठ मूल्य के लिए वे परम्पराबद्ध जीवन दृष्टि को अस्वीकारने तथा उसके प्रति विद्रोह करने तैयार हो जाती हैं। जैसे राजा निरबसिया की चन्दा अपने पति को मौत के मुंह से छुड़वाने के लिए शरीर समर्पित करने तैयार हो जाती है; कर भी देती है। परन्तु उसके इस शरीर का उपयोग अपने स्वार्थ और व्यवसाय के लिए करने की कोशिश जब जगपती करना चाहता है; तब वह फिर विद्रोह करती है। इस प्रकार यहां दो स्तरों पर विद्रोह है। वह अपने पति की सुरक्षा के लिए शरीर बेचने तैयार है; परन्तु उसके शौक के लिए अथवा व्यवसाय के लिए नही। ठीक इसी प्रकार 'नीली झील' की विधवा पारबती 'संतति' की इच्छा से परम्परा-बद्ध स्थिति को नकारती है और दूसरा विवाह कर लेती है। अर्थात ये स्त्रियां अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग होते हुए भी व्यक्तिवादी, संकुचित और स्वार्थी नहीं हैं। मांस का दरिया की जुगनू उस नरकमय परिवेश में भी अपनत्व की खोज कर रही है; वह अपनत्व जो व्यक्ति विकास के लिए जरूरी है।

2. ये स्त्रियां यथार्थ जिंदगी से जुड़ी हुयी हैं। उनकी पहचान हमें होती है। वे कल्पना के रेशों से बुनी नहीं गयी हैं। आरम्भ से अन्त तक उन्हें 'यथार्थ' ही रखा गया है। जगपती की चन्दा का किसी और के घर जा बैठना यह यथार्थ स्थिति ही है। इन स्थितियों की मनःस्थिति का स्वाभाविक विकास यहां मिलता है। उदात्तीकरण की प्रवृत्ति लेखक में नहीं है। इसी कारण वे जिंदगी से जुडी हुयी लगती हैं।

3. इन स्त्रियों के मानसिक संघर्ष को ही स्वर दिया गया है। यह मानसिक संघर्ष जिंदगी के विभिन्न प्रश्नों को लेकर है। अक्सर स्त्रियों के इस मानसिक संघर्ष में शरीर की उत्कट प्यास ही बतलाई जाती है। अथवा दो पुरुषों को लेकर उसकी द्वन्द्वात्मक स्थिति को स्पष्ट किया जाता है। परन्तु इन कहानियों की स्त्रियाँ जिंदगी

के विविध प्रश्नों से जूझ रही हैं। बयान की स्त्री चन्दा, पारबती, सुजाता, जुगनू की समस्यायें यौन अथवा प्रेम की समस्यायें नहीं हैं। संतति, संम्पत्ति, बेईमानी अपनत्व और जिंदगी की विभिन्न समस्याओं से ये स्त्रियां टकरा रही हैं।

4. आसपास का सम्पूर्ण परिवेश व्यक्तित्व के अस्तित्व को ही नकार रहा है। ये स्त्रियां भी ऐसे ही परिवेश में फंस गयी हैं। इस परिवेश के सम्मुख ये स्त्रियां पराजित सी हुयी हैं। मजबूरी से उन्हें कई गलत निर्णय लेने पड़े हैं। राजा निरबसिया की चदा अथवा मांस का दरिया की जुगनू। यह परिस्थिति इतनी क्रूर हो चुकी है कि वह गलत निर्णय इन स्त्रियों पर थोप रही है। उदा:—बयान की स्त्री पर उसके पति की आत्महत्या का निर्णय, अर्थात् परिवेश इनके विरुद्ध खड़ा है। फिर भी इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी वे अपने व्यक्तित्व को अपनी असलियत को बनाये रखने की पूरी कोशिश कर रही है। परन्तु एक स्तर पर वे भी मजबूर हैं क्योंकि "फैसला.....कुछ तो होगा ही। और वह व्यक्ति के खिलाफ ही हो सकता है। जी; व्यक्ति माने अकेला आदमी, जैसे अकेली मैं.....या आप।"[1] अकेला व्यक्ति और क्रूर परिस्थिति! व्यक्ति की पराजय!

5. जिंदगी के विविध स्तरों से ये स्त्रियां आई हैं। रोज अनेक ग्राहकों से जूझती मांस के दरिया में अपनत्व को खोजने वाली जुगनू भी यहां है; और आरोपित सम्बन्धों से लड़कर अपने नारीत्व की तलाश में लगी 'ममी' भी यहां है; भाई और पति इन दोनों को स्वीकार करके जीनेवाली 'सुजाता' भी यहां है; वैधव्य को नकार कर मातृत्व को पाने के लिए पुनर-विवाह करने वाली पारबती भी यहां है। पति के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने वाली चन्दा भी यहां है। अस्तित्व के लिए संघर्ष रत ये स्त्रियां अपनी भीतरी आधुनिकता को ही स्पष्ट कर रही हैं।

(आ) पुरुष पात्र

कमलेश्वर की कहानियों में पुरुष पात्रों को अधिक महत्व मिला है। प्रगतिशील और जानवादी दृष्टिकोण के कारण कमलेश्वर अक्सर छोटी मोटी लडाइयों के प्रति प्रतिबद्ध हैं। ये लड़ाई आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक मोर्चे पर लड़ी जाती है। इस प्रकार की लड़ाई में पुरुष ही अधिक जम कर खड़ा है। इस कारण इनकी कहानियों में पुरुष पात्र अधिक उभर कर आये हैं।

उनके पुरुष पात्र तीन भिन्न परिवेश से आये हुए हैं-(अ) कस्बे से सम्बन्धित जगपती, वैद्य महेश पांडे, विश्वनाथ, छोटे महाराज। (आ) शहरी वातावरण से सम्बन्धित (दिल्ली) चन्दर, फोटोग्राफर, निवेदक, मदनलाल (इ) महा नगर से सम्बन्धित (बम्बई) विनोद, वीरेन्द्र, पुरुष (उस रात वह मेरे बीच कैंडी पर)।

अपनी परिवेशगत विशिष्टताओं को व्यक्त करते हुए भी ये पात्र आधुनिक जीवन की विसंगति व्यक्ति की असहायता, टूटते जीवन मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष दिये जा सकते हैं—

(1) कस्बाई जीवन के संस्कार इनमें अत्याधिक हैं। इसी कारण ये अधिक यांत्रिक, कृत्रिम और बौद्धिक जीवन जी नहीं सकते। खोई हुई दिशाओं का चन्दर, कस्बे का आदमी का छोटे महाराज, नीली झील का महेश पांडे, मांस का दरिया की जुगनू इस बात के प्रमाण हैं। इन्हें अपनत्व की आवश्यकता है। शहरी जीवन में इसकी संभावना नहीं है। और इसी कारण ये खुद को नितान्त अकेला अनुभव करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ये पुरुष अभी पूर्णतः 'शहरी' (यंत्र) नहीं बन पाये हैं। उनकी भीतरी संवेदनशीलता अभी सुरक्षित है। दिल्ली में एक मौत के निवेदन को मौत के समय पड़ोसियों तथा अन्य लोगों के व्यवहार से कहीं न कहीं चिढ़ है। उन लोगों के इस समय के इतने सहज व्यवहार से वह भीतर-ही भीतर घबरा उठा है। वह मनुष्य की इस संवेदनशून्यता से हताश हो गया है। उसकी यह मनस्थिति उसके कस्बाई संस्कार को ही स्पष्ट करती है। परन्तु मिसेज बासवानी, सरदारजी तथा दूसरे पात्र इतने परेशान और भयभीत नहीं हैं। क्योंकि वे शहर के अंग बन चुके हैं। ये कस्बाई संस्कारों से युक्त पुरुष संवेदनशील, तरल और अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरुक हैं। परिवेश के प्रति अत्याधिक सजग हैं, अपनी भीतरी सौंदर्य की रक्षा में संलग्न हैं; कभी परिस्थिति से हताश होकर आत्महत्या के लिए विवश हैं। और कभी 'रामनाम' शब्द को सुनने के हेतु तोता पालते हैं और मृत्यु के पूर्व भी उस तोते की रक्षा का प्रयत्न करते हैं।

(2) ये कस्बाई पुरुष अत्यन्त स्वाभिमानी और मस्तमौला हैं। छोटे महाराज (कस्बे का आदमी) शिवराज की तरफ से खूब मिठाई खाते हैं। मिठाई के पैसे देते समय शिवराज की मनःस्थिति को वे ताड़ जाते हैं और इसी कारण बाद में नया मँहगा कपड़ा मिठाई के बदले में शिवराज को दे देते हैं। किसी की चापलूसी करने अथवा किसी की दया पर जीना उन्हें पसन्द नहीं। यह स्वाभिमान छोटे महाराज, चन्दर, फोटो ग्राफर, महेशपांडे तथा विश्वनाथ में दिखाई देता है। ये खुद टूट रहे हैं परन्तु टूटते हुए भी वे अपने स्वाभिमान और प्रामाणिकता बचाए रखने की पूरी कोशिश कर रहे हैं।

(3) कुछ ऐसे भी पुरुष हैं (जगपती) जो सम्पत्ति और व्यवसाय के इतने अधीन चले गये हैं कि उसकी प्राप्ति के लिए किसी भी बात का सौदा करने को तैयार हो जाते हैं। इस स्तर पर वे बौद्धिक हैं। आधुनिक हैं; घोर अनास्थावादी और अश्रद्धे हैं। परन्तु आगे चलकर इन्हें इस बात का पश्चाताप होता है और वे आत्म-हत्या का मार्ग स्वीकार कर लेते हैं। संभवतः मूल्यहीन जिंदगी ये जी नहीं सकते।

जगपती की आत्महत्या इसी बात को सिद्ध करती है। इस स्तर पर वह फिर कस्बाई संस्कारों के निकट चले आते हैं।

(4) ये सारे पुरुष परिस्थिति के साथ जूझ रहे हैं अकेले और निशस्त्र। 'राजानिरबंसिया' का जगपती 'बयान' का फोटोग्राफर, 'नीलमणि' का विश्वनाथ, 'खोई हुयी दिशाओं' का चन्दर, 'मांस का दरिया' का मदनलाल, 'आसक्ति' का विनोद। परिस्थिति के साथ जूझते हुए उनके भीतर का बहुत कुछ मर रहा है। और बहुत कुछ नया निर्माण भी हो रहा है। निरर्थकता, मूल्यहीनता, संवेदनशून्यता और आधुनिक भावबोध के मूल्य यहाँ उभर रहे हैं। परन्तु ये मूल्य अकेले पन के एहसास को तीव्र बना देते हैं। इस कारण ये या तो आत्महत्या कर लेते हैं अथवा जीवन से निराश हो जाते हैं।

(5) ये पुरुष पात्र 'संक्रमण' की स्थिति से गुजर रहे हैं। अभी पूर्णतः यांत्रिक और 'शहरी' नहीं बन पाये हैं। कमलेश्वर के पुरुष पात्रों की यही विशेषता है। जिस प्रकार इस काल के कथाकार संक्रमणशील मानसिकता से गुजर रहे थे; ठीक उसी प्रकार ये पात्र भी इसी स्थिति से गुजर रहे हैं। इस अर्थ में इन पात्रों की आधुनिकता गतिशील है; स्थितिशील नहीं। वे अभी कहीं रुके नहीं हैं। इनका रुकना ही आधुनिकता की प्रक्रिया का पूर्ण हो जाना है। पश्चिम की तरह सम्पूर्णतः यांत्रिक और निरर्थक जिंदगी की मानसिकता को स्वीकार करके ये जी नहीं रहे हैं। इसी अर्थ में ये जीवन्त हैं। इनमें ऐसा बहुत कुछ है; जो मूल्यवान है। इस मूल्यवान के टूटने से ये भी टूट रहे हैं। इन्हें जिंदगी की निरर्थकता का परिस्थिति की भयावहता का एहसास हो रहा है। जगपती, चन्दर, विश्वनाथ इसी प्रकार के पात्र हैं। शहर और महानगरीय परिवेश में जीने वाले पात्र भी इसी संक्रमण की स्थिति से गुजर रहे हैं।

(6) ये पात्र प्रतिनिधिक भी हैं और विशिष्ट भी ....."कभी-कभी सामान्य कहानियाँ विशिष्ट को प्रेषित करती जान पड़ती हैं और विशिष्ट कहानियाँ सामान्य को"[1] पात्रों के सम्बन्ध में भी यही सच है। कभी सामान्य पात्र विशिष्टता को प्रेषित करते हैं; (उदा:—कस्बे का आदमी, नीली झील का महेश पांडे) और कभी विशिष्ट पात्र सामान्य को (उदा:—बयान का फोटो ग्राफर)। खोई हुई दिशाओं का चन्दर अथवा असक्ति का विनोद आधुनिक युवकों की मनःस्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। गर्मियों के दिन का वैद्य स्पर्धा के इस युग में पीछे पड़नेवाले प्रौढ़ पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। नीली झील का महेश पांडे सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि की ओर आकृष्ट व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। पात्र सामान्य हो या विशिष्ट

---

1. कस्बे का आदमी : भूमिका : कमलेश्वर, पृ० 9

वे यथार्थ जिन्दगी से चिपके हुए हैं। वे किसी आदर्श, स्वप्न अथवा विचारधारा के लिए परेशान नहीं हैं; प्रतिबद्ध नहीं हैं। वे अपनी जिन्दगी के प्रति प्रतिबद्ध हैं। और इस जिन्दगी के साथ वे अपने तरीके से लड़ रहे हैं। इस कारण उनके तरीके पर वाद-विवाद हो सकता है, उनकी ईमानदारी अथवा उनके अस्तित्व पर नहीं।

(7) इन पात्रों की मानसिकता को ही अधिक प्रश्रय दिया गया है। भीतरी संघर्ष, अन्तर द्वन्द्व, निष्क्रियता, नपुंसकता, ईमानदारी पर विभिन्न मनस्थितियों का प्रामाणिक रूपसे उद्‌घाटन किया गया है। बहन की कमाई पर जीनेवाला विनोद यहाँ है और मजदूरों के चन्दे के रुपये (जुगनू) वेश्या की बीमारी में सहायता के रूप में देनेवाला मदनलाल भी यहाँ है। चन्दे के रुपये जुगनू को देते समय मदनलाल को यह अनैतिकता अथवा मजदूरों के प्रति बेईमानी नहीं लगती। जुगनू ने कहा था "हम भी मजदूर हैं"—शायद यह वाक्य उसके मन में घर कर गया, और उसी कारण जुगनू की बीमारी में सहायता रूप वह चन्दे के रुपये दे देता है। शायद वह यह मानता होगा कि मजदूरों के रुपये एक मजदूर स्त्री की सहायता के लिए ही दिये गये हैं।

(8) ये पुरुष पात्र अपनी जिन्दगी के प्रति सजग हैं; चिन्तित हैं। अपने परिवेश से वे असन्तुष्ट हैं। इस अर्थ में ये प्रगतिशील हैं। आत्मनिरीक्षण भी वे करते हैं; पश्चाताप दग्ध हो जाते हैं और इस अवस्था में अपनी गलती को स्वीकार भी करते हैं। राजा निरबंसिया का जगपती पश्चाताप दग्ध स्थिति में चन्दा के लड़के को अपने लड़के रूप में स्वीकार कर लेता है; भले ही वह उससे न हुआ हो। अर्थ के प्रति अतिरिक्त मोह की भयंकरता से वह इतना परेशान हो जाता है कि आत्महत्या ही कर लेता है। जिन्दगी में मूल्यों की अनिवार्यता को मान्य करने वाले व्यक्ति ही आत्म-हत्या कर लेते हैं। राजा निरबंसिया का जगपती और बयान का फोटोग्राफर इसी कारण आत्महत्या के मार्ग को स्वीकार कर लेते हैं। सम्पूर्ण परिवेश ही अगर इस ईमानदारी के विरुद्ध है तो जिन्दगी जीने से क्या मतलब ? अपनी पत्नी की नंगी तस्वीरें बेचकर भी जो समाज जीने नहीं देता अन्ततः किया क्या जाए ? इस तरह इन कहानियों में अधिकतर पुरुष इस भयावह जिन्दगी से जूझते हुए पराजित हो रहे है; आत्महत्या करते जा रहें हैं। आत्महत्या जिन्दगी से पलायन ही है। परन्तु क्षण-क्षण की मौत की अपेक्षा आत्महत्या ही शायद योग्य मार्ग है।

(9) राजा निरबंसिया का जगपती, आसक्ति को विनोद तथा नीली झील का महेश पांडे विविध सम्बन्धों के सन्दर्भों को लेकर आये हैं। जगपती किसी का पति है और विनोद किसी का भाई। बाकी अधिकतर पात्र केवल 'पुरुष' के रूप में ही आये हैं किसी सम्बन्धों के सन्दर्भों को लेकर नहीं। महेश पांडे का पति रूप अधिक उभरा नहीं है। उपर्युक्त तीनों पात्रों को छोड़ कर अन्य पात्र बाह्य जगत् में ही

संघर्ष कर रहे हैं। इस बाह्य जगत् के कारण आन्तरिक संघर्ष शुरू हो जाता है। पुरानी कहानियों के पात्र इस प्रकार 'शुद्ध पुरुष के रूप में दिखाई नही देते है। वे या तो किसी के पति है; किसी के भाई; किसी के पुत्र अथवा किसी के मित्र। मात्र एक व्यक्ति के रूप में उनकी 'यातना' को अभिव्यक्ति नहीं मिली। उनकी 'यातना' के 'कारण' सम्बन्धों के दायरे में कहीं न कही मिलते थे। ऐसा लगता था कि एक बार इन सम्बन्धों को हटा दिया जाए तो इनकी जिन्दगी में दु:ख ही नहीं हैं। यौन, अर्थ अथवा परिवारगत जिम्मेदारी आदि ही दु:ख के कारण हुआ करते थे। परन्तु इन पात्रों के दु.खों के लिए इस प्रकार के सम्बन्ध कारणीभूत नहीं है। खोई हुई दिशाओं का चन्दर बयान का फोटो ग्राफर, नीलमणि का विश्वनाथ. गर्मियों के दिन का वैद्य, कस्बे का आदमी का छोटे महाराज—इनके दुखों के कारण परिवारगत नहीं परिवेश गत हैं। आरम्भिक कहानियों की समस्याएं 'परिवार' के कारण आरम्भ हो जाती थी और आज की कहानियों की समस्याएं 'परिवेश के कारण आरम्भ हो जाती हैं। इस अर्थ में इनकी यातना का स्वरूप व्यापक, गहरा और सूक्ष्म है। इस यातना के लिए न व्यक्ति जिम्मेदार है, न परिवार। उस के लिए एक सम्पूर्ण प्रस्थापित व्यवस्था जिम्मेदार है। इसीलिए पराजित हो जाने के बावजूद भी पाठकों की सहानुभूति इनको मिल जाती है। प्रेमचन्द के व्यक्ति की समस्याएं आर्थिक अथवा पारिवारिक हुआ करती थी। प्रसाद के व्यक्ति की समस्याएं आदर्श और कर्तव्य की थी। यशपाल का व्यक्ति केवल आर्थिक स्थितियों से परेशान था। इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय का व्यक्ति यौन भाव से पीड़ित था। आज के नये कहानीकार का व्यक्ति प्रस्थापित समाज की संवेदन शून्यता, अमानवीयता, अप्रमाणिकता, बेईमानी, झूठ और पूँछ हिलानेवाली व्यवस्था से दु:खी है। यही उसकी मूल समस्या है। कमलेश्वर के पात्र भी इसी से पीड़ित हैं। डा० सिन्हा के मतानुसार—

"ये पात्र वैयक्तिक लगते हुए भी कमलेश्वर के पर्सनल नहीं हैं। वे हमारे जीनेवाले जीवन से ही सम्बन्धित हैं, इन पात्रों का सम्बन्ध कहीं समाज से कटा हुआ नहीं है; और न वे कहीं यथार्थ से मुँह मोड़ते हैं। अपनी स्थिति की वास्तविकता के प्रति सचेत होते हुए भी उन में कहीं जिन्दगी से कतराने की प्रवृत्ति नहीं हैं,…… ……ये पात्र न तो कहीं हवेली की तरह निर्जीव हैं, न कहीं नीलम देश की राज कन्या की खोज मे है और न कहीं हिल्मीबोन की बतखों से अपना जी बहला रहे हैं। वे सब इस पलायनवाद से दूर जिन्दगी की कंटीली राहों पर जूझते हुए नवीन अर्थों एवं मूल्यों की खोज में अनवरत संघर्ष कर रहे हैं।"[1]

1. नयी कहानी की मूल संवेदना; डा० सुरेश सिन्हा, पृ० 110

कमलेश्वर की कहानियाँ: शिल्पगत अध्ययन

"नवीन मूल्यान्वेषण, प्रयासहीन शिल्प, प्रभावशाली भाषा, सजग सामाजिक चेतना, प्रगतिशील मानदंड एवं सौद्देश्यता कमलेश्वर की कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।"

—डा० सुरेश सिनहा

"कला के स्तर पर कहानी मेरे लिए बहुत कठिन विद्या है। हर कहानी एक चुनौती बनकर सामने आती है और उसके सब सूत्रों को संभालने में नसें फटनी लगती हैं—यह कठिन परीक्षा का समय होता है.....तमाम ऐसी तकलीफें मुझे उसी वक्त सताती हैं और मैं भागता रहता हूं.....यह भागना तब तक चलता रहता है, जब मैं भागता रहता हूं.....यह भागना तब तक चलता रहता है जब तक अनुभव अनुभूति में आत्मसात् नहीं हो जाता। उसके बाद लिखना मेरी मुक्ति का प्रयास बन जाता है।"

– –कमलेश्वर

कमलेश्वर की कहानियां : शिल्पगत अध्ययन

वास्तव में यह समीक्षा का बहुत बड़ा संकट है कि एक ओर यह कहा जा रहा है कि आधुनिक कहानियों का मूल्यांकन परम्पराबद्ध कहानीकला के तत्वों की दृष्टि से संभव नहीं है तो दूसरी ओर उसका मूल्यांकन करते समय उन्हीं तत्वों का सहारा लेना पड़ रहा है। या तो यह आधुनिक समीक्षा की मर्यादा है; अथवा ये मानदण्ड चिरंतन है। मानदण्डों की चिरंतना को काल ही सिद्ध कर देगा। यहाँ अलबत्ता यह बतलाने की बार-बार कोशिश की जा रही है कि पुरानी कहानियों में कहानी-तत्वों की सहजता से अलग करके उसका अध्ययन करना संभव था। पुराना लेखक कहानी के शिल्प के प्रति चेतन स्तर तक सजग रहता था। अभिव्यक्ति के समय उसके पास उस कहानी की बुनावट को लेकर एक निश्चित योजना रहा करती थी। उस योजना के अनुरूप वह कहानी लिखता था। "क्या कहना है" इसे वह निश्चित कर लेता था; फिर उसके अनुरूप कथानक निश्चित होता था। "किस तरह से कहना है" इसको भी निश्चित किया जाता था। इस कारण वहाँ शिल्प की चर्चा अलग से संभव थी। परन्तु नये कहानीकारों की अनुभूति और अभिव्यक्ति में अदभूत सामंजस्य होता है। "अनुभव का घनीभूत स्फुरण" अभिव्यक्ति के समय जो भी रूप धारण कर लेगा—वही उसका शिल्प बन जाता है। इस "अनुभव के स्फुरण" को निश्चित रूप का चोला पहनाने का जब कभी प्रयत्न होगा तब इस अनुभव के स्फुरण की तीव्रता कुछ सीमा तक घट जाएगी—ऐसा आज का कहानीकार मानता है। इस कारण शिल्प की चर्चा परम्पराबद्ध तरीके से करना ठीक नहीं है। परन्तु इसके अलावा कोई दूसरा मार्ग भी नहीं है। इसी कारण यहां शिल्पगत विवेचन का अर्थ है—अनुभूति और अभिव्यक्ति में सामंजस्य ढूंढना। जहां कहीं यह सामंजस्य नहीं है; वहां यह कहा जा सकता है कि शिल्प की प्रधानता है अथवा अनुभूति के अनुरूप शिल्प नहीं है अथवा अनुभूति प्रखर नहीं है।

शिल्प का आकर्षण लेखक को कई बार ख़तरे में डाल देता है। शिल्पगत आकर्षण के कारण कई बार कथ्य पर न्याय नहीं हो पाता। राजेन्द्र यादव का 'शह और मात' उपन्यास इसका प्रमाण है। डायरी शैली के अतिरिक्त मोह के कारण वहां कथ्य प्रभावी नहीं हो सका है। संभवतः इसी कारण कमलेश्वर ने एक स्थान पर

---

1. हिन्दी कहानी : पहचान और परख : डा० इन्द्रनाथ मदान पृ० 43

लिखा है—"फार्म का यह झमेला बहुत खतरनाक होता है। क्योंकि यह इतना दबाव डालता है कि कभी-कभी कहानी वह नहीं बन पाती, जो उसकी नियति थी"[1] अर्थात कहानीकार पर शिल्प हावी न हो। शिल्प की बुनावट अपने आप होती चले। कहानी लिखी जा रही है बिना किसी प्रभाव के; शिल्पगत चेतना के। यूँ एक मूड़ में; एक विशेष मनःस्थिति में, अनुभव के घने स्फुरण में लिखी गई कहानी का शिल्प कथ्य की आंतरिकता से गहरे रुप में जुड़ा हुआ होगा। राकेश ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि—"शिल्प का विकास लेखक की प्रयोग—चेतना पर इतना निर्भर नहीं होता जितना उसकी वस्तु की आंतरिक अपेक्षा पर।.....अर्थात् वस्तु को शिल्प से अलगाया नहीं जा सकता, प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं होता; संकेत के लिए संकेत नहीं दिया जाता, यह सृजन के भीतर से उभरता है।"[1] अनुभूति से अभिव्यक्ति तक ही यह प्रक्रिया ही सृजन प्रक्रिया है। अनुभूति के प्रति लेखक जितना प्रामाणिक होता है; अभिव्यक्ति के स्तर पर भी वह उतना ही प्रामाणिक होगा ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। अत्यन्त सुन्दर, मर्मस्पर्शी तथा करुण कथ्य को कलात्मक स्तर पर पहुंचाने में असफल लेखकों की कमी यहाँ नहीं है। इसी कारण अनुभूति की मौलिकता ही लेखक की श्रेष्ठता साबित नहीं करती। अपितु अभिव्यक्ति' की कलात्मकता भी उतनी ही महत्वपूर्ण बात है। इसी अभिव्यक्ति के स्तर पर लेखक आम आदमी से हटकर विशिष्ट बन जाता है। परन्तु मात्र 'कलात्मक अभिव्यक्ति' यह किसी भी लेखक की अन्तिम कसौटी नहीं बन सकती। इन दोनों का अद्‌भुत समन्वय ही किसी रचना के श्रेष्ठता के लिए जरूरी है। यह समन्वय किसी प्रमोगशाला में किया गया वस्तुओं का समन्वय भी नहीं है। अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति जब सहजता से जुड़ जाती है (यह जुड़ना इतना स्वाभाविक हो कि दोनों को अलग करना ही संभव न हो) तभी यह समन्वय हो जाता है। वास्तव में समन्वय, जुड़ना आदि शब्द भी इस दृष्टि से गलत लगते हैं। इसे हम आन्तरिक एकता भी कह सकते हैं। इस आन्तरिक एकता के बाद ही कहानी शब्दों के माध्यम से अपने आप व्यक्त होने लगती है। वास्तव मे यह एक जटिल प्रक्रिया है। कमलेश्वर के अनुसार—"कला के स्तर पर कहानी मेरे लिए एक बहुत ही कठिन विद्या है। हर कहानी एक चुनौती बनकर सामने आती है और उसके सब सूत्रों को संभालने से नसें फटने लगती है।..... तमाम ऐसी तकलीफें मुझे उसी वक्त सताती है और मैं भागता रहता हूं.....यह भागना तब तक चलता रहता है, जब तक अनुभव अनुभूति में आत्मसात् नहीं हो जाता। उसके बाद लिखना मेरी मुक्ति का प्रयास बन जाता है।"[2] जिन्दगी.जिन्दगी

---

1. हिन्दी कहानी : अपनी जबानी : डा० इन्द्रनाथ मदान पृ० 28
2. धर्मयुग, 8 नवम्बर 1964; आत्मकथा : कमलेश्वर पृ० 39

के अनुभव : अनुभव का अनुभूति में परिवर्तन : अभिव्यक्ति इस तरह कहानी की सृजन यात्रा है। जिन्दगी के विविध अनुभव व्यक्ति चेतन स्तर पर ग्रहण करता है। इस ग्रहण में स्थूलता है, तटस्थता है। ये सारे अनुभव अचेतन स्तर पर इकट्ठे होते हैं; एक दूसरे से टकराते हैं अथवा समन्वित हो जाते है; इनके टकराने से अथवा समन्वित होने से लेखक को जिन्दगी की किसी यातना का, दुःख का एहसास हो जाता है। यह यातना उसे भीतर ही भीतर कचोटती है और अचानक अनुभूति के चेतन स्तर पर पहुंचती है। अनुभूति के स्तर तक इस प्रकार आने के बाद ही व्यक्ति अस्वस्थ, बेचैन अथवा तकलीफों से पीड़ित हो जाता है। इस अनुभूति को अभिव्यक्त करना उसकी मजबूरी बन जाती है। इसकी अभिव्यक्ति से ही उसे मानसिक समाधान (अथवा मुक्ति) मिलता है। इसी कारण 'लिखना' यातनाओं को झेलना ही है। इस तरह इस यातनामय अनुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति वह कर देता है। अर्थात् बाहरी प्रभाव से मुक्त होकर। वास्तव में इस 'तीव्र अनुभूति' के समय वह किसी बाहरी स्थिति को ग्रहण करने की स्थिति में नहीं होता। इस अनुभूति को वह उसकी समग्रता से वह भोगते रहता है, उसी स्थिति में चला जाता है। अब चेतन स्तर पर वह यह नहीं सोचने बैठता कि 'इसे किस तरह से व्यक्त करूं ? इस तरह से सोचने का अर्थ ही है; अनुभूति की उस विशेष स्थिति से दूर चले जाना। इसी अर्थ में 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' में आंतरिक एकता होती है। नये कहानीकारों की सृजन प्रक्रिया इस प्रकार की हो सकती है। (क्योंकि एक लेखक ही इस संदर्भ में सही बात कर सकता है और फिर प्रत्येक की भीतरी प्रक्रिया अलग हो सकती है) परम्परागत कहानी लेखक अनुभव को अनुभव के रूप में व्यक्त करते रहे, अथवा अनुभव को 'अनुभूति के स्तर पर झेल लेने के बाद अथवा उसको जी लेने के बाद फिर अभिव्यक्ति का काम करते थे। अनुभूति को सम्पूर्णतः जीकर जब वे लिखने बैठते थे; तब उनके सम्मुख कहानी कला के तत्व भी होते थे। एक तरफ अनुभूति और दूसरी तरफ कहानी-कला। इन दोनों में समन्वय करने की कोशिश वे करते थे। अथवा अनुभूति के अनुकूल शिल्प ढूंढते बैठते थे। दूसरा सीधा प्रभाव अनुभूति की प्रखरता पर होता था। प्रखरता कम हो जाती थी और शिल्प प्रधान हो जाता था।

कमलेश्वर की कहानियों में शिल्प के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष दिए जा सकते हैं—

(1) लेखक के अपने पहले दौर से कमलेश्वर शिल्पगत चेतना से सजग हैं। कथ्य के अनुरूप शिल्प बदलने की इन्हें आवश्यकता महसूस हो रही थी। या यूँ कहें कि इनका कथ्य अपनी प्रकृति के अनुसार नये-नये रूप धारण कर रहा था। परम्परा-वाद पद्धति से अनुभूति को व्यक्त करना कठिन हो रहा था। इस नयी अनुभूति ने नये शिल्प की उद्भावना की है। उदाहरण—राजा निरबंसिया का शिल्प; दो युगों के

बदलाव को कमलेश्वर रखना चाह रहे हैं। बचपन में माँ द्वारा कही गयी कहानी अचेतन मन में है और इधर जगपती की नये जीवन की नयी कहानी। ये दोनो कहानियाँ परस्पर विरोधी हैं। परन्तु इसके विरोध से ही दो युगों के बदलाव को रखा जा सकता है। इस कारण ये दोनों कहानियाँ समानान्तर चलने लगती है; और इस तरह एक नये शिल्प का जन्म यहाँ हो जाता है। "राजा निरबंसिया से एक बात स्पष्ट हो गई है कि जीवन की विविध और विरोधी संवेदनाओं, उसके अंतर्वाह्य सघर्षों और सक्रान्ति को अभिव्यक्त करने के लिए कहानी का पुराना ढांचा और शिल्प बदलने की आवश्यकता है। इसीलिए राजा निरबंसिया दृष्टि या चेतना से अधिक रूप (फार्म) के संक्रमण (ट्रान्जीशन) की प्रतीक है।" इस कहानी मे कमलेश्वर शिल्प के विरोध में जाकर उन्होने इस प्रकार की कहानी लिखी है; ऐसा धनंजय वर्मा का कहना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि लेखक इस कहानी में शिल्प के प्रति सजग है। परन्तु शिल्पगत सजगता ने अनुभूति की प्रखरता को कम नही किया है। उलटे इस प्रकार के विशिष्ट शिल्प ने कहानी की भीतरी यातना को अधिक तीव्र बना दिया है।

इस दौर की अन्तिम कहानी 'नीली झील' के शिल्प पर काफी टिका हुई है। डा० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार—"कविता की उदास छाया कहानी पर मंडराती है। पारबती के चल बसने के बाद कहानी अपने पाँवों पर चलने के बजाय लेखक के सहारे लगड़ाने लगती है।.....राजा निरबसिया की तरह कमलेश्वर इस कहानी में नये माध्यम की आजमाइश करना चाहते हैं। पहली की रचना-प्रक्रिया कहानी में कहानी है और दूसरी का सृजन कविता और कहानी के दो धरातलों पर किया गया है।"[1] इसमें कोई संदेह नहीं कि इस कहानी में काव्यात्मकता अधिक उभर कर आयी है। परन्तु यह काव्यात्मकता विशिष्ट प्रकार के कथ्य के कारण है। अगर लेखक इस प्रकार की काव्यात्मकता का वातावरण पैदा न करता तो वह महेश पांडे की उस सूक्ष्म सौंदर्य की प्यास को उद्घाटित न कर सकता। कथ्य की विशिष्टता के कारण इसका सृजन कविता और कहानी के धरातल पर हुआ है यह निस्संदेह! कविता और कहानी इन दोनों का अद्भुत समन्वय यहाँ हुआ है।

(2) पहले दौर की इन कहानियों में शिल्प के दर्शन होते हैं। कहानी का आरम्भ किसी मनःस्थिति, घटना वातावरण का चित्रण अथवा ऐसी ही किसी स्थिति से शुरू हो जाता है। यह स्थिति विकसित होने लगती है। फिर पाठकों को पात्रों के नाम, उनकी स्थिति अथवा उनके सम्बन्धों का एहसास हो जाता है। आरम्भ में कही पर भी पात्रों का परिचय नहीं होता अथवा कहानी के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार

---

1. हिन्दी कहानी : अपनी जबानी : डा० इन्द्रनाथ मदान पृ० 120

के संकेत नहीं होते । अनुभूति की उस विशिष्ट स्थिति के साथ एक पाठक एकदम जुड़ जाता है । पात्रों की उस विशिष्ट मानसिकता को वह स्वीकार कर लेता है बिना उसके परिचय के हो । यह स्थिति काफी दूर तक चलती है । बीच में अचानक कहीं तो उन पात्रों के साथ पाठकों का विस्तार के साथ परिचय कराया जाता है। बिना किसी परिचय के ही पाठक उन पात्रों की मानसिकता को जीने लगता है । अनुभूति की प्रखरता के कारण ही ऐसा संभव होता है । यह शिल्पगत विशिष्टता कमलेश्वर की अधिकतर कहानियों मे मिलेगी । पहले दौर से लेकर तीसरे दौर तक ।

'खोई हुई दिशाएं' में दूसरे तीसरे पृष्ठ पर चन्दा का परिचय दिया जाता है । 'गर्मियों के दिन मे' वैद्यजी का परिचय दूसरे पृष्ठ के उत्तरार्ध से शुरू हो जाता है । 'बयान' कहानी में फोटो ग्राफर के सम्बन्ध में चौथे पृष्ठ पर जानकारी दी गयी है । 'नीली झील' में तीसरे पैराग्राफ पर महेश पाँडे के सम्बन्ध में थोड़ा सा सकेत दिया गया है । 'नागमणि' में विश्वनाथ का परिचय छठे पृष्ठ पर दिया गया है । 'आसक्ति' में सुजाता और विनोद की पिछली जिन्दगी की चर्चा 11 वे पृष्ठ पर की गयी है । उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कमलेश्वर पात्रों का परिचय देने में जल्दबाजी नहीं करते । उस स्थिति को जीते समय जहाँ जरूरत पड़े वहाँ पिछली जिन्दगी के सकेत अथवा वर्णन अपने आप आ जाते है ।

(3) इनकी अधिकतर कहानियों के केन्द्र में 'मनःस्थिति' ही है । इस मनः स्थिति का स्वाभाविक विकास बतलाया जाता है । पात्र उस विशिष्ट मनःस्थिति को जीने लगते हैं । मनःस्थिति और वातावरण में अभिन्नता स्थापित हो जाती है । धीर-धीरे यह मनःस्थिति एक विशिष्ट ऊंचाई तक चली जाती है; और यहीं कहानी समाप्त हो जाती है । इसे हम 'मनःस्थिति की चरम सीमा' कह सकते हैं । पुरानी कहानियों में घटनाओं के भीतरी संघर्ष अथवा नायक-नायिका के प्रयत्न के कारण कहानी एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच जाती थी; जहाँ पाठकों की उत्सुकता चरम उत्कर्ष पर चली जाती थी । और इसी बिन्दू को "चरम सीमा" कहा जाता था । पुरानी कहानियों में इसका अस्तित्व होता ही था । अर्थात् वहाँ चरमसीमा की मूल में बाह्य कारण-घटनाएं, प्रयत्न, खलनायक, संघर्ष आदि होते थे । अब "मानसिक स्थिति" की 'विशेष अवस्था' ही चरमसीमा है । अकेलेपन की मनःस्थिति को लेकर जीने वाला चन्दर अन्त में अपनी सोई हुई पत्नी को जगाकर पूछने बैठता है कि क्या वह उसे पहचानती है ? नीला झील का महेश पाडे मन्दिर बनवाने के बजाय झील खरीद लेता है । तलाश की ममी की उदासी अंतिम वाक्य द्वारा स्पष्ट हो जाती है । माँस का दरिया जुगनू मदनलाल को बुलवाना चाहती है । इस प्रकार इन कहानियों में भी यह 'चरम स्थिति' है । परन्तु यहाँ मन की चरम

अवस्था है घटनाओं की नहीं। इसी चरम अवस्था के कारण पाठकों की उत्सुकता अ त तक बनी रहती है।

(4) डा धनजय वर्मा ने अपने एक लेख में इनकी कहानी यात्रा के सम्बन्ध मे लिखा है कि वे पहले परम्परा और परिवेश बोध के प्रति फिर परिवर्तित सामाजिक सन्दभ और यथाथ के प्रति और फिर रूप और शिल्प के प्रति जागरूक रहे हैं।[1] कथ्य शिल्प और शैली के दायरे को वे हर बार तोड़ते आगे निकल जाते हैं। कथ्य के अनुकूल शिल्प अपने आप तयार हो जाता है। इसी कारण कथ्य के वृत टूटने के बाद शिल्प के वृत भी अपने आप टूटते जाते हैं।

---

1 नयी कहानी दशा दिशा संभावना संपादक–सुरेन्द्र पृ० 92

कमलेश्वर की कहानियाँ : भाषागत अध्ययन

भाषा

कमलेश्वर की भाषा पर विचार करते हुए डा० शिवप्रसादसिंह ने अपने एक निबन्ध में लिखा है कि—"कमलेश्वर की भाषा की मूल प्रवृत्ति मुंशी स्टाइल की है।"[1] अर्थात् जहां तक भाषा का सवाल है कमलेश्वर सीधे प्रेमचन्द से जुड़े हुए हैं। भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में दुराग्रही नहीं हैं। 2 दिसम्बर 1973 के धर्मयुग में कमलेश्वर का एक लेख छपा है—"बराए मेहरबानी, आम आदमी की तकलीफ को हिन्दी और उर्दू की तकलीफ में तकसीम न कीजिए।" इस लेख के आधार पर उनके भाषागत विचार जाने जा सकते हैं—उनके अनुसार 'भाषा की कोई जाति नहीं होती। एक जनता अपने जज्बातों, जरूरतों और संघर्षों के लिए भाषा को पैदा करती और इस्तेमाल करती है उसे लेकर जीती या मरती है।'[2] आलोचकों ने यह निष्कर्ष दिए हैं कि वे उर्दू मिश्रित हिन्दी अधिक लिखते हैं। परन्तु कमलेश्वर भाषा को इस प्रकार उर्दू और हिन्दी में विभाजित करके प्रयोग करने वालों में से नहीं हैं। वे इन दोनों भाषाओं को एक मानकर चलते हैं। उनके अनुसार सवाल हिन्दी अथवा उर्दू का नहीं, आम आदमी की लड़ाई का और उस लड़ाई के लिए उपयोगी भाषा का है। आधुनिक भारत में सर्वहारा वर्ग की जो लड़ाई चल रही है, वह महत्वपूर्ण है। 'यह लड़ाई भाषा की नहीं, आर्थिक सामाजिक और ज्यादा आधारभूत हकों की लड़ाई है, कि यह लड़ाई हर वक्त लड़ी जा सकती है सिर्फ चुनाव आने के वक्त राजनीतिक हुक्मरानों, पूंजीपतियों और सत्ताधारियों के सामने पूंछ हिलाकर और पंडाल में प्रशस्तियां पढ़कर नहीं लड़ी जाती, यह एक मुश्तरका लड़ाई है और मुश्तरका जबान में ही लड़ी जा सकती है।"[3] वास्तव में कमलेश्वर के पात्रों की जबान इसी तरह की मुश्तरका जबान है। नये साहित्यकार हिन्दी और उर्दू के झगड़े को और उलझाने के बजाय इन दोनों में समन्वय करने की कोशिश करते रहे हैं। शिल्प की तरह ये लेखक भाषा के प्रति चेतन स्तर पर जागरूक नहीं है। उस तीव्र अनुभूति के स्फूरण के समय जो भी शब्द सूझते जाएंगे उसे वे लिखते हैं। बाद में अलबत्ता व्याकरण के संस्कार उस पर वे करते है, शब्दों के चुनाव के नहीं। इसीलिए—"हिन्दी और उर्दू का यह मसाला बहुत हद तक नये साहित्य में

---

1 आधुनिक परिवेश और नवलेखन डा० शिवप्रसादसिंह पृ० 185

2 धर्मयुग–2 दिसम्बर 1973 पृ० 12, 13

3 वही पृ० 12, 13

सुलझा लिया है, क्योंकि वह जनवादी चिंताओं का साहित्य है।'[1] भाषा के सम्बन्ध में इस प्रकार का स्वस्थ जनवादी दृष्टिकोण स्वीकार करने के कारण ही कमलेश्वर आगे लिखते हैं—"यह वक्त भाषा को बचाने का नहीं, भाषा को जनता की वाणी से जोड़ देने का है, और अंततः यह मान लेने का है कि लेखक भाषा नहीं बनाता। भाषा को जनता बनाती है लेखक उसका संस्कार जनता के हित में करता है और लेखक इतना अहंवादी हो जाता है कि वह जनता को भाषा देने लगता है तो जनता अपने नये लेखक पैदा करती है और भाषा की जड़ता को तोड़ती है।" स्पष्ट है कि कमलेश्वर उस पीढ़ी की टीका कर रहे हैं, जो भाषा के क्षेत्र में अहंवादी बन चुकी थी। अज्ञेय ने इसी मसीहाई अंदाज में कहा था कि मैं एक नयी भाषा का निर्माण कर रहा हूं। स्वाभाविक रूप से ऐसी भाषा को जनता ने स्वीकार नहीं किया। नयी पीढ़ी के साहित्यकार 'जनता की भाषा' लेकर आये 'साहित्यिक भाषा' की जड़ता को तोड़ गए। आज की हिन्दी, बावजूद कुछ हिन्दी लेखकों के 'अपनी पूरी प्रकृति और रंगत में उसी हिन्दी का विकसित होता हुआ रूप है, जो भारतेंदु और प्रेमचंद नागार्जुन से होती हुई आज की नयी पीढ़ी के समर्थ लेखकों तक आती है।'[2] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि कमलेश्वर भाषा के क्षेत्र में किस परम्परा से जुड़े हैं। 'आम आदमी' की भाषा का प्रयोग—जिसकी शुरूआत हिन्दी में प्रेमचंद से हुई है उसीसे कमलेश्वर जुड़े हुए हैं। एक बार इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद फिर यह देखने की जरूरत नहीं पड़ती कि उनमें उर्दू के कितने शब्द हैं। संस्कृत, अंग्रेजी अथवा फारसी के कितने हैं उनकी भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन तो नहीं करना है। सर्वसाधारण बोलचाल की भाषा में जिस प्रकार के शब्द आते हैं, उसी प्रकार के शब्द उनकी भाषा में भी हैं। इनकी भाषा न कहीं कठिन है न बहुत अलंकारिक न कहीं चमत्कारिक। डा० शिवप्रसादजी के अनुसार 'कमलेश्वर फारसी के बहुत आम शब्दों के इस्तेमाल से अपनी भाषा में कलात्मक सलवटें डालते हैं।"[4] यह इस्तेमाल जान बूझकर नहीं होता है। उस कहानी के पात्रों के व्यक्तित्व की पहचान उस विशिष्ट भाषा से होती है। इस प्रकार यह भाषा उन पात्रों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई रहती है। भाषा पात्रों की बन जाती है, लेखक की नहीं। इसी कारण इनकी भाषा का अध्ययन पात्र परिवेश और उस वक्त की मन स्थिति के संदर्भ में ही करना जरूरी है। भाषा को एक अलग इकाई मानकर अध्ययन करना उसकी जीवंतता को ही नकारना है। संभवतः इसी जीवंतता के कारण डा० शिवप्रसाद ने

---

1 धर्मयुग 2 दिसम्बर 1973, पृ० 12, 13
2 वही, पृ० 12, 13
3 वही पृ० 12 13
4 आधुनिक परिवेश और नवलेखन, डा० शिवप्रसाद पृ० 185

लिखा है—'प्रेमचन्द से विकसित होने वाली हिन्दी कहानी की भाषा मूलतया मुंशी स्टाइल ही रही है और इस दृष्टि से यदि पाठकों को कमलेश्वर की भाषा में ज्यादा रवानी और गमक मिले तो कोई आश्चर्य नहीं।[1] एक ओर वे इनकी भाषा की इस रवानगी और गमक की तारीफ करते हैं तो दूसरी ओर उसकी मर्यादा स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि– 'खरी और प्रभावपूर्ण होते हुए भी कमलेश्वर की भाषा में प्रयोग की शक्ति और नवीनता कम है। यहाँ प्रयोग की शक्ति और नवीनता से क्या तात्पर्य है नहीं मालूम। केवल प्रयोग के लिए प्रयोग करने के पक्ष में कमलेश्वर कभी नहीं रहे। अपनी अनुभूति के दायरे में वे लिखते रहे हैं और इस अनुभूति के अनुकूल भाषा व्यक्त होती गई है। भाषा की नवीनता और भाषा की शक्ति उसकी सम्प्रेषणयता से ही सिद्ध होती है और जहां तक सम्प्रेषणीयता का सम्बन्ध है— कमलेश्वर की भाषा निश्चित रूप से अत्याधिक सफल रही है। कथ्य, चरित्र और वातावरण के अनुकूल भाषा का सृजन यहां हुआ है। या यू कहे कि इनमें (कथ्य चरित्र) और भाषा में अद्भुत आतरिक एकता है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ जसे उसकी अपनी भाषा, उसके अपने शब्द और उन शब्दों के सन्दभ जुड़े रहते हैं, ठीक उसी प्रकार इन कहानियों के पात्रों के साथ उनकी भाषा जुडी हुई है। भाषा की इसी शक्ति के कारण डा० सुरेश सिन्हा ने लिखा है— कमलेश्वर की भाषा भी बड़ी मंजी हुई है। उर्दू और अंग्रेजी के सामान्य प्रचलित शब्दों को आवश्यकतानुसार शामिल कर उन्होंने अपनी भाषा को अत्यन्त सशक्त साफ-सुथरी एव प्रभावशाली बनाया है जिसमें सादगी के साथ रवानी है। भाषा का यह प्रवाह एव अभिव्यक्ति को यह समर्थता कमलेश्वर में इतनी उत्कृष्ट मात्रा से मौजूद है कि कभी कभी कमजोर सी लगने वाली कहानी भी एक धन सी प्रतीत होने लगती है।[3]

---

1 आधुनिक परिवेश और नवलेखन, डा० शिवप्रसाद, पृ० 185

2 वही पृ० 185

3 नयी कहानी की मूल सवेदना, डा० सुरेश सिन्हा, पृ० 110

परिशिष्ट

आज की कहानी अध्ययन अध्यापन की समस्याएँ

अध्ययन अध्यापन ये दो अलग अलग क्रियायें होने के बावजूद भी एक के बाद ही दूसरे की सभावना होती है। योग्य दिशा के अध्ययन से ही योग्य अध्यापन की सभावना होती है। इसी कारण कहानी के अध्ययन की दिशा अगर सार्थक और सही है तो फिर अध्यापन भी योग्य दिशा से चल रहा है ऐसा निष्कर्ष दिया जा सकता है। आज के अध्यापन की पहली समस्या अध्यापन से जुडी हुई है। विशेषतः इधर जो एम ए की डिग्री लेकर प्राध्यापक बन रहे हैं उनके अध्यापन पर कई *प्रश्न चिन्ह लगाये जा रहे हैं। परन्तु असलियत यह है कि वे जब अध्ययन कर रहे थे* तब सही दिशा से उनका अध्यापन हो नहीं सका। परिणामस्वरूप प्राध्यापक बन जाने के बाद वे पुराने ढर्रे से ही विषय का विवेचन करने लगे। इधर अक्सर अध्यापन के क्षेत्र में नयी पीढ़ी और पुरानी पीढी की बात कही जा रही है। पुराने नये पर आरोप लगा रहे हैं कि वे सही दिशा से अध्यापन कर नहीं रहे हैं। अध्ययन ये लोग करते नहीं है। कहानी की हत्या कक्षाओं में ये लोग करते रहते हैं। ये गैरजिम्मेदार हैं।' दूसरी ओर इस नयी पीढ़ी का कहना है कि हम जब पढ रहे थे तब हमें इसी ढग से पढ़ाया गया। विषय का विस्तार नहीं किया गया। आज हम पूर्णत मजबूर हो गये हैं। हमें सही रूप में ढाला नहीं गया। हमारे अध्यापन की गलत दिशा के लिए हम नहीं ये जिम्मेदार है।' ये दो परस्पर विरोधी स्वर सुनायी देते *हैं। एक ओर परस्पर आरोपों की यह स्थिति है तो एक तीसरी स्थिति भी है जो इन* सबसे महत्वपूर्ण है।

प्राध्यापक का अध्ययन ठीक दिशा से चल रहा है अध्यापन भी योग्य रूप से हो रहा है, परन्तु परिणाम अपेक्षित नहीं है। इसके लिए भी कुछ कारण है जिसकी चर्चा आगे होगी।

महाविद्यालयीय स्तर पर कहानी तीन प्रक्रियाओं से गुजरती है। प्राध्यापक द्वारा उस कहानी का अध्ययन यह पहली प्रक्रिया। इस पहली प्रक्रिया के भी कई स्तर हैं। (अ) कहानी का अध्ययन सन्दर्भ ग्रंथों के आधार पर करना (आ) उस लेखक की अन्य रचनाओं को पढ़कर कहानीकार की मूल सवेदना को पकडने की कोशिश करना, (इ) कहानी अधिक कठिन महसूस होने लगी तो अपने विभाग के *अथवा अन्य अंग्रेजी अथवा अन्य किसी प्राध्यापक के साथ चर्चा करके समझ लेने की* कोशिश करना। (ई) परम्पराबद्ध पद्धति से कहानी का कथावस्तु चरित्र तथा उद्देश्य की दृष्टि से विभाजन करके अगर यह सभव नहीं हो ये तत्व जबरदस्ती से उस पर लागू करना। (ठ) किसी समीक्षक से पत्र व्यवहार करके शंका निवारण कर लेना।

इन पांचों स्थितियों में से अगर एक भी सभव नहीं हो तो सदर्भ ग्रन्थ मिलते ही नहीं लेखक की अन्य रचनायें पढ़ने की फुर्सत नहीं, इच्छा नहीं, साहित्य से सबधित अन्य सहयोगी प्राध्यापकों से चर्चा करने में सकोच या हीन ग्रन्थी की स्थिति हो रही है किसी समीक्षक या अनुभवी प्राध्यापकों से पत्रव्यवहार करके समय और धन व्यर्थ खच करने की इच्छा नहीं अन्त में एक ही राजमार्ग है, कक्षा में जाकर कहानी पढ़ो, शब्दार्थ दे दो और कुल मिलाकर पूरी कहानी पर आठ दस मिनट में अपनी 'मौलिक समीक्षा दे दो। भारत के अधिकतर म वि में अध्यापन की यही पद्धति है। परि णामस्वरूप कमलेश्वर की तलाश की 'ममी' भ्रष्ट और पतित स्त्री दिखायी देने लगती है, 'कस्बे का आदमी' की कोई विशेषता दिखाई देने नहीं लगती ठंड कहानी उद्देश्य रहित लगती है। मन्नू भडारी के 'बद दराजों का साथ" वाली मंजरी अनैतिक, उच्छृखल और भ्रष्ट दिखायी देती है। इन कहानियों में कहीं पर भी मूल्यों का संघर्ष अथवा आधुनिक मनुष्य की यातना के दर्शन नहीं होते।

कहानी के अध्ययन के बाद कक्षा में जाकर उस कहानी को पढ़ाना अध्यापन करना—यह कहानी पर होने वाली दूसरी प्रक्रिया है। जिस रूप में अध्ययन होता है उसी रूप में उसका अध्यापन भी होता होगा—ऐसा जरूरी नहीं है। कई बार प्राध्या पक यह कहते हैं कि कहानी की मूल सवेदना इस प्रकार की है, परन्तु मैंने इसको ऐसे नहीं पढ़ाया। कुछ और पद्धति से मैंने इसे रक्खा। कहानी की मूल अनुभूति को प्रामाणिकता के साथ समझाने के बजाए प्राध्यापक कहानी की कथावस्तु को अथवा चरित्र को जरूरत से अधिक 'ग्लोरिफाय करते जाता है। 'ग्लोरिफिकेशन" की यह प्रवृत्ति आज के अध्यापन की एक बड़ी समस्या बन गयी है। भीतरी सघष मूल्यों की टूटन तथा मा नसिक बिखराव के बजाय पात्रों के बाह्य व्यवहारों से ही वह निष्कर्ष निकालता है। अध्यापन की इस दूसरी प्रक्रिया में यह बहुत जरूरी है कि प्राध्यापक आधुनिक जीवन के सदर्भ में उस कहानी को देखें। आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक पृष्ठभूमि में वह पात्रों को समझाने की कोशिश करे। पर तु कक्षाओं में पढ़ाते समय वह कहानी को जीवन से कटी हुई एक रजनप्रधान अथवा उद्देश्यप्रधान रचना के रूप में देखता है, परिणामत वह न उसका विस्तार कर सकता है और न उस पर न्याय।

प्राध्यापक के अध्यापन के बाद छात्र उस कहानी को अपनी दृष्टि से समझकर उत्तर पत्रिकाओं में लिख देता है अथवा कभी कभार उस कहानी की चर्चा अपनी मित्र मडलियों में करता है—यह कहानी पर होने वाली तीसरी प्रक्रिया है। इस तीसरी प्रक्रिया से ही आज का अध्यापन किस दिशा से चल रहा है इसका पता चलता है। परन्तु उत्तर पत्रिकाओं को पढ़कर अध्यापन सम्बन्धी निष्कर्ष निकालना एक खतरा मोल लेना है। क्योंकि छात्र अध्यापन की पद्धति से प्रेरित होकर अध्ययन नहीं करता। उसका मूल आधार सस्ती कुजियां अथवा मूल कहानी होती है। अधिकतर छात्र

परीक्षा के दो तीन दिन पहले ही कहानी की पुस्तक खरीदकर कहानियां पढ़ लेते हैं तथा उस पर "मौलिक समीक्षा" लिख देते हैं। कहानियों के प्रति वे सर्वाधिक गैर जिम्मेदार हैं। क्योंकि कहानी के अध्ययन का अर्थ उनके दिमाग में केवल इतना ही है कि पाठ्यपुस्तक में दी हुई कहानी मूलरूप में पढ़कर अथवा कुंजी से पढ़कर अथवा किसी मित्र से सुनकर परीक्षा में लिख देना। वर्षों से यही प्रवृत्ति रूढ हो गयी है। कम अधिक मात्रा में यह प्रवृत्ति पूरे भारत में हैं। इस प्रकार केवल कथावस्तु को ही अपनी भाषा में लिख देने से वह उत्तीर्ण भी हो जाता है। और इसी कारण कहानी को आत्मसात् करके, आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में एक बहुत बड़े कैनवस पर कहानी को देखने की उसकी न इच्छा है और न प्रवृत्ति। इस अनिच्छा के मूल में आज की परीक्षा पद्धति तथा परीक्षक जिम्मेदार है। केवल कथावस्तु के और वह भी अत्यन्त अशुद्ध भाषा में लिख देने से ही हम अंक देने लगते हैं। परिणामत एकाध रात भर कहानी की पुस्तक पढ़कर उत्तीर्ण हो जाने का आत्मविश्वास छात्रों में बढ़ रहा है। छात्रों की इस प्रवृत्ति के कारण प्राध्यापक भी गंभीरता से अध्यापन पर करने के चक्कर में नहीं जाता।

एक दूसरा कारण यह भी है कि कहानियां 'नानडिटेल' में रखी जाती हैं। नानडिटेल का सामान्यत इतना ही अर्थ अपेक्षित है कि सन्दर्भ पूछे न जाना। उस कृति अथवा कहानी का समग्रता से तथा सम्पूर्ण गहराई से अध्ययन। पर तु प्राध्यापक इसका सीधे अर्थ इतना ही लेता है कि विस्तार, गंभीरता तथा गहराई के साथ अध्ययन अध्यापन न करना ही नान डिटेल है। इसी कारण कथावस्तु समझा देने के बाद अध्यापन के दायित्व से वह मुक्ति का अनुभव करता है।

गलत परीक्षा पद्धति तथा नानडिटेल की विशेषता से ये दो महत्वपूर्ण पहलू हैं जिसमें कहानी के प्रति उदासीनता उभर रही है। अध्ययन करने वालों में भी तथा अध्यापन करने वालों में भी।

एक और बड़ी समस्या है कहानी के अध्यापन की। उपर्युक्त समस्या में प्राध्यापक तथा छात्रों से सम्बन्धित थे। यह समस्या खुद कहानी की समस्या है। आज की नयी कहानी सारी परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ रही है। कथ्य शिल्प, भाषा चरित्र इन सब में वह नये क्षितिजों को स्पर्श कर रही है। प्रेमचन्द तक ही है नहीं अपितु अज्ञेय तक कहानियां पढ़ाना सरल है। परन्तु अज्ञेयोत्तर कहानियां अध्यापन के लिए एक चुनौती ही है। भारत के सभी वि वि में अत्याधुनिक हिन्दी कहानियां पढ़ायी जा रही हैं। कमलेश्वर की दूसरे अथवा 'मांस का दरिया' कालेज के स्तर पर पाठयक्रम में रखने का साहस करने वाले वि वि यहां हैं। राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, मोहन राकेश, महीपसिंह श्रीकांत वर्मा धूमनाथसिंह निर्मलवर्मा, ज्ञानरंजन ये वे कुछ नाम हैं जिनकी कहानियां पिछले कई वर्षों से भी डिग्री लेकर एम ए तक की कक्षाओं में पढ़ाई जा रही हैं। पाठ्यक्रम के इस आधुनिकीकरण को लेकर हिन्दी प्राध्यापकों में तीव्र ऐसी प्रतिक्रिया

भी हो-ती रही है। ये प्रतिक्रियाए दो प्रकार की हैं--(अ) नयी कहानियों को पाठ्य क्रम में रखना यह एक अच्छी प्रवृत्ति है। आधुनिक युवकों को उनके परिवेश के साथ कहानी के माध्यम से जोड़ने की यह कोशिश है। छात्रों को भी ये कहानियाँ सरल लगती हैं क्योंकि वे इस स्थिति से सीधे जुड़े हुए हैं। वास्तव में नयी कहानी द्वारा नयी कहानी का नहीं नये परिवेश का, नये मूल्यों का समकालिकालीन स्थिति का अध्यापन कराया जा रहा है यह एक अच्छी प्रवृत्ति है। आज परम्पराबद्ध तथा मनोरजक कहानियो को पढ़ाकर छात्रों को हम जि-दगी से दूर ले जाने के बजाय जि-दगी से जोड़ने का कार्य कर रहे हैं। इसलिए ऐसा पाठ्यक्रम बनाने वाले बधाई के पात्र हैं। दूसरी ओर एक और प्रतिक्रिया ऐसी भी है कि---'ये कहानियाँ शहरी जीवन से सम्बधित हैं। हमारा 90 प्रतिशत छात्र ग्रामीण विभाग से आ रहा है। वह परम्पराबद्ध विचारों को लेकर आया हुआ है। गाँवों में आर्थिक प्रश्न अधिक भयानक है न कि मानसिक उथल पुथल के मूल्यों के बिखराव के। ये नयी कहानिया उसके परिवेश के साथ किसी भी प्रकार से जुड़ी हुई नहीं है। इसीलिए उसको ये कहानियाँ अत्यन्त दुरुह विचित्र बल्कि कुछ हद तक खतरनाक लगती हैं। इन कहानियों को ग्रहण करने की उसकी स्थिति ही नहीं है। ऐसी कहानियाँ पढ़ाना उस पर सरासर अ याय करना है। एक सनातनी दृष्टिकोण यह भी है कि छात्रों को "उपदेशपरक ध्येयवादी श्रेष्ठ मूल्यों की श्रेष्ठता को स्थापित करने वाली कहानियाँ ही पढ़ायी जाए। ढहती सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति को देश के ये युवक ही सभाल सकेंगे। इसलिए उसके पास नयी कहानियों को ले जाना भविष्य के आधार को खत्म करना है।

इन तीन विभिन्न प्रतिक्रियाओं का महत्व अध्ययन अध्यापन की दृष्टि से भी है। क्योंकि आज का प्राध्यापक नयी कहानियों की ओर 'कैमिटेड' होकर देख रहा है। सच्चाई यह है कि यह कहानियां स्वय उसके लिए भी कठिन हैं। इन कहानियों को पढाया कैसे जाए---यह उसके सामने एक बडा प्रश्न है। उसकी समस्या है। (1) परम्पराबद्ध कहानियों का अध्यापन सरल और सभव है। वहाँ विस्तार की गुजाइश है। कहानियों के सम्ब ध में काफी सामग्री उपलब्ध है। नयी कहानियों पर इस प्रकार की सामग्री न मिलना यह उसकी पहली समस्या है। (2) आज की कहानी का परम्पराबद्ध विभाजन करना संभव न होना यह उसकी दूसरी समस्या है। कहानी समीक्षा के नये मानदण्ड और दृष्टियों का अन्वेषण वह नहीं कर पा रहा है। इस प्रकार के नये मानदण्डों से वह परिचित भी नहीं है। कहानी को स्थूलखातों, कट घरों में विभाजित कर चीरफाड़ करने की उसकी आज तक की प्रवृत्ति रही है। कथानक, चरित्र वातावरण, देशकाल और उद्देश्य के बर्गीकृत-कटघरे के प्रत्येक कहानी को खड़ा करके कुछ बेबुनियाद प्रश्न उठाकर कहानी में वह कुछ निकालना

जो उसका प्राणतत्व नहीं है।"[1] यही कहानी पढ़ाने की प्राध्यापकीय शैली रही है। कहानी को भावप्रधान, चरित्रप्रधान, उद्देश्यप्रधान और वातावरणप्रधान वर्गों में बाँटकर ही वह आगे चलना चाहता है। लेबल लगाये बगैर अध्यापन यह उसकी समझ के बाहर की चीज है। समीक्षा की इसी परम्परागत पद्धति को लेकर जब वह नयी कहानी की ओर देखने लगता है तो स्पष्ट है। नयी कहानी ऐसे वर्गीकृत कटघरे में खड़े होना नकारती है। और तब उसके सामने एक समस्या खड़ी हो जाती है कि इसे कैसे पढ़ाया जाये। इन कहानियों में न महान आदर्श है और न संदेश। (3) स्पष्ट रूप से तथा कहानी के प्रति प्रामाणिक रहकर कैसे पढाया जाए यह उसकी तीसरी समस्या है। आज की मानसिक स्थिति को, मूल्यो के विघटन को स्पष्ट रूप से रखने में उसे संकोच है। इसी कारण हीन ग्रंथि से तथा सकोच से मुक्त होना आज के प्राध्यापक के लिए अत्यधिक जरूरी है 'तलाश' की ममी का चित्रण करते समय वह सोचता है कि जवान लड़की के घर में होते हुए मा का सम्बन्ध किसी और से होता है—यह मैं कैसे समझाऊ ? सामने बैठी हुई लड़कियाँ अथवा लडके क्या समझेंगे ? वापसी पढ़ाते समय उसका मन यह स्वीकारना नहीं चाहता है। कि पत्नी, बेटा बहु ये सब मिलकर घर में सबसे आवरणीय और बड़े को बाहर निकाल सकते हैं। इसी कारण इन कहानियों को पढ़ाते समय वह इनकी मूल सवेदना को अपनी आवश्यकतानुसार या रुचि अनुसार मोड़ देता है। वास्तव में आज का प्राध्यापक स्वय परम्पराबद्ध विचारों से अलग हटकर तटस्थता से जब तक कहानी की सही संवेदना को पकड़ने की कोशिश नहीं करेगा तब तक कहानी के अध्यापन की समस्या बनी रहेगी। परम्परागत सामाजिक मूल्यों से, परम्परागत कहानी पद्धति से, रूढ समीक्षा से एकदम अलग हटकर कहानी के पात्रों के साथ तादात्म्य होकर जब वह कहानी की मूल सवेदना के भीतर उतरेगा तभी वह आज की कहानी पर न्याय कर पाएगा। यह तभी सभव है जब वह अपने परिवेश के साथ सही अर्थों में जुड जाएगा। यह वास्तविकता है कि आज का शिक्षित व्यक्ति अपने परिवेश के साथ गहरे रूप से सम्प्रक्त नहीं है। पुरानी सामाजिक परम्पराओ को वह भले ही छोड़ने का नाटक कर रहा हो परन्तु मन तथा बुद्धि से वह उन्हीं से चिपक बैठा है। विशेषत मध्यवग तो इसी का शिकार है। और प्राध्यापकी व्यवसाय के अधिकतर लोग मध्यवग से आये हुए हैं। यह मध्यवर्गीय सस्कार उसे कहानी की ओर पुरानी मान्यताओं से देखने को मजबूर कर देती हैं। साहित्यिक मा यतायें भी पुरानी तथा समाज और जीवन की ओर देखने की दृष्टि भी पुरानी। एक बार सम्पूर्ण व्यवस्था के भीतर की विसगति, द्वन्द्व, मूल्यों की टकराहट मजबूरी आदि का गहराई से एहसास हो जाए तो फिर कहानी सबसे सरल लगती है। फिर तो वर्गीय विभाजन ही गलत लगता है। पिछले

1, कहानी नयी कहानी—पीढ़ियों और दृष्टियों का अन्तर प्रसन्नकुमार ओझा

25 वर्षों स इस देश की मानसिक बुनावट में जो सूक्ष्म परिवतन हो रहे हैं शिक्षा प्रजात त्र उद्योग, शहरीजीवन, चुनाव इन प्रभावों से जो सूक्ष्म परिवत्तन समाज के सभी स्तरों पर हो रहे हैं—उसका एहसास रखना आवश्यक हो गया है। आश्चय तो यह है कि इस प्रकार का परिवर्तन उसके भीतर भी हो रहा है, हुआ है, फिर भी वह आत्मनिरीक्षण करना नहीं चाहता। वह तो इस बदलाव की या तो उपेक्षा करता है, या नि दा या हंसी मजाक से उन्हें उड़ा देता है। और मजबूरी से जब इन्हे पढ़ाने की बात आती है तब वह स्थूल बातें कहकर ही आगे बढ़ना है। यह वही प्रवृत्ति है कि जिसके कारण कहानी पढ़ाना सबसे सरल काय माना गया है। इस सकट क बचने के लिये आवश्यकता है अपने परिवेश के प्रति एक जबरदस्त प्रतिबद्धता, सजगता और गम्भीरता।

प्राध्यापक जब कहानी के बहाने आज के सम्पूण परिवेश का सामाजिक, आर्थिक, राजनीति तथा मानसिक बदलाव का विस्तार स परिचय देना शुरू कर देगा वैसे ही कहानी के प्रति एक सहज उत्सुकता छात्रों के मन मे पदा हो जाएगी और वे उसे न केवल सरल ही अनुभव करेंगे वरन् उसे अपनी ही दुनिया की चीज मानने लगेंगे। वास्तव में आज की कहानी में कथावस्तु बहाना मात्र है। लेखक उस कथा वस्तु के बहाने व्यक्ति की छटपटाहट को, बिखराव को और मजबूरी को व्यक्त करते रहता है। आज की कहानी जाने अनजाने सम्पूर्ण समाज व्यवस्था के प्रति पाठकों के मन मे चिढ़ पैदा करना चाहती है। व्यव स्था का विरोध यह उसका प्रधान लक्षण है। इस अथ में वह क्रान्तिकारी है। लेखक जब इतने बड़े महत्वपूर्ण दायित्व को इमानदारी के साथ निभा रहा है तो फिर इस एक व्यक्ति को जो इन कहानियों का व्याख्याता है इसी दायित्व को सम्प्रेषित करना है। व्यवस्था के प्रति इस विद्रोह को वह उतनी ही ईमानदारी से पाठकों तक छात्रों तक ले जाए। नयी कविता और कहानी के सृजन तथा अध्यापन का यही उद्देश्य है। क्या आज का प्राध्यापक इस दायित्व को निभा रहा है? यह प्रश्न प्रत्येक को अपने मन से पूछना है। अगस्त 1974 की सारिका के मेरा पन्ना' इस स्तम्भ में कमलेश्वर ने लिखा है—और साहित्य को हेय हीन और शक्तिहीन करार देकर उसे परिवर्तन का कारगर जरिया न बनने दिया जाय यह वग या समुदाय जो स्वय पू जीपति नहीं है अपनी लड़ाई नहीं लडता बल्कि पू जीपतियों की लडाइयां लड़ता है।'[1] नयी कहानी के स दभ में कमलेश्वर ऐसे लोगों की बात करते हैं जो दूसरों की लडाइया लड़ते हैं। आज की नयी कहानी के अध्यापन का अर्थ ही है सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति एक जबरदस्त आक्रोश युवा पीढ़ी में जगाना। अगर यह काय हम लोग नहीं कर रहे हैं तो फिर हम भी ऐसे वर्ग के लोग हैं जो दूसरों की

1 सारिका अगस्त 1974 पृष्ठ 9

लड़ाइयां लड रहे हैं। न यह कहानी पर न्याय है न लेखक पर। एक सामाजिक दायित्व के प्रति यह पलायन की प्रवृत्ति ही है।

परिवेश के प्रति अलगाव की भूमिका के अलावा और भी अनेक ऐसे भौतिक कारण हैं जिससे आज कहानी का अध्यापन योग्य दिशा से ही नहीं रहा है। आज के अनेक महाविद्यालयों में सन्दर्भ श्रेय उपलब्ध कराके नहीं दिए जाते। प्राध्यापक पढाये तो कैसे पढ़ाये ? प्राचार्य अक्सर मजाक में ऐसा कहते हैं कि कहानी पढ़ाने के लिए अन्य पुस्तकों की क्या आवश्यकता ? कहानी की पुस्तक है ना बस ! नयी कहानी पर आज सौ से भी अधिक पुस्तकें मिलती हैं परन्तु म वि म चार पांच पुस्तकें भी नहीं होती। केवल सन्दर्भ ग्र थों से ही कहानी की दिशा स्पष्ट नहीं होती। पत्र पत्रिकाओं की भी आवश्यकता होती है। सारिका और धर्मयुग के सिवा अ य भी पत्र पत्रि कायें निकलती हैं इसका ज्ञान सस्थाओं को नहीं है कुछ प्राध्यापकों को भी नहीं है। कल्पना, आलोचना कहानी नयी कहानियां सचेतना, समीक्षा प्रकर, शब्द शक, सप्तांशु आदि अन्य अनेक पत्रिकाओं के बारे में कुछ भी नहीं मालूम। और अगर मालूम भी है तो म वि इतनी पत्रिकाओं का मगवाना नही चाहते। फिर करें क्या ? इन पत्रिकाओं के सम्पर्क में न होने के कारण नये साहित्यिक प्रवाह को वह जान नहीं सकता।

कहानी के अध्ययन अध्यापन को लेकर जो विभिन्न समस्या में निर्माण हुई है उसके लिए और कमाई जिम्मेदार है जिसे हम हिन्दी अध्ययन मडल अथवा 'बोर्ड आफ स्टेडिज' कहते हैं। यह बात बडी ही कठोर है और कुछ हद तक कटु भी। मैट्रिक तक तो छात्र को केवल हिन्दी भाषा का अध्ययन कराया जाता है। उसके बाद पी यू सी म उसे प्रेमचन्द की 'बड़े भाईसाहब अथवा 'गुल्लीडडा' जैसी कहानिया पढ़ायी जाती हैं। अथवा कई बार यह भी साहस किया जाता है कि मट्रिक उत्तीर्ण छात्र एकदम नयी कहानियों का अध्ययन करें ? इस प्रकार का आग्रह उचित है क्या ? इसीलिये पी यू सी तक तो हिन्दी की पुरानी कहानी से उसका परिचय करा देना आवश्यक है। ऐसा होता नहीं। फिर पी यू सी उत्तीर्ण छात्र का स्तर हम सब लोग जानते हैं। प्रथम वर्ष में आने के बाद वह एकदम उषाप्रियवदा मन्नू भडारी, कमलेश्वर, श्रीकान्त वर्मा, महीपसिंह आदि को समझ लें ऐसी पाठ्यक्रम समिति की इच्छा होती है। परम्परा से पूर्णत काटकर 'नयी' को समझाना एकदम कठिन है। सामने बैठे हुए छात्रों के स्तर को ध्यान में रखते हुए प्राध्यापक को पढ़ाना पड़ता है। और इन कहानियों को स्वीकारने की स्थिति में वह नहीं है। क्योंकि ये कहानियां जिन विशेष परम्पराओं की जीती हुई अथवा तोड़ती हुई आई हैं इसका उसे ज्ञान नहीं है। हमारे ग्रामीण छात्र अभी कुछ सोचने की स्थिति में भी नहीं है। ऐसे समय उनके सम्मुख एकदम नयी कहानियो को पाठ्यक्रम में रखते समय दो कक्षाओं के स्तर को बिलकुल ध्यान में रखते नहीं हैं। कहानियों का गभीर अध्ययन

यह आज के युग का तकाजा है। परन्तु इस अध्ययन अध्यापन के समय शिक्षा के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का तो ध्यान में रखना होगा। पाठ्यक्रम समिति का यह दायित्व है कि ऐसी कहानियां पाठ्यक्रम में रखे जिस पर समीक्षकों में बहुत बड़ा मत भेद नहीं है। इससे अध्यापन मे समानता आ जाएगी। हो ऐसा रहा है कि प्रत्येक स्थान पर कहानी की व्यवस्था अलग अलग प्रकार से हो रही। परिणामत उत्तर पुस्तिका जांचते समय परीक्षक के दृष्टिकोण के अनुसार जिन्होंने लिखा है उसी को अंक मिलते हैं औरों को नही। नयी कहानियों में ऐसी दजनों कहानियां है जिनमें सहजता है एक सूत्रता है जो कहानी की सभी परम्पराओं को तोडने के बावजूद भी कहानियां हैं। शायद हमारी पाठ्य समिति चाहती है कि पुस्तकें तथा कहानियां ऐसी रखी जाएं जि हें मात्र वे ही समझ सके। हमारा सकोचशील प्राध्यापक पुस्तकें आने के बाद कहानियों को पढ़ता है उसे बात कुछ स्पष्ट नहीं होती। परन्तु वह इसे कहने में सकोच करता है क्योंकि ज्येष्ठ सदस्य उसके अज्ञानता की हसी उडाते हैं।

अन्त में यह आग्रह के साथ कहना चाहूँगा कि हिन्दी कहानियों में नयी कहा कहानियां ही पाठ्यक्रम में रखी जाए। क्योंकि आज की नयी कहानी आम आदमी की कहानी है। और आज आम आदमी तमाम घोषित नीतियों व सुविधाओं के बाद जूद एक नाटकीय से अधिक कुछ नहीं रह गया है। सुख महगाई बेकारी, घूस लूट राजकीय मीटिंग और इसी तरह की कई जोकों के बीच आज का आदमी घिर गया है। इस आदमी की व्यथा को नयी कहानी ही व्यक्त कर रही है।[1] आज की कहानी न तो अबूबखां की बकरी ही है जो खूटे से बधी रहे नहीं कोई फामूला फिल्म है, जो महज दशको को हसाती है या उत्तेजित करती है और न कहानी को किसी सूफे पडे, पादरी मौलाना या साधुसाध्वी के भजनों या उपदेशों को रूप में स्वीकार किया जा सकता है।'[2] कंक के सम्पादक के ये उदगार एकदम सही हैं।

अध्ययन की सामग्री का अभाव परिवेश के प्रति गरजिम्मेदारी छात्रों की उदासीनता, प्राध्यापक हो जाने के बाद भी अध्ययन के प्रति गैरजिम्मेवारी, स्तरीय अन्तर का पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम समिति की नीति ये कुछ प्रमुख समस्यायें कहानी के अध्ययन अध्यापन की है।

---

1 कंक जनवरी, फरवरी 72 पृष्ठ 13

2 वही, पृ० 12

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1 मेरी प्रिय कहानियाँ कमलेश्वर राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 6

2 खोयी हुई दिशायें कमलेश्वर भारतीय ज्ञानपीठ कलकत्ता

3 राजा निरबसिया कमलेश्वर

4 कमलेश्वर श्रेष्ठ कहानियां सं राजेन्द्र यादव राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

---

1 कहानी नयी कहानी नामवरसिंह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2 नयी कहानी की मूल संवेदना डा सुरेश सिनहा भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली–6

3 हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा सम्पादक डा रामदरश मिश्र डा नरेन्द्र मोहन नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली

4 हिन्दी कहानी एक अंतरंग परिचय उपेन्द्रनाथ अश्क नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

5 कहानी स्वरूप और संवेदना राजेन्द्र यादव नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नयी दिल्ली

6 एक दुनिया समानान्तर सम्पादक राजेन्द्र यादव अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

7 आधुनिक परिवेश और नवलेखन डा शिवप्रसाद सिंह लोक भारती, प्रकाशन इलाहाबाद

8 हिन्दी कहानी (सर्वेक्षण माला) इन्द्रनाथ मदान राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

9 हिन्दी कहानी पहचान और परख स डा इन्द्रनाथ मदान, लिपी प्रकाशन, दिल्ली

10 नयी कहानी दशा दिशा सम्भावना सम्पादक श्री सुरेन्द्र, अपोलो प्रकाशन, जयपुर

11 हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य डा रमेशचन्द्र लवानिया अमित प्रकाशन, गाजियाबाद